अंक 281 वर्ष 57

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2018

गांधी: समग्र विचार-दर्शन विशेषांक

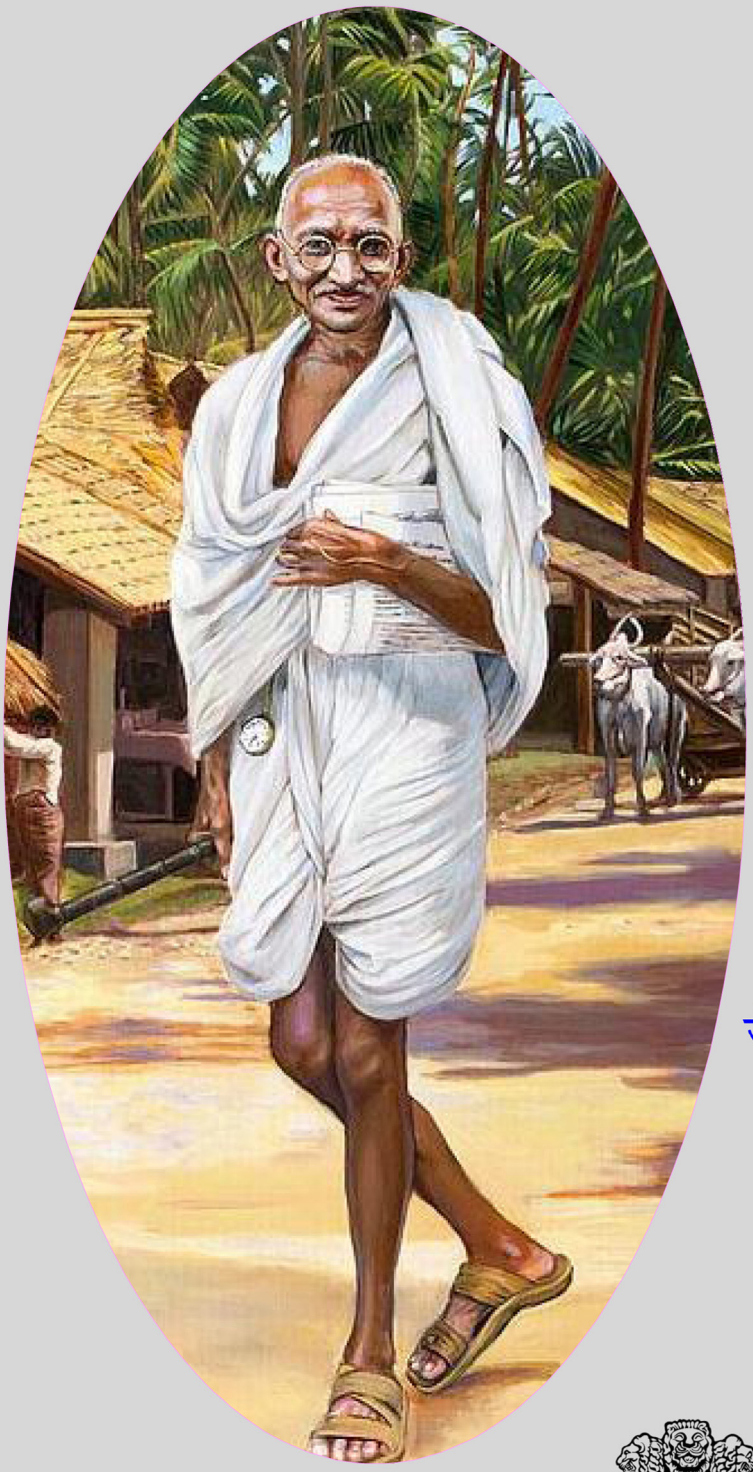

जैसे बिंदु का समुदाय समुद्र है, इसी तरह हम मैत्री करके मैत्री का सागर बन सकते हैं। जगत् में सब एक दूसरे के साथ मित्र-भाव से रहें तो जगत् का रूप बदल जाए।

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2018

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर अवनीश कुमार

परामर्श मंडल
श्रीमती चित्रा मुद्‌गल

डॉ. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
श्री एम. वेंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

संपादक
डॉ. अनिता डगोरे

सह–संपादक
अर्चना श्रीवास्तव

सहायक संपादक
अच्युत कुमार सिंह

प्रूफ रीडर
इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **57 □ अंक : 8 (281)**
नवंबर–दिसंबर, 2018

संपादकीय कार्यालय एवं बिक्री केंद्र

केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.hindinideshalaya.nic.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com

बिक्री केंद्र :

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	**(डाक खर्च सहित)**
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

संपादकीय

आलेख

1. स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी जी ने बजाया था सत्याग्रह का बिगुल	डॉ. अनुराधा अग्रवाल	11
2. महात्मा गांधी का सत्याग्रह	डॉ. ए. फातिमा	15
3. गांधी जी का अनुवाद-कर्म	डॉ. हरीश कुमार सेठी	22
4. गांधीवाद और हिंदी कविता	डॉ. श्याम सुंदर पांडेय	33
5. गांधी जी के शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण की प्रासंगिकता	डॉ. वैशाली कुशवाहा	37
6. गांधी के एकादश व्रत और सामाजिक सरोकार	प्रो. निर्मला एस. मौर्य	44
7. गांधी की राजनैतिक विचारधारा और धूमिल	डॉ. डॉली	51
8. संस्कृत का एक अनालोचित गांधीवादी साहित्य	डॉ. अजय कुमार मिश्र	59
9. गांधी जी का अर्थशास्त्रीय चिंतन	डॉ. विनीता कुमारी	64
10. युग-युग की संजीवनी हैं गांधी	मृगांक मलासी	69
11. महात्मा गांधी एवं भीमराव अंबेडकर का सामाजिक न्याय चिंतन	डॉ. ममता कुशवाहा सिंह	75
12. गांधी : शिक्षाशास्त्री के रूप में	डॉ. शालिनी राजवंशी	82
13. मानवता का अमर पुजारी-महात्मा गांधी	डॉ. उमाकांत खुबालकर	85
14. महात्मा गांधी का महात्मापन	डॉ. वी. जयलक्ष्मी	88
15. भारत की भाषा समस्या और गांधी जी	डॉ. श्रावणी भट्टाचार्य	92
16. प्रवासी भारतीय साहित्यकार और गांधी विचार	डॉ. साताप्पा लहू चव्हाण	95
17. पराई भाषा में पढ़ाई और गांधी जी	डॉ. अमरनाथ	99
18. महात्मा गांधी तथा पर्यावरण संरक्षण	डॉ. किशोरी लाल व्यास	104
19. महात्मा गांधी, हिंदी और पत्रकारिता	डॉ. नरेश कुमार	106
20. गांधी जी की निर्भीकता	प्रो. एम. ज्ञानम	108
21. गांधी और स्त्री विमर्श	डॉ. किरण झा	111
22. पत्रकारिता, प्रतिबद्धता और महात्मा गांधी	डॉ. सुनील कुमार तिवारी	115
23. महात्मा गांधी की विचारधारा की प्रासंगिकता	डॉ. संतोष खन्ना	121
24. गांधी जी के स्वराज्य चिंतन की वैश्विक परिकल्पना	डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति	127

एकांकी

25. असली खुशी — डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प' — 131

कविता

26. ज़िंदा तस्वीर — अच्युत कुमार सिंह — 133

27. गांधी जी की तीन बात — सरिता गुप्ता — 134

प्राप्ति स्वीकार — 135

संपर्क सूत्र — 136

निदेशक की कलम से

'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।' –महात्मा गांधी

सत्य, अहिंसा के प्रतीक महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के अवसर पर उनके आदर्शों, कृत्यों तथा विराट व्यक्तित्व का स्मरण एवं उससे प्रेरणा ग्रहण करना और उन्हें अपने व्यावहरिक जीवन में अपनाना ही गांधी जी के प्रति सच्ची श्रद्धाजंलि है।

देश की स्वाधीनता से लेकर राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू पर उनका प्रभाव परिलक्षित होता है। जन-जीवन में ऐसी कोई समस्या नहीं, ऐसा कोई प्रश्न नहीं, ऐसा कोई कृत्य नहीं; जिस पर उन्होंने चिंतन-मनन न किया हो। गांधी जी सत्य एवं सदाचरण के व्याख्याता एवं सच्चे प्रतिनिधि थे। उन्होंने मानव-जाति के परम हितैषी के रूप में पीढ़ियों पर अपना प्रभाव डाला। आज भी और भविष्य में भी उनके विचार जन-जन के मार्गदर्शक बने रहेंगे। उनका जीवन एक व्यक्ति का जीवन नहीं था उसमें जाति, वर्ण, संप्रदाय, प्रदेश, देश, देशांतर की सारी विचारधाराएँ समाहित हैं। उनके विचार, सिद्धांत तथा उनके कार्य किसी व्यक्ति या देश-विशेष के न होकर मानव-मात्र की हितैषणा से ओत-प्रोत हैं।

स्वतंत्र भारत को सुदृढ़ बनाने के लिए किए गए उनके कृत्यों में एक महत्वपूर्ण कार्य है हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद दिलाना। गांधी जी हिंदुस्तानी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिंदुस्तानी भाषा के माध्यम से ही संपूर्ण भारतवर्ष को एकजुट कर सत्याग्रह का शंखनाद किया। गांधी जी यह मानते थे कि अगर हिंदुस्तान की एक राष्ट्रभाषा बनानी है तो वह राष्ट्रभाषा हिंदी ही हो सकती है। हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए गांधी जी ने स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं की स्थापना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह संस्थाएँ आज भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लक्ष्य से ओत-प्रोत अपने कार्य में लगी हुई हैं।

वस्तुतः मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर चाहे वह ग्राम-स्वराज हो, आर्थिक विषमताएँ हो, स्त्री-शिक्षा हो अथवा पराधीनता की महान पीड़ा हो, उनका चिंतन आज के परिप्रेक्ष्य में भी उतना ही महत्वपूर्ण है। गांधी जी के लिए कर्म अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है। उन्होंने कर्म के महत्व का मूल सिद्धांत गीता से ग्रहण किया था। उनके द्वारा किया गया प्रत्येक कर्म आत्मदर्शन है। गीता को उन्होंने गहनता से समझा था। गांधी जी की आत्मकथा 'सत्य के मेरे प्रयोग' उनका जीवन वृतांत नहीं जीवन में किए गए प्रयोगों की गाथा है जिसमें उनके प्रयोग आध्यात्मिक धरातल पर किए गए प्रयोग थे चाहे वे राजनैतिक प्रयोग हो अथवा दैनिक जीवन संबंधी प्रयोग। गांधी जी के शब्दों में, सत्य को मैंने जिस रूप में देखा है, जिस मार्ग से देखा है, उसे उसी रूप में प्रकट करने का मैंने सतत् प्रयत्न किया है। उनका संपूर्ण जीवन वस्तुतः सत्य का एक प्रयोग था।

वर्तमान पीढ़ी उनके आदर्शों के अनुकरण से एक क्षमतावान भविष्य का निर्माण कर सकती है। महात्मा गांधी के इन्हीं विचार-दर्शन संबंधी आलेखों को संकलित कर भाषा का यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है।

प्रस्तुत अंक में 'गांधी जी का अर्थशास्त्रीय चिंतन', 'गांधी जी का अनुवाद कर्म' तथा अन्य आलेख गांधी जी के बहुमुखी व्यक्तित्व से परिचित कराते हैं।

भाषा पत्रिका में लेखन हेतु प्रकाशित लेखकों का आभार व्यक्त करता हूँ। आशा करता हूँ कि भविष्य में भी आपका सहयोग निरंतर मिलता रहेगा। भाषा के अंक www.chdpublication.mhrd.gov.in पर उपलब्ध हैं तथा पूर्व के अंकों को भी ऑनलाइन उपलब्ध कराने हेतु प्रयास किए जा रहे हैं।

आभार एवं धन्यवाद, जय हिंद।

प्रोफेसर अवनीश कुमार

बापू

संसार पूजता जिन्हें तिलक, रोली, फूलों के हारों से,
मैं उन्हें पूजता आया हूँ बापू! अब तक अंगारों से।
अंगार, विभूषण यह उनका विद्युत पी कर जो आते हैं,
ऊँघती शिखाओं की लौ में चेतना नई भर जाते हैं।

उनका किरीट, जो कुहा-भंग करते प्रचंड हुंकारों से,
रोशनी छिटकती है जग में जिनके शोणित की धारों से।
झेलते वह्नि के वारों को जो तेजस्वी बन वह्नि प्रखर,
सहते ही नहीं, दिया करते विष का प्रचंड विष से उत्तर।

अंगार हार उनका, जिनकी सुन हाँक समय रुक जाता है,
आदेश जिधर का देते हैं, इतिहास उधर झुक जाता है।
आते जो युग-युग में मिट्टी का चमत्कार दिखलाने को,
ठोकने पीठ भूमंडल की नभ-मंडल से टकराने को।

अंगार हार उनका, जिनके आते ही कह उठता अंबर,
'हम स्ववश नहीं तब तक जब तक धरती पर जीवित है यह नर'।
अंगार हार उनका कि मृत्यु भी जिनकी आग उगलती है,
सदियों तक जिनकी सही हवा के वक्षस्थल पर जलती है।

पर तू इन सबसे परे; देख तुझको अंगार लजाते हैं,
मेरे उद्वेलित-ज्वलित गीत सामने नहीं हो पाते हैं।

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

संपादकीय

'सादा जीवन उच्च विचार'

आज की भागती-दौड़ती तनाव पूर्ण जिंदगी में महात्मा गांधी जी द्वारा कहे गए उक्त विचार 'सादा जीवन उच्च विचार' कितने सटीक मालूम जान पड़ते हैं। आज देश महात्मा गांधी जी की 150वीं जयंती मना रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य गांधी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए वर्तमान समय में उनके विचार-दर्शन की प्रासंगिता को समाज में एक बार पुनः उजागर करना है आज बहुत सी संस्थाएँ, सिविल सोसायटी व शिक्षण संस्थाएँ संगोष्ठी, सेमिनार एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से गांधी जी की 150वीं जयंती मना रही हैं। गांधी जी अहिंसा के लिए विशेष रूप से जाने गए। वे अहिंसा के पुजारी थे उन्होंने 31 जनवरी 1917 में गोधरा में दिए भाषण में कहा- "शस्त्रधारी निःशस्त्र होकर दीन बन जाता है परंतु सत्याग्रही कभी दीन बनता ही नहीं। वह नश्वर शरीर या शरीर के शस्त्रों पर भरोसा नहीं रखता वह तो अजय-अमर अविनाशी आत्मा के बल पर युद्ध करता है।" अमरीका में रेचरेंड जे. एच. होम्स ने 1920 में उनको विश्व का सबसे महान व्यक्ति घोषित किया। इतना ही नहीं एक बार वैज्ञानिक आइंस्टाइन से किसी ने पूछा कि आपने अपने कक्ष में गांधी जी की तस्वीर क्यों लगा रखी है? इस पर आइंस्टाइन का उत्तर था कि- "आने वाली पीढ़ी यह कभी विश्वास नहीं करेगी कि हाड़-मांस का यह दुबला-पतला व्यक्ति कभी पैदा हुआ था।"

गांधी जी ने संपूर्ण राष्ट्र की सोच को ध्यान में रखकर केवल देश की आज़ादी के लिए अहिंसात्मक लड़ाई ही नहीं लड़ी, अपितु विभिन्न कुरूतियों, छूआ-छूत, सामाजिक मूल्य, आदर्श, व्यवहार, ज्ञान-विज्ञान, नारी-शिक्षा, नारी-सम्मान एवं राजनीति जैसे कई विषयों पर अपनी लेखनी भी चलाई। इसीलिए शायद उन्हें राष्ट्रपिता के नाम से संबोधित किया गया।

यदि गांधी जी की सत्यनिष्ठा की बात करें तो वो बचपन से ही गांधी जी के खून में रची-बसी थी जिसका प्रमाण उनकी आत्मकथा में लिखे एक उदहारण से मिलता है बाल्यकाल में एक बार पिता जी की जेब से पैसे चुराने की बात को कागज़ पर लिखकर, की गई चोरी के लिए पिता से माफी मांगी। इतना ही नहीं पढ़ाई के लिए विदेश जाते समय अपनी माँ को दिए गए वचन की विदेश में हर पल लाज रखने की कोशिश की। ये बातें उनकी सत्यनिष्ठा एवं नैतिकता को दर्शाती हैं न्याय के प्रति अपनी मुखर आवाज के लिए उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा लेकिन उन्होंने हिंसा का रास्ता न अपनाकर अहिंसा का रास्ता ही अपनाया। गांधी जी छूआ-छूत को समाज का कोढ़ मानते थे वे लगातार इसका विरोध करते रहे। यहाँ तक कि सवर्ण समाज ने उनके इस व्यवहार के कारण उन्हें समाज से बाहर कर देने की घोषणा कर दी, इसपर वे हरिजन बस्ती में रहने को तैयार हो गए, जो छूआ-छूत, अस्पृश्यता के विरोध के प्रति उनकी कटिबद्धता को दर्शाता है। लेकिन उनकी इस विचारधारा से आज तक समाज पूरी तरह कहाँ न्याय कर पाया है। आज भी समाज में छूआ-छूत, अस्पृश्यता दिखाई पड़ती है। गाँव में आज भी दूल्हा घोड़ी पर बैठकर बारात नहीं निकाल सकता। संविधान के अनुसार छूआ-छूत एक सामाजिक एवं कानूनी अपराध है लेकिन फिर भी इसका घृणित रूप आए दिन देखने को मिलता ही रहता है।

आज गांधी जी को कहाँ ढूँढे? उनकी इस विचारधारा को मानो यह समाज भूल चुका है। इसीलिए शायद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी के आदेशानुसार इस वर्ष गांधी जी की 150वीं जयंती मनाई जा रही है। गांधी जी स्वच्छता के प्रति कटिबद्ध थे। जिसकी शुरूआत उन्होंने सर्वप्रथम अपने घर के शौचालय से की थी। इससे दो बातें सामने निकल कर आती हैं प्रथम स्वच्छता के प्रति जागरूक होना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है द्वितीय यह कार्य किसी विशेष जाति वर्ग से न करवा कर अपना काम स्वयं करना है। आजकल प्रधानमंत्री मोदी जी

स्वच्छता अभियान का जोर-शोर से प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। इसलिए गाँव-शहरों को स्वच्छ रखने के लिए सुलभ शौचालयों का निर्माण करवाया जा रहा है। तथा उसकी साफ-सफाई पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इतना ही नहीं अपने गाँव-शहर को स्वच्छ रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जागरूक किया जा रहा है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि शहर का गंदा पानी जिस गटर (मेनहॉल) में इकट्ठा होता है उसकी साफ-सफाई के लिए भी पुख्ता इंतजाम होने चाहिए। इनकी सफाई के लिए तकनीकी मशीनों तथा मुँह पर लगाए जाने वाले मास्क का प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि यदि सफाई के दौरान पुख्ता इंतजाम नहीं किए गए तो गटर में साफ-सफाई करने वाले कर्मचारी की जहरीली गैस से मृत्यु भी हो सकती है। इसलिए इस प्रकार के कार्य के लिए जरूरी बंदोबस्त का होना अति आवश्यक है। ताकि किसी भी अप्रिय घटना को होने से रोका जा सके।

अंत में कहा जा सकता है कि गांधी जी एक महान चिंतक ही नहीं अपितु देश के प्रति समर्पित सच्चे सिपाही भी थे। जिन्होंने अंग्रेजों को देश छोड़ने के लिए विवश ही नहीं किया अपितु देश की सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था को सुधारने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके विचारों को देश में नहीं अपितु विदेशों में भी सराहा गया है। गांधी जी के विचारों को व्यवहार में लाना, मानो गांधी जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

(डॉ. अनिता डगोरे)

एक राष्ट्र की प्रतीक : हिंदी

विभिन्न प्रदेशों में अंग्रेजी बोलने वाले लोग काफी मिल जाते हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है और हमेशा थोड़ी ही रहेगी। इसका मुख्य कारण यह है कि यह भाषा कठिन है और विदेशी है। साधारण मनुष्य उसे ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए यह संभव नहीं कि अंग्रेजी के जरिए भारत एक राष्ट्र बन जाए। अतः भारतीयों को भारत की ही कोई भाषा पसंद करनी पड़ेगी। गुजराती, बंगाली, तमिल आदि बोलने वाले भारतीय है तो बहुत, फिर भी इनमें से किसी एक के सारे भारत में फैलने की बहुत कम संभावना है। बाकी बच गई हिंदी भाषा। यह भाषा उत्तर भारत में सब लोग बोलते हैं। उसकी माता संस्कृत और फारसी होने के कारण वह हिंदू और मुसलमान दोनों को अनुकूल पड़ सकती है। इसके सिवा चूंकि फकीर और सन्यासी यही भाषा बोलते हैं इसलिए इसका प्रसार सब जगह होता है। अनेक अंग्रेज भी इसे सीखते हैं। इस भाषा का फैलाव बहुत है। भाषा अपने-आप में बहुत मीठी, नम्र और ओजस्वी है। इसमें बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं और अब भी लिखी जा रही हैं। हर एक पाठशाला में स्वभाषा के अतिरिक्त इस भाषा का शिक्षण दिया जाना चाहिए। माता-पिता को भी चाहिए कि वे अपने बच्चों में बचपन से ही हिंदी भाषा बोलने की आदतें डालें। तभी भारत वास्तविक रूप में एक राष्ट्र बन सकेगा।

– इंडियन ओपीनियन (गुजराती), 18-8-1906

उक्तियाँ

1. 'हमें साहित्य और जीवन का मेल मिलाकर ऐसा साहित्य बनाना और प्रचार करना है जो देश को उच्च आदर्श की ओर ले चले।'

-राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन

2. प्राचीन हिंदी कवियों के ऐसे-ऐसे गीत मैंने सुने हैं कि सुनते ही मुझे लगा है कि वे आधुनिक युग के हैं। इसका कारण यह है कि जो कविता सत्य है, वह चिरकाल ही आधुनिक है। मैं तुरंत समझ गया कि जिस हिंदी भाषा के खेत में भावों की ऐसी सुनहरी फसल फली है, वह भाषा भले ही कुछ दिन यों ही पड़ी रहे, तो भी उसकी स्वाभाविक उर्वरता नहीं मर सकती, वहाँ फिर खेती के सुदिन आएंगे और पौष मास में नवान्न उत्सव होगा।

-रवींद्रनाथ टैगोर

3. 'राष्ट्रीय एकता की कड़ी हिंदी ही जोड़ सकती है।'

-बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

4. 'कैसे निज सोए भाग को कोई सकता है जगा।
   जो निज भाषा-अनुराग का अंकुर नहीं उर में उगा।।'

-अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

5. 'हिंदी हमारे देश और भाषा की प्रभावशाली विरासत है।'

-माखनलाल चतुर्वेदी

6. 'जय-जय राष्ट्रभाषा जननि।
   जयति जय जय गुण उजागर राष्ट्रमंडल करनि।'

-देवी प्रसाद गुप्त

7. 'बानी हिंदी भाषण की महारानी,
   चंद्र, सूर, तुलसी से जाएँ भए सुकवि लासानी।'

-पं. जगन्नाथ चतुर्वेदी

8. 'हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली पंक्ति में सभासीन हो सकती है।'

-मैथिलीशरण गुप्त

स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी जी ने बजाया था सत्याग्रह का बिगुल

डॉ. अनुराधा अग्रवाल

"यदि मैं बिलकुल अकेला भी होऊँ तो भी सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहूँगा क्योंकि यही सबसे आला दर्जे का साहस है जिसके सामने एटम बम भी अप्रभावी हो जाता है।" - गांधी जी

दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद भारतवासियों को उनके अधिकार दिलाने के लिए गांधी जी ने नेशनल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की। पहली बार सत्याग्रह के शस्त्र का प्रयोग किया और विजय भी पाई। इस प्रकार सन् 1914-15 में गांधी जी जब दक्षिण अफ्रीका से वापिस भारत लौटे, तब तक इन विचारों और जीवन-व्यवहारों में आमूल-चूल परिवर्तन आ चुका था।

भारत लौटकर कुछ दिन गांधी जी देश का भ्रमण कर वास्तविक स्थिति का जायजा लेते रहें। फिर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसी संस्था को पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य देकर संघर्ष में कूद पड़े। प्रथम विश्वयुद्ध में वचन देकर भी अंग्रेज सरकार ने भारतीयों के प्रति अपने रवैये में कोई परिवर्तन नहीं किया था, इससे गांधी जी और भी चिढ़ गए और अंग्रेजी कानूनों का बहिष्कार और सत्याग्रह का बिगुल बजा दिया।

भारतवासियों के मानवाधिकारों का हनन करने वाले रोलट एक्ट का स्थान-स्थान पर विरोध-बहिष्कार होने लगा। सन् 1919 में जलियाँवाला बाग में हो रही विरोध-सभा पर हुए अत्याचार ने गांधी जी की अंतरात्मा को हिलाकर रख दिया। अब ये समूचे स्वतंत्रता आंदोलन की बागडोर संभाल खुल्लम-खुल्ला संघर्ष में कूद पड़े।

गांधी जी के प्रमुख सत्याग्रह

गांधी जी का संकेत पाते ही सारे देश में विरोधी आंदोलनों की एक आंधी-सी छा गई। अंग्रेज सरकार की लाठी-गोलियाँ भी अंधाधुंध बरसने लगीं। जेलें सत्याग्रहियों से भर उठीं। गांधी जी को भी जेल में डाल दिया गया।

बिहार का नील सत्याग्रह, दांडी यात्रा या नमक सत्याग्रह, खेड़ा का किसान सत्याग्रह आदि गांधी जी के जीवन के प्रमुख सत्याग्रह हैं। इन्हें कई बार महीने-महीने भर का उपवास भी करना पड़ा। अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए इन्होंने 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' जैसे पत्र भी प्रकाशित किए।

विदेशी-बहिष्कार और विदेशी माल का दाह, मद्य निषेध के लिए धरने का आयोजन, अछूतोद्धार, स्वदेशी प्रचार के लिए चर्खे और खादी को महत्व देना, सर्वधर्म-समन्वय और विशेषकर हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए प्रचार इनके द्वारा आरंभ किए गए अन्य प्रमुख सामाजिक सुधारात्मक कार्य माने गए हैं। इस प्रकार के स्वतंत्रता दिलाने वाले प्रयासों के लिए अक्सर बीच-बीच में इन्हें जेलयात्रा भी करनी पड़तीं।

अंग्रेजों भारत छोड़ो

सन् 1931 में इग्लैंड में संपन्न गोलमेज कांफ्रेस में भाग लेने के लिए गांधी जी वहाँ गए, पर जब इनकी इच्छा के विरुद्ध हरिजनों को निर्वाचन का विशेषाधिकार हिंदुओं से अलग करके दे दिया, तो भारत लौटकर गांधी जी ने पुनः आंदोलन आरंभ कर दिया। बंदी बनाए जाने पर जब ये अनशन करने लगे, तो सारा देश क्षुब्ध हो उठा। फलतः ब्रिटिश सरकार को गांधी जी के मतानुसार हरिजनों का पृथक निर्वाचनाधिकार का हठ छोड़ना पड़ा।

सन् 1942 में मुंबई कांग्रेस के अवसर पर इनके द्वारा अंग्रेजों को दी गई चेतावनी 'अंग्रेजों भारत छोड़ो'

और भारतवासियों को 'करो या मरो' की दी गई ललकार का जो भीषण परिणाम निकला, उसे देख अंग्रेज न केवल घबरा गए, बल्कि बोरिया-बिस्तर बांधकर इस देश से चले जाने के लिए बाध्य हो गए। फलत: 15 अगस्त 1947 के दिन भारत को स्वतंत्र कर अंग्रेज इंग्लैंड लौट गए।

सरलता की पराकाष्ठा का उनका व्यक्तित्व एवं जीवन वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक एवं अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उतना ही प्रासंगिक है जितना 100 साल पहले था। हम विकास के पथ पर कितने भी आगे क्यों न बढ़ जाएँ किंतु गांधी के सिद्धांतों एवं उनके दर्शन को नकारना असंभव है। जब भी भारतीय समाज की बात होती है तो गांधी दर्शन के बिना अधूरी रहती है।

महात्मा गांधी के विचार

वर्तमान संदर्भों में जब गांधी जी के सिद्धांतों की प्रासंगिकता की बात होती है तो आज चाहे भारत का फैशनेबल युवा हो या ग्रामीण बेरोजगार युवा हो या किताबी ज्ञान के महारथी आईटी प्रोफेशनल, सभी के गांधी जी प्रिय पात्र हैं। ये सभी गांधी जी को अपने से जोड़े बगैर नहीं रह सकते हैं।

गांधी जी आज भी उतने ही प्रासंगिक एवं अनुकरणीय हैं जितने अपने वक्त में थे। गांधी जी का बचपन, उनके सामाजिक एवं राजनैतिक विचार, सर्वोदय, सत्याग्रह, खादी, ग्रामोद्योग, महिला शिक्षा, अस्पृश्यता, स्वावलंबन एवं अन्य सामाजिक चेतना के विषय आज के युवाओं के शोध एवं शिक्षण के प्रमुख क्षेत्र हैं।

भारतीय युवा हमेशा से गांधी जी के चिंतन का केंद्रबिंदु रहा है। वर्तमान युवा पाश्चात्य प्रभावों से संचालित है। उसकी सोच निरकुंश है। वह अपने ऊपर किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहता है। ऐसी परिस्थितियों में गांधी जी के विचारों की सर्वाधिक जरूरत आज के युवाओं को है। गांधी जी हमेशा युवाओं से रचनात्मक सहयोग की अपेक्षा रखते थे।

गांधी जी मैनेजमेंट गुरु

गांधी जी ने उस पीढ़ी के युवाओं को भयरहित कर अंग्रेजों के दमन का सामना करने का अद्भुत साहस दिया था। वे हमेशा युवा ऊर्जा को सही दिशा देने की बात करते थे। आंदोलन के समय वे युवाओं को हमेशा सतर्क करते रहते थे। सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय उन्होंने कहा था हमारा आंदोलन हिंसा का अग्रदूत न बन जाए इसके लिए मैं हर दंड सहने के लिए तैयार हूँ, यहाँ तक कि मैं मृत्यु का वरण करने को भी तैयार हूँ।

उस समय के युवाओं से उनकी अपेक्षा थी कि वे अपनी ऊर्जा और उत्साह को स्वतंत्रता प्राप्ति में सार्थक योगदान की ओर मोड़ें। गांधी जी ने हमेशा से युवाओं को वंचित समूहों के उत्थान के लिए प्रेरित किया है। वे व्यक्तिगत घृणा के हमेशा विरोधी रहे हैं। उनका कथन था- शैतान से प्यार करते हुए शैतानी से घृणा करनी होगी। उन्होंने हमेशा युवाओं को आत्मप्रशंसा से बचने को कहा है।

उनका कथन है कि जनता की विचारहीन प्रशंसा हमें अहंकार की बीमारी से ग्रसित कर देती है वर्तमान आईटी प्रोफेशनल के लिए गांधी जी मैनेजमेंट गुरु हैं। वे हमेशा आर्थिक मजबूती के पक्षधर रहे हैं। गांधी जी ने हमेशा पूंजीवादी व समाजवादी विचारधारा का विरोध किया है। उनका मानना था कि देश की अर्थव्यवस्था कुछ पूंजीपतियों के पास गिरवी नहीं होनी चाहिए।

उनकी अर्थव्यवस्था के केंद्रबिंदु गाँव थे। उनके अनुसार जब तक गाँव के युवाओं को गाँव में ही रोजगार नहीं मिलता है, तब तक उनमें असंतोष एवं विक्षोभ रहेगा। ग्रामीण बेरोजगारों का शहर की ओर पलायन, जो कि भारत की ज्वलंत समस्या है, का निराकरण सिर्फ कुटीर उद्योग लगाकर ही किया जा सकता है।

अहिंसा और सत्यनिष्ठा

मनुष्य प्रजाति की उत्पति से लेकर आज तक की सारी मानवता व्यक्तिगत, सामाजिक, जातीय, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शांति के लिए प्रयासरत रही है। गांधी जी का मानना था कि समाज में शांति की स्थापना तभी संभव है, जब व्यक्ति भावनात्मक समानता एवं आत्मसंतोष को प्राप्त कर लेगा। गांधी जी के अनुसार शांति की प्राप्ति प्रत्येक युवा का भावनात्मक एवं क्रियात्मक लक्ष्य होना चाहिए तभी उसकी ऊर्जा, गतिशीलता एवं उत्साह राष्ट्रीय हित में समर्पित होंगे।

गांधी जी युवाओं को सामाजिक परिवर्तन का सबसे बड़ा औजार मानते थे। वे हमेशा चाहते थे कि सामाजिक परिवर्तनों, सामाजिक कुरीतियों, सती प्रथा, बाल विवाह, अस्पृश्यता, जाति व्यवस्था के उन्मूलन के विरुद्ध युवा आवाज उठाएँ। उनका मानना था कि शोषणमुक्त, स्वावलंबी एवं परस्परपोषक समाज के निर्माण में युवाओं की अहम् भूमिका है एवं भविष्य में भी

होगी। वर्तमान युवा प्रजातांत्रिक मूल्यों एवं तथ्यपरक सिद्धांतों को मानता है।

कक्षा में मैंने अपने युवा विद्यार्थियों से चर्चा के दौरान प्रश्न किया कि गांधी जी के स्वतंत्रता प्राप्ति के योगदान से इतर आपको उनका कौन सा गुण प्रभावित करता है? सभी का औसत एक ही जवाब था- उनकी अहिंसा और सत्यनिष्ठा।

गांधी जी हमेशा आत्मनिरीक्षण के पक्षधर रहे हैं। गांधी जी के सिद्धांत भी लोकतंत्र एवं सत्य की कसौटी पर कसे-खरे सिद्धांत हैं। गांधी जी की असहमति, उनका बोला गया सत्य आज के युवा को बेचैन कर देता है। उनकी आस्थाएँ अडिग हैं। उन्होंने हर विश्वास को बड़ी जांच-परखकर व्रत की तरह धारण किया था। उन्होंने युवाओं के लिए स्वराज को सबसे बड़ा आत्मानुशासन, सत्याग्रह को सबसे बड़ा व्रत, अहिंसा को सबसे बड़ा अस्त्र एवं शिक्षा को सबसे बड़ी नैतिकता माना है।

सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिवर्तन

मेडिकल क्षेत्र एवं आईटी प्रोफेशनल में पढ़ रहे या अपनी सेवाएँ दे रहे लोगों से बातचीत के दौरान प्रश्न किया कि आपके दैनिक जीवन में गांधी जी के दर्शन की क्या प्रासंगिकता है? उनका कहना था कि आज प्रतिस्पर्धात्मक कार्यक्षेत्रों में मानसिक दबाव बहुत है। जब भी काम या पढ़ाई का बोझ उन्हें मानसिक या शारीरिक रूप से शिथिल करता है तो वे लोग गांधी जी की जीवनी 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' पढ़ते हैं जिससे उनके अंदर आत्मबल एवं ऊर्जा का संचार होता है।

आज भारत में युवाओं के सामने ऐसे आदर्श व्यक्तित्वों की कमी है जिसे वो अपना रोल मॉडल बना सकें। गांधी जी हर पीढ़ी के युवाओं के रोल मॉडल रहे हैं एवं होने चाहिए। आज हमारा समाज सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है।

इन सामाजिक परिवर्तनों को सही दिशा देने में गांधी जी के सिद्धांत एवं उनका दर्शन हमारे युवाओं के लिए मार्गदर्शक होना चाहिए। आज हमारे युवाओं को मौका है कि वे गांधी जी को अपना आदर्श बनाकर सामाजिक परिवर्तन एवं राष्ट्र निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें। हमारे युवा उनके दर्शन को अपनाकर अपने व्यक्तित्व एवं राष्ट्र के विकास में पूर्ण ऊर्जा एवं उत्साह से समर्पित हों।

धरती का स्वाभिमान

गांधी ने साम्राज्य को आत्मा की ताकत से हिलाया, प्रार्थना से हिलाया, सामान्य मनुष्य की तरह जीकर और अपना काम करते हुए बिना संतत्व का बाना पहने, बिना अवतार, पीर, पैगंबर कहलाए, बिना किसी धर्म, मजहब या रिलीजन को छोटा या बड़ा बताए।

गांधी इस पूरी धरती का स्वाभिमान थे। वे सेवा की साधना थे। वे ईश्वर, देवता, अवतार, संत कुछ नहीं थे। वे तो इंसान और इंसानियत के नए संस्करण थे। उन्होंने शस्त्र की ताकत को सत्य की ताकत के सामने झुका दिया। गांधी को समझा नहीं गया, इसलिए गांधी को माना नहीं, गांधी को माना नहीं गया इसलिए गांधी को मार डाला गया।

गांधी को मारकर राजनीति से हमने नीति को मार डाला, धर्म से धर्म के आदर्श की हत्या कर दी। चरखे से उसका कर्म और हाथों से पैदा होता स्वाभिमान छीन लिया और इंजीनियरिंग कॉलेजों, मैनेजमेंट संस्थानों, चिकित्सा महाविद्यालयों, स्कूलों, कॉलेजों सब जगह बेकारों की ऐसी भीड़ खड़ी कर दी, जिसके पास काम नहीं, जिसके पास स्वावलंबन नहीं। इसलिए देश में एक स्वाभिमानी पीढ़ी बनने से वंचित होती जा रही है।

चेतना का चिंतन

गांधी ने नारी को देवी बनाने के बजाय सहकर्मिणी बनाया। गांधी ने शिक्षा में सरस्वती पूजन के लिए मूर्ति या फोटो नहीं लगाया बल्कि ज्ञान की सरस्वती का अध्ययन और कर्म से पूजन करना सिखाया। गांधी गीता, बाइबिल, कुरान पढ़ते ही नहीं थे बल्कि उनके रास्ते पर चलते भी थे। उन्होंने पराई पीर को जानने और दूर करने का धर्म अपनाया था। दुनिया में कोई देश, धर्म या समाज नहीं, जिसकी पीड़ा न हो।

गांधी चेतना का चिंतन थे। वे मानते थे कि जिस देश या समाज के पास चिंतन और चेतना नहीं, वह ज्ञान और सेवा का देश या समाज नहीं बन सकता। गांधी में अनेक महान आत्माएँ एकाकार होती थीं। उनमें महर्षि अरविंद का मानस था, रामकृष्ण परमहंस-सी भक्ति, विवेकानंद-सा देशप्रेम, रामतीर्थ-सी मेधा, क्रांतिकारियों के जैसा साहस और राममोहन राय, गोखले, तिलक जैसी ज्ञान के प्रति आस्था। इन सबका समन्वय थे गांधी।

इसलिए गांधी प्रकृति भी थे, पुरुष भी, नैतिक भी थे और नेतृत्व में नीतिवान भी। संयम उनकी साधना थी, नियम उनकी नैतिकता थी और यम उनका लोक व्यवहार था। संत का अंत नहीं होता बल्कि संत देहमुक्त होकर अनंत हो जाता है। आज आदमी, आदमी के बीच नफरत, जाति-जाति के बीच दुश्मनी और घृणा तथा मुल्क-मुल्क के बीच आतंक, तनाव और एक-दूसरे को मिटा देने की कट्टरता व्याप्त है। आखिर इतने सारे धर्म, मजहब पालने वाले दुनिया के लोगों ने अपने संतों से क्या पाया, क्या सीखा और क्या समझा?

गांधी एक लोकसत्ता हैं। यदि गांधी की लोकसत्ता सुरक्षित रखनी है तो गांधी को कंप्यूटर की किसी वेबसाइट या इंटरनेट की खिड़की में बंद करने के बजाय मैदान में उतारना होगा। ईसा जिस तरह से पुनर्जीवित हो उठे थे, उसी तरह हमें अपनी चेतना में गांधी को भी पुनर्जीवित करना होगा। आज उनके लिए यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी!

– असिस्टेंट प्रोफेसर, एम. ओ. पी. वैष्णव कॉलेज फॉर वूमेन, चेन्नै।

❑❑❑

महात्मा गांधी का सत्याग्रह

डॉ. ए. फातिमा

महात्मा गांधी ने सत्य को सत्याग्रह के माध्यम से राजनीति में प्रवेश दिलाया। उनके पूर्व सत्य का राजनीति में स्थान नहीं था। उन्होंने सत्याग्रह के माध्यम से स्वार्थ एवं असत्य से मैली बनी राजनीति को नैतिक मूल्यों का अधिकार प्राप्त करा दिया। राजनीति का शुद्धीकरण किया। यह उनका अत्यंत मौलिक कार्य है। इसीलिए सत्याग्रह उनके द्वारा राजनैतिक दर्शन को दी गई बहुमूल्य देन है। उन्होंने सत्याग्रह के रूप में सामान्यजनों को अपने अधिकारों की रक्षा की नई पद्धति दी। उनके दक्षिण अफ्रीका तथा भारत के सभी आंदोलनों का उद्देश्य सामान्य लोगों के अधिकारों की रक्षा करना ही था। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह के माध्यम से हिंसा एवं युद्ध को एक नैतिक पर्याय दिया। उन्होंने सत्याग्रह के रूप में शोषित पीड़ित, पराधीन, दुखी एवं दुर्बल मानवों के हाथों में अन्याय के विरुद्ध लड़ने का एक तेज एवं चमकदार शस्त्र दिया। इससे अपूर्व शक्ति का बल कम होता गया तथा अन्याय के विरुद्ध लड़ने का आम लोगों का बल बढ़ता गया। महात्मा गांधी के सत्याग्रह ने आम आदमी को निर्दयी, अन्यायी एवं क्रूर राजनैतिक तथा सामाजिक शक्ति के विरुद्ध लड़ने में बल दिया।

सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थः-

'सत्याग्रह' मूल संस्कृत शब्द है। प्राचीन काल में इसका अर्थ 'सत् क्रिया' था। सत्याग्रह शब्द 'सत्य' एवं 'आग्रह' इन दो शब्दों के संयोग से बना है। इसीलिए सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ सत्य का आग्रह होता है। महात्मा गांधी जी ने "सत्य से चिपके रहना ही सत्याग्रह" इस प्रकार सत्याग्रह की व्याख्या की है। वे लिखते हैं- सत्य की खोज करना तथा सत्य तक पहुँचना सत्याग्रह में अपेक्षित है।

नमक सत्याग्रहः-

सत्याग्रह यानी सरकार या समाज द्वारा बनाया गया अनैतिक कानून तोड़ना है। कोई भी अनैतिक या गलत कानून तोड़ना मनुष्य का अधिकार होता है। इतना ही नहीं, इस प्रकार का कानून तोड़ना हर व्यक्ति का कर्तव्य भी होता है। कानून तोड़ना मूलतः गलत होता है। प्रत्येक व्यक्ति को कानून का सम्मान करना चाहिए। कानून का पालन करना व्यक्ति एवं समाज के हित में होता है। परंतु अगर कोई कानून व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के हित को बाधा पहुँचाने वाला होता हो, तो उसका विरोध करने के लिए कानून तोड़ना अनिवार्य ही होता है। नमक सत्याग्रह के समय पर दी हुई उनकी दलील इसी तर्ज की है। उनके मतानुरूप ईश्वर ने मनुष्य को नमक दिया है। इसीलिए किसी भी सरकार या व्यक्ति को नमक लेने से प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से सत्य का अपमान ही होगा। इसीलिए नमक का कानून तोड़ना चाहिए। इस प्रकार का कृत्य एक तरह से सत्य के लिए किया गया आग्रह ही होता है। "सत्याग्रह यानी सत्य और अहिंसा तत्वों का उपयोजन है। वे कहते हैं सत्याग्रह यानी मानवी लक्ष्य प्राप्ति के लिए तथा अन्यायी, असत् शोषक एवं दुष्ट प्रवृत्ति का प्रतिकार करने के लिए 'सत्य एवं अहिंसा' तत्वों का किया गया उपयोजन है।"

सत्याग्रह के तत्व

महात्मा गांधी जी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह के निम्नांकित तत्व महत्वपूर्ण हैं। इन तत्वों का पालन करने

से सत्याग्रही सफल होता ही है ऐसा उनका विश्वास था।

1. सत्याग्रह का संघर्ष मुख्यत: आत्मबल के आधार पर ही किया जाना चाहिए। सत्याग्रह में शारीरिक या अन्य किसी भी बल की अपेक्षा आत्मबल महत्वपूर्ण होता है।

2. सत्याग्रह का मुख्य हेतु किसी घटना या प्रश्न के मूल में स्थित सत्य का पता लगाना होना चाहिए। सत्य की खोज करते समय विरोधकों के बारे में आदरभाव या सहानुभूति अपनाई जाए। विरोधकों की गलतियाँ उनकी नजर में लाकर उन्हें गलतियाँ करने से परावृत किया जाए।

3. सत्याग्रह न्याय एवं सच्चाई पर आधारित हो। सत्याग्रह जिन प्रश्नों के लिए किया जाता है, वह प्रश्न सत्य तथा सार्थक स्वरूप का हो।

4. सत्याग्रह शांति, प्रेम एवं त्याग पर आधारित हो।

5. 'अन्याय का प्रतिकार' सत्याग्रह की आत्मा होती है, यह प्रतिकार शोषण तथा दमन के विरोध में हो। सत्याग्रह में प्रतिकार के साथ विधायक कार्यक्रम को स्थान दिया जाए। विधायक कार्यक्रम प्रस्थापितों के हित रक्षण (Interest based) करने वाला नहीं बल्कि सामान्य मनुष्य की मूलभूत इच्छाओं की पूर्ति (Need based) करने वाला हो।

6. सत्याग्रह में अन्याय तथा जुल्म करने वाले विरोधियों के हृदय परिवर्तन पर जोर दिया जाए। उनका हृदय परिवर्तन स्वयंस्फूर्त, ऐच्छिक रूप से हिंसा टालकर, स्वयं पीड़ा सहन कर तथा शुद्ध साधनों का प्रयोग करते हुए हो। विरोधियों का हृदय परिवर्तन करते समय सत्याग्रही असहयोग, अनशन आदि मार्गों को अपनाएँ। सत्याग्रही के मन में विरोधियों के संबंध में द्वेष की भावना न हो।

7. सत्याग्रह में नि:स्वार्थ वृत्ति तथा कृत्यों एवं विश्वास को महत्व दिया जाए। त्याग में किसी को भी जीतने की शक्ति होती है। इस सत्य को सत्याग्रही समझे।

8. कोई भी मनुष्य मूलत: अच्छा ही होता है, वह बदल सकता है तथा सभी प्रश्न या संघर्ष अहिंसा के मार्ग से हल हो सकते हैं, इस पर सत्याग्रही का विश्वास हो। व्यक्ति कितना भी गया-गुजरा क्यों न हो या कितना भी अन्यायी हो उसके मन में सत्प्रवृत्ति निवास करती ही है। उसके अंदर मुक्त रूप से सोई यह सत्प्रवृत्ति सत्याग्रह के मार्ग से जागृत की जा सकती है, बढ़ाई जा सकती है, इस पर सत्याग्रही का विश्वास हो।

9. सत्याग्रही को सत्याग्रह का लक्ष्य प्राप्त होने तक क्लेश सहन करने की तैयारी रखनी चाहिए। उसे विरोधियों को क्लेश न देकर स्वयं ही क्लेश सहने चाहिए।

10. अच्छे लक्ष्य प्राप्ति के लिए साधन भी अच्छे ही अपनाएँ जाएँ।

11. सत्याग्रही त्यागी एवं प्रामाणिक प्रवृत्ति का हो।

12. सत्याग्रह में निष्क्रियता को नहीं सक्रियता का अधिक महत्व होता है। इससे सत्याग्रही को सामाजिक, राजनैतिक तथा राष्ट्रीय जीवन में पाए जाने वाले अन्याय का सक्रिय प्रतिकार किया जाना चाहिए।

13. सत्याग्रह कभी भी व्यक्तिगत लाभ के लिए न किया जाए उसका प्रयोजन सामाजिक हित प्राप्त करना ही होना चाहिए।

14. सत्याग्रह में कम से कम माँगें तथा निश्चित लक्ष्य होना चाहिए। सत्याग्रही द्वारा एक बार माँग निश्चित किए जाने पर माँगों के दायरे बढ़ाए नहीं जाने चाहिए।

15. सत्याग्रही को माँगें प्राप्त करने एवं संघर्ष मिटाने के लिए समझौते की तैयारी हमेशा रखनी चाहिए। समझौता करना लाचारी नहीं है।

16. सत्याग्रह में अनुशासन को महत्व दिया जाना चाहिए, इस संदर्भ में सत्याग्रही को उसके नेताओं द्वारा दी गई सभी आज्ञाओं का शत-प्रतिशत पालन करना चाहिए।

17. सत्याग्रह के माध्यम से जीत होगी ही इस पर सत्याग्रही का अडिग-अटूट विश्वास हो। सत्याग्रह के माध्यम से जो यश प्राप्त होता है वह सत्याग्रह के द्वारा ही निरंतर बनाए रखने की कोशिश करनी है।

18. सत्याग्रह हमेशा नहीं तो प्रसंगानुरूप ही किया जाए।

19. सत्याग्रही को प्रश्न या संघर्ष मिटाने के लिए प्रथमत: अन्य सभी प्रकार के मार्गों को अपनाना आवश्यक है। सत्याग्रह करने से पहले सत्याग्रही को चाहिए कि वह संबंधित अधिकारी या व्यक्ति से मिले, लोकमत को आह्वान करना, लोकमत जागृत कर अपने अनुकूल बनाए, अपना पक्ष शांति के साथ रखे आदि। प्रश्न हल करने के इन मार्गों तथा उपायों से काम न बनने पर ही सत्याग्रह का हथियार उठाना चाहिए।

20. सत्याग्रही को अपनी ही गलती नजर आने पर वह गलती विनम्रतापूर्वक नि:संकोच स्वीकार करनी चाहिए।

किसी भी समस्या, स्थान, समय से संबद्ध सत्याग्रह करते समय इन तत्वों का शत-प्रतिशत पालन किया जाना चाहिए। ऐसा महात्मा गांधी जी का अतीव आग्रह होता था। उनका मानना है कि इन तत्वों के अनुरूप किया गया सत्याग्रह ही सच्चा सत्याग्रह होता है।

सत्याग्रह के प्रकार

सत्याग्रह का प्रयोग व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से किया जा सकता है। व्यक्तिगत सत्याग्रह एवं सामूहिक सत्याग्रह आदि सत्याग्रह के प्रमुख दो प्रकार होते हैं। किसी अकेले व्यक्ति द्वारा किया गया सत्याग्रह व्यक्तिगत सत्याग्रह होता है। समूह के सहभाग से किया हुआ सत्याग्रह सामूहिक सत्याग्रह होता है। इन दोनों प्रकार के सत्याग्रह की कुछ समान विशेषताएँ होती हैं। दोनों सत्याग्रह नैतिक स्तर से करने पड़ते हैं। उनके यश-पराजय का मूल्यांकन नैतिक मूल्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। ये दोनों सत्याग्रह सामाजिक हित के लिए किए जाने चाहिए। व्यक्तिगत या संकुचित स्वार्थ के लिए ये नहीं होते। व्यक्तिगत सत्याग्रह भी सामाजिक प्रश्न हल करने के लिए किया जाना चाहिए। वह मात्र खुद के प्रश्नों को हल करने के लिए न किया जाए।

महात्मा गांधी दुश्मनों की संवेदनशून्यता के परे स्थित सद्सद् विवेक पर प्रहार कर रहे थे और एक महान राष्ट्र उस प्रहार का जवाब दे रहा था। परंतु आत्मा पर हो रहे प्रहार के कारण वे दिन-ब-दिन निराश और पराजित हो रहे थे।

सामुदायिक सत्याग्रह का एक विशेष नीतिशास्त्र होता है। सत्याग्रही को सत्याग्रह में सहभागी होने से पूर्व सत्याग्रह के नेता को तथा उसके कार्यक्रम को स्वीकार करना पड़ता है। सत्याग्रही द्वारा सत्याग्रह को सम्मिलित होने का एक बार निर्णय लेने पर तुरंत पूरी तरह समर्पित होना ही चाहिए। फिर सत्याग्रह जारी रहने की स्थिति में उसे नेता की आज्ञाओं का पालन करना ही होगा। फिर वे विचार हों, वाणी हों या कृत्य किसी भी स्तर पर नेता की आज्ञाओं की अवज्ञा न करें। सत्याग्रही को इस नीति-शास्त्रीय अनुशासन का सामूहिक सत्याग्रह में पालन करना आवश्यक होता है। उसमें यह अनुशासन रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से आ सकता है, ऐसी उनकी धारणा थी।

सत्याग्रह की पद्धति

सत्याग्रह स्वराज्य प्राप्ति का महत्वपूर्ण तंत्र है ऐसी महात्मा गांधी की धारणा थी। इसीलिए उन्होंने सत्याग्रह का सर्वांगीण विवेचन किया है। सत्याग्रह कैसे करें? इस प्रश्न के संबंध में समय-समय पर उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इन विचारों एवं चिंतनों से प्रस्तुत सत्याग्रह की विभिन्न पद्धतियों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। उनके मतानुसार सत्याग्रह किसी एक विशेष पद्धति से ही किया जा सकता है ऐसा नहीं कि व्यक्ति या समाज की क्षमता, मानसिकता एवं तत्कालीन परिस्थिति पर गौर करते हुए सत्याग्रह पद्धति का चयन किया जाना चाहे। उनके मत से परिस्थिति के अनुरूप निम्नांकित पद्धतियों का प्रयोग कर सत्याग्रह किया जा सकता है।

बहिष्कार

बहिष्कार सत्याग्रह का एक प्रभावपूर्ण एवं उपयुक्त तंत्र है। यह असहयोग का सर्वोतम मार्ग है। जो लोग जनता की भावनाओं की तथा विचारों की परवाह नहीं करते, खुद के स्वार्थ के लिए लोगों के हित हेतु चलाए जाने वाले आंदोलनों तथा लोकोपयोगी कार्यों का विरोध करते रहते हैं, उन लोगों का बहिष्कार करना चाहिए।

उनका कहना है कि बहिष्कार का प्रयोग करते समय कुछ सावधानियाँ बरतनी चाहिए। जिन पर बहिष्कार डाला जा रहा है उन्हें किसी भी प्रकार की चोट पहुँचनी नहीं चाहिए, इसकी ओर पूरा ध्यान रखना है। उन्हें गंदी गालियाँ नहीं दी जानी चाहिए। उन्हें आवश्यक सभी प्रकार की सुविधाएँ मुहैया करा दी जानी चाहिए। बहिष्कार की समयावधि में उन्हें जीवनावश्यक वस्तु उपलब्ध होने में बाधाएँ उत्पन्न करना एक प्रकार की हिंसा ही होती है। बहिष्कार में व्यक्ति या समूह का सामाजिक जीवन में प्रवेश नकारना अपेक्षित होता है। परंतु उसे पुराने समय की तरह समाज से बहिष्कृत करने का स्वरूप प्राप्त नहीं होना चाहिए। जिन पर बहिष्कार डाला जाता है, उन्हें सामाजिक जीवन असह्य कर उन्हें अपनी ओर झुकाना इसमें अपेक्षित होता है। परंतु इसमें काफी संयम बरता जाना चाहिए। बहिष्कार द्वारा बहिष्कृत व्यक्ति या समूह का अपमान नहीं होगा, इसकी भी सावधानी बरती जानी चाहिए।

बहिष्कार जिस प्रकार व्यक्ति या किसी समूह विशेष पर डाला जाता है वैसे ही वस्तुओं पर भी डाला जाता है। पराई वस्तुओं पर बहिष्कार डाला जाए इस

प्रकार तिलक की तरह महात्मा गांधी जी का भी आग्रह था। क्योंकि पराई वस्तुओं का प्रयोग करने से पराई सत्ता स्थाई बन जाती है। इससे अपना आर्थिक शोषण होता है। परिणामत: पराई राजनैतिक एवं आर्थिक सत्ता दृढ़ हो जाती है। इससे पूंजीवादी व्यवस्था मजबूत बन जाती है। देश के सभी लोगों द्वारा एक ही समय सभी स्थानों पर पराई वस्तु प्रयुक्त न करने की तथा उन पर बहिष्कार डालने के संकल्प से पराई राजनैतिक सत्ता एवं पूंजीवादी व्यवस्था क्षीण हो जाती है। विदेशी राजनैतिक एवं आर्थिक शोषण पर नियंत्रण लाया जा सकता है। दूसरी ओर, लोग स्वदेशी वस्तु या स्वदेशी उत्पादन प्रयुक्त करें तो देशी उद्योग जीवित रहेंगे तथा बढ़ेंगे। इससे देश की दरिद्रता, विषमता, बेकारी आदि प्रश्न हल करने में सहायता होगी। इसीलिए उनका मानना था कि लोगों को विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना उपयुक्त होता है। भारत में आने का विदेशी वस्तुओं पर बहिष्कार करने की उनकी नीति का उन्होंने समर्थन किया। उन्होंने विदेशी स्कूल, महाविद्यालय, विभिन्न संस्था, समारोहों का बहिष्कार करने का लोगों को संदेश दिया। 1920-1922 की समयावधि में उन्होंने विदेशी कपड़ों पर मात्र बहिष्कार ही नहीं किया अपितु उनकी होली जलाने का कार्यक्रम दिया। स्वयं उन्होंने जुलाई, 1921 में विदेशी कपड़ों की होली के कार्यक्रम का उद्घाटन किया। बारडोली के किसानों को 1922 में लगान देने पर बहिष्कार डालने की सलाह दी। कांग्रेस ने भी 1920 में ब्रिटिश बैंक, बीमा कंपनियाँ, उद्योग तथा अन्य सीमाओं के बहिष्कार का निर्णय लिया था। इस पद्धति से महात्मा गांधी जी ने बहिष्कार का सत्याग्रह के एक प्रभावी माध्यम के रूप में प्रयोग किया था। बहिष्कार का शस्त्र तलवार की अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण शस्त्र है। बहिष्कार अहिंसक परंतु प्रभावपूर्ण हथियार है। भारत में बहिष्कार के कारण ही स्वराज्य प्राप्ति के लिए अनुकूल एवं उपयुक्त प्रकार का लोकमानस तैयार हुआ।

अनशन

महात्मा गांधी जी ने सरकार एवं समाज की ओर से होने वाले अन्याय का प्रतिकार करने के लिए तथा उन पर नैतिक दबाव लाने के लिए 'अनशन' सत्याग्रह तंत्र का प्रयोग किया। उन्होंने अनशन का मात्र व्यक्तिगत ही नहीं अपितु सामाजिक तथा राजकीय जीवन में भी प्रयोग किया। उन्होंने अनशन को भारतीय राजनीति एवं समाजनीति में लोकप्रिय बनाया। उसे प्रतिष्ठा एवं मान्यता दिलाई।

उनका मानना है कि अनशन अन्याय का प्रतिकार करने का आसान एवं सरल मार्ग है। किसी भी व्यक्ति को अगर उस पर अन्याय होता है ऐसा लगे तो वह अनशन कर सकता है। अनशन के लिए पैसे की जरूरत नहीं होती। उसके लिए बहुत बड़े संगठन एवं सामग्री की भी आवश्यकता नहीं होती। इसीलिए समाज के आम से आम तथा दुर्बल से दुर्बल व्यक्ति भी उस पर होने वाले अन्याय के निवारण के लिए या अन्याय करने वाले व्यक्ति तथा संस्था का प्रतिकार करने के लिए अनशन का प्रयोग कर सकता है। परंतु अनशन करने वाला व्यक्ति शील संपन्न होना आवश्यक है। उसका मनोबल दृढ़ होना चाहिए। किसी भी प्रकार के त्याग करने की उसकी तैयारी होनी चाहिए। उसके विचार स्पष्ट हों, उसे निर्व्यसनी होना चाहिए। उसके भीतर समाजोपयोगी अच्छे कामों के लिए जीवन समर्पित करने की सद्वृत्ति होनी चाहिए। वह निर्भय तथा नि:स्वार्थी हो। उसने किसी भी प्रकार के फल की कामना न रखते हुए अनशन करना चाहिए। अधिक से अधिक सहकार की तैयारी उसे रखनी चाहिए। श्रद्धा शांति एवं नि:स्वार्थ भावना से वह अनशन करें नहीं तो अनशन एक प्रकार की भूख-हड़ताल बनकर रह जाएगा। अनशन जैसे आत्मशुद्धि के लिए होता है वैसे ही प्रतिपक्ष के हृदय परिवर्तन के लिए भी होता है, इसे अनशनकर्ता को ध्यान में रखना चाहिए। जिस व्यक्ति में ये गुण होते हैं वही व्यक्ति अनशन-तंत्र का प्रयोग कर सकता है। उसमें वह सफल भी हो सकता है।

हड़ताल

हड़ताल हर तरफ उपयोग में लाया जाने वाला पुराना तंत्र है। इसे लगभग सभी क्षेत्रों में मान्यता प्राप्त हो चुकी है। महात्मा गांधी जी ने हड़ताल का प्रयोग प्रमुखत: कामगारों पर होने वाले अन्यायों के निवारण के लिए किया था। उन्होंने इसके माध्यम से कामगारों के प्रश्न हल किए। कामगारों को उनके मालिक की ओर से उचित वेतन मिले तथा उन पर सेवा के संदर्भ में अन्याय न हो इसलिए हड़ताल का उपयोग किया जाता है। महात्मा गांधी जी के मत से हड़ताल करना कामगारों का अधिकार है। उन्होंने 1916 में अहमदाबाद के कामगारों की समस्या हल करने के लिए हड़ताल का उपयोग किया। उस समय उन्होंने वहाँ के कामगारों को उनकी मांगें मंजूर होने तक काम पर न जाने का

आह्वान किया था। उनके मतानुसार कामगारों द्वारा हड़ताल करते समय कारखानें की प्रगति की उपेक्षा कर काम नहीं चलेगा। हड़ताल के कारण कारखाने की तोडफ़ोड़ न हो, कारखाना बंद न करना पड़े इसका भी ध्यान हड़ताल पर जाने वालों को रखना चाहिए। हड़ताल करने से पूर्व सबसे पहले कारखाने के मालिक के साथ उचित पद्धति से चर्चा कर अन्याय दूर करने का प्रयत्न किया जाए। कारखाने के मालिक को भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि अगर हमने कामगारों का अधिक शोषण किया तो कामगार उनके कारखाने को तहत-नहस किए बिना नहीं रहेंगे, कामगारों के श्रम में से ही उन्हें बंगला तथा गाड़ियाँ मिली हुई होती हैं। अतएव मालिकों को भी समझदारी दिखाकर कामगारों की न्यायोचित माँगें मंजूर कर देनी चाहिए। मालिक एवं कामगारों का संबंध पिता एवं पुत्र के संबंध के समान होना चाहिए। इस प्रकार के संबंध नहीं रखे गए तो दोनों ही ढह कर गिर जाएँगे तथा दोनों का ही नुकसान होगा। इससे हड़ताल में दोनों ओर से समझदारी दिखाई जानी चाहिए।

धरना

सत्याग्रह में धरना देना उपयुक्त तंत्र है। यह प्रतिकार का नैतिक मार्ग है। इसका उपयोग कानूनी मार्ग से किया जाना चाहिए। अर्थात् अन्याय एवं शोषण करने वाले व्यक्ति एवं संस्था के सामने बैठे रहना है। धरना देने के पीछे का हेतु अन्याय एवं शोषण करने वाले व्यक्ति या संस्थाओं को वे जो अन्याय कर रहे हैं उसे सबकी नजर में लाने का होता है। इसका दूसरा उद्देश्य अन्याय की ओर समाज के अन्य लोगों का ध्यान आकर्षित करना होता है। इसके द्वारा समाज को कुप्रथाओं से परावृत्त करने का प्रयास होता है। इसीलिए महात्मा गांधी जी ने अफीम, शराब तथा विदेशी कपड़ों की दुकानों के सामने धरना आंदोलन 1919, 1922 एवं 1930-40 में आयोजित किए थे। उनका मत था कि धरना आंदोलन में युवा और महिलाएँ बड़ी संख्या में सहभागी होने पर उसका परिणाम संबद्ध व्यक्तियों पर अधिक प्रमाण में नैतिक दबाव आने से होता है।

हिजरत

हिजरत सत्याग्रह के अनेक तंत्रों में से एक तंत्र है। हिजरत अर्थात् स्वेच्छा से स्थानांतरित होना। अन्याय सहते रहने की अपेक्षा अन्यायग्रस्त व्यक्ति या समाजसमूहों का अन्य स्थानों पर स्थानांतरित होना हिजरत में अपेक्षित है। उनके मतानुसार व्यक्ति या एक-दो समाज समूह पर निरंतर अन्याय हो रहा है। वह रुक न रहा हो, उन्हें संरक्षण न मिल रहा हो तथा अन्यायग्रस्तों में उस अन्याय का प्रतिकार करने की शक्ति न हो तो अन्यायग्रस्तों को अपरिहार्यता समझकर अन्याय होने वाले स्थानों के पास से दूसरे स्थानों पर स्थानांतरित होना चाहिए। अन्याय सहन करना गलत होता है परंतु अन्याय का प्रतिकार करने की क्षमता न हो तो स्थानांतरण करना ही हितकारक होता है। भारतीय इतिहास में हिजरत यानी स्थानांतरण के कई उदाहरण दिखाई देते हैं। परंतु ये सभी स्थानांतरण हिंसा के उपयोग से किए हुए दिखाई देते हैं। परंतु महात्मा गांधी के मत से स्थानांतरण अहिंसा के मार्ग से होना चाहिए। 1930 में बारडोली के किसानों ने सरकार के अन्याय के विरोध में इस तंत्र का प्रयोग किया था। 1935 में कोटा के हरिजन वहाँ के सवर्णों के जुल्म का विरोध करने में असमर्थ हुए इसीलिए महात्मा गांधी जी ने उन्हें स्थानांतरण करने की सलाह दी थी।

लगानबंदी

महात्मा गांधी जी के मत से अगर सरकार अनुनय-विनय तथा अन्य नैतिक मार्गों को अपनाकर भी अन्याय एवं जुर्म रोक न रही हो तो विवश होकर 'लगानबंदी' सत्याग्रह के तंत्र का उपयोग किया जाए। अन्याय एवं जुर्म करने वाली सरकार को लगान देने से रोकना ही लगानबंदी है। उन्होंने सरकार को झुकाने के लिए इस तंत्र का उपयोग किया। उन्हें यह मालूम था कि कोई भी सरकार लोगों द्वारा महसूल के रूप में लगान दिये बिना नहीं चल सकती। लगानबंदी के कारण सरकार के द्वारा आर्थिक नाकाबंदी की जा सकती है। उन्होंने लगानबंदी का 1918 के सत्याग्रह में, 1930 के बारडोली के सत्याग्रह में, 1930 के नमक सत्याग्रह में तथा 1932 के असहयोग आंदोलन में बहुत ही प्रभावपूर्ण रूप से प्रयोग किया था। परंतु लगानबंदी तंत्र का बहुत ही सजगता एवं सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए ऐसा उनका मानना था। इस संदर्भ में वे लिखते हैं- "लगानबंदी को लोग शीघ्र प्रतिसाद देते हैं। इससे लोक-नेताओं को इस तंत्र जल्दबाजी में प्रयोग नहीं करना चाहिए। उन्हें सोच समझकर तथा लोगों की पाक्षिक तैयारी कर इसको इस्तेमाल करना चाहिए। लगानबंदी से सरकार लोगों की संपत्ति, पशु या अनाज भी जब्त करने के लिए आगे-पीछे नहीं देखती। ऐसी स्थिति में व्यक्तियों को स्वयं पर नियंत्रण रखना चाहिए। अनुशासन से बर्ताव करना चाहिए। उन्हें अपना संयम

कायम रखना चाहिए। साथ ही सभी प्रकार की यातनाओं को चुपचाप सह लेना चाहिए।''

असहयोग

असहयोग सत्याग्रह का अत्यंत प्रभावपूर्ण मार्ग है। किसी भी अन्यायी तथा अत्याचारी सरकार का प्रतिकार करने के लिए इस अस्त्र का प्रयोग किया जा सकता है। असहयोग का शब्दगत अर्थ किसी कार्य में एक व्यक्ति या संगठन, दूसरे व्यक्ति के या संगठन का सहयोग या सहभाग माँगता हो तो दूसरे के द्वारा वह न देना ही असहयोग है। महात्मा गांधी जी के मत से लोगों को अन्यायी, अत्याचारी तथा भ्रष्ट सरकार को दिया जाने वाला समर्थन तथा उसे सहयोग न करना असहयोग है। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में असहयोग का बहुत ही कुशलता के साथ प्रयोग किया।

महात्मा गांधी जी ने असहयोग का पहला घोषणापत्र 10 मार्च, 1920 को जारी किया। उसमें उन्होंने असहयोग की तात्विकता स्पष्ट की। उसमें वे कहते हैं कि "हमारी मांगें अगर मंजूर नहीं हुई तो हमें क्या करना है इस संबंध में दो शब्द लिखता हूँ। खुलेआम या छिपकर युद्ध करना यह जंगली मार्ग है। कम से कम वह अव्यवहार्य है, ऐसा समझकर छोड़ देना आवश्यक है। वह मार्ग सभी परिस्थितियों में अहितकारी ही है। इसका अगर मैं सभी को विश्वास दिला सकूँ तो हमारी सभी न्याय मांगें हमें अल्पावधि में ही प्राप्त हो सकेंगी। अत्याचार का त्याग करने वाले व्यक्ति द्वारा राष्ट्र में जो शक्ति निर्मित की जाती है, वह अप्रतिम कार्य करती है। परंतु अप्रतिम अत्याचारों के विरुद्ध मेरा आज का तर्क पूर्णत: अव्यवहार्य तथा निष्फल है। इसीलिए असहयोग का एक ही शस्त्र हमारे पास उपलब्ध है। वह बहुत ही स्पष्ट मार्ग है। अत्याचारों से पूर्णत: अलिप्त रहने से वह उतना ही प्रभावकारी होगा। जब सहयोग का अध:पतन एवं अपमान होता जा रहा है या हमारे द्वारा स्वीकार की गई धार्मिक भावनाओं को अगर ठेस पहुँच रही है तब असहयोग कर्तव्य बन जाता है। जो अधिकार हमें अपने प्राणों से भी प्रिय है, उसका अपहरण होने पर हम चुपचाप सहें ऐसी अपेक्षा इंग्लैंड कभी-भी नहीं रख पाएगा। इसलिए हम असहयोग का मार्ग स्वीकार कर सकेंगे। जिन्हें सम्मान की उपाधियाँ तथा अधिकार प्राप्त हुए हैं वे उनका त्याग करें। असहयोग के तहत् निजी नौकरियों का त्याग समाविष्ट नहीं होता। जो असहयोग करने वाले नहीं हैं, उन्हें सामाजिक बहिष्कार का डर दिखाना मुझे पसंद नहीं। आत्मप्रेरित असहयोग जनता के भावनाओं की तथा असंतोष की कसौटी है। सिपाहियों को नौकरी छोड़ने के लिए कहना असंगत है। जब वाईसरॉय, भारत मंत्री तथा मुख्य प्रधान हमें धोखा देंगे तब हर कदम सोच समझकर रखते जाना चाहिए। अत्यंत प्रखर वातावरण में भी संयम बना रहे, इसके लिए हमें आहिस्ते-आहिस्ते प्रगति करनी चाहिए।" उनके इस वक्तव्य से महात्मा गांधी के असहयोग की संकल्पना का स्वरूप स्पष्ट होता है।

असहयोग आंदोलन की वजह से देश में आर्थिक सुधारों को गति प्राप्त हुई। शराबबंदी का कार्यक्रम व्यापक रूप से चलाया गया। शराबबंदी कार्यक्रम के कारण शराब की आदत में अपेक्षातीत कमी आई। इसका आम आदमी को अत्यधिक लाभ हुआ। आम आदमी के जीवन में यह निर्णय अत्यधिक लाभकारी साबित हुआ। खादी और ग्रामोद्योग का विकास एवं प्रचार चहुँओर हुआ लोगों के स्वराज्य फंड को स्वयंस्फूर्ति से प्रतिसाद दिया। एक करोड़ रूपए की पूंजी संकलन का लक्ष्य रखने वाले 'स्वराज्य फंड' में एक करोड़ पंद्रह लाख रुपए जमा हो गए। इन रुपयों से देश में बीस लाख चरखे शुरू हुए। इससे लोगों की आर्थिक उन्नति हुई। असहयोग आंदोलन के कारण पूरे देश में स्वराज्य प्राप्ति के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित हुआ। असहयोग आंदोलन की यह बहुत बड़ी सफलता थी।

गांधी जी ने अपने 50 वर्ष के सार्वजनिक जीवन में ऊपर उल्लिखित कुछ तथा अन्य सत्याग्रह के विश्लेषण से उनका सत्याग्रह संबंधी संदेश स्पष्ट हो जाता है। सत्याग्रह स्थानीय प्रश्न से राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय से व्यापक प्रश्न के लिए किया जा सकता है। किसी भी प्रकार का प्रश्न हिंसा का प्रयोग न कर शांतिपूर्ण मार्ग से हल करना संभव है। सत्याग्रह सत्य और न्याय प्रश्नों के लिए ही किया जाना चाहिए। सत्याग्रह का मार्ग शत-प्रतिशत यश प्राप्त कराने वाला मार्ग है, परंतु उसके लिए निरंतरता, क्लेश सहने की सहनशीलता, मूल्यों पर अटल रहने का दृढ़ संकल्प एवं लोक जागृति करने की आवश्यकता होती है। सत्याग्रह के लिए परिस्थिति एवं समस्याओं का प्रत्यक्ष अवलोकन, संवाद, संपर्क एवं समझौते की मानसिकता होना आवश्यक है। सत्याग्रह के माध्यम से लोगों के तथा विरोधियों के मत एवं मन परिवर्तित करना संभव होता है। सत्याग्रह में शक्तिशाली सत्ता को भी झुकाने की क्षमता एवं शक्ति होती है।

विधायकी कार्यक्रमों से सत्याग्रह को लोकाधार एवं शक्ति प्राप्त होती है। सत्याग्रह से नेता एवं कार्यकर्ता का निर्माण होता हैं। हड़ताल करने वाले नेताओं को सत्याग्रह के यश-अपयश की जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए। सत्याग्रह के लिए नेताओं की स्पष्ट एवं अटल वैचारिक दृष्टि, समय आने पर कानून का उपयोग करने की क्षमता, नए-नए कार्यक्रम देने की सृजनशीलता, दाँवपेच पहचानने की एवं खेलने की कूटनीतिज्ञता और आंदोलन के लिए कुशलता के साथ संचार माध्यम प्रयुक्त करने का कौशल तथा अधिकारियों के साथ स्नेह भरे संबंध रखने की क्षमता आदि गुणों का होना आवश्यक होता है।

कुछ सत्याग्रह

महात्मा गांधी जी ने अपने 50 वर्ष के सामूहिक जीवन में विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत एवं सामुदायिक सत्याग्रह किए। उसमें से कुछ सत्याग्रह बहुत ही ध्यान देने लायक हैं।

1. दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह (सन् 1906)
2. विरगांम जकात प्रकरण (सन् 1915)
3. गिरमिट-प्रथाबंदी के लिए सत्याग्रह (सन् 1917)
4. वाइकोम सत्याग्रह (सन् 1925)
5. चंपारण का सत्याग्रह (सन् 1917)
6. खेड़ा सत्याग्रह (1918)
7. अहमदाबाद के कामगारों का सत्याग्रह
8. नमक सत्याग्रह

अपने देश में जनतंत्र टिका रहा वह महात्मा गांधी प्रदत्त सत्याग्रह के मूल मंत्र की वजह से ही, ऐसा कहे तो अत्युक्ति नहीं होगी। आज समाज के आम लोगों का शोषण होता हुआ दिखता है। उनकी आम जरूरतें पूरी होते हुए नहीं दिखतीं। आम आदमी के हिस्से में दरिद्रता, अज्ञान, विषमता, शोषण और इससे उत्पन्न अमानवीय जीवन किसी भी संवेदनशील इंसान को आम लोगों का यह अमानवीय जीवन व्यथित करता है। संवेदनशील एवं विवेकी मनुष्यों द्वारा सत्याग्रह का उपयोग किया जाए, उसे उपयोग में लाने के लिए लोगों को प्रेरित किया जाए, तो मानव जीवन के दु:खों की तीव्रता कम हो सकेगी ऐसा हमें लगता है। विचार या तत्व या मूल्य कितने भी भव्य रहे तो भी वे प्रत्यक्ष कृति में प्रगट हुए बिना आम लोगों के जीवन का उद्धार नहीं कर सकते। इसके लिए सत्याग्रह रामबाण उपाय है। सत्याग्रह अन्याय, अत्याचार समाप्त करने के लिए जैसे उपयुक्त है वैसे ही वह मानवी स्वराज्य के संरक्षण के लिए तथा संवर्धन के लिए भी लाभदायी है। सत्याग्रह सर्वोत्तम मार्ग है ऐसा हमें लगता है। सत्याग्रह स्वराज्य का संरक्षक, रखवाला है। सत्याग्रह का व्यवस्थित उपयोग करने पर सत्याग्रह स्वराज्य प्राप्ति का या स्वराज्य को चिरस्थायी करने का प्रभावपूर्ण शस्त्र बन सकता है। सत्याग्रह के बिना स्वराज्य का, व्यक्ति का या राष्ट्र का संरक्षण नहीं हो सकेगा। इसीलिए स्वराज्य के लिए सत्याग्रह आवश्यक एवं उपयुक्त है। सत्याग्रह के आत्मबल, नीतिबल या सत्य का बल लोगों में विकसित होने पर ही स्वराज्य अबाधित एवं सुरक्षित रहेगा ऐसा हमारा मानना है। लोगों में यह आत्मबल रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इसी वजह से सत्याग्रह का आशय उचित ढंग से समझकर, बदलते समय में उसे नया आयाम देकर उसका उपयोग करने पर सत्याग्रह अन्याय निवारण के शस्त्र के रूप में बहुत उपयुक्त साबित हो सकता है। क्योंकि सत्याग्रह ही गुलामी का स्वतंत्रता में, अन्याय का न्याय में और विषमता का समता में रूपांतर करने की क्षमता रखता है। सत्याग्रह में ही शोषितों के शोषण का निवारण करने की, सत्य एवं प्रेम की एक बड़ी शक्ति है।

-असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, स्टेला मॉरिस कॉलेज, चेन्नै-86

❑❑❑

गांधी जी का अनुवाद-कर्म

डॉ. हरीश कुमार सेठी

'अहिंसा' को अचूक शस्त्र बनाकर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को एक दिशा देने वाले महान राष्ट्र निर्माता राष्ट्रपिता मोहनदास कर्मचंद गांधी जी का भारतीय समाज और संस्कृति को अतुलनीय योगदान रहा है। उनके विचार लिखित रूप में और उनके कृत्यों का अनगिनत रचनाओं में उल्लेख, विवेचन-विश्लेषण के रूप में उपलब्ध है। गांधी जी स्वयं साहित्यकार तो नहीं थे, किंतु साहित्यकार के रूप में उनका योगदान किसी भी रूप में कम उल्लेखनीय नहीं है। उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी, यात्रा संबंधी अनेक वृत्तांत और संस्मरण लिखे। उनके यात्रा वृत्तांत तो ललित निबंधों की श्रेणी में गिने जाते हैं। गांधी जी मुख्य रूप से अंग्रेजी और गुजराती के बहुत अच्छे लेखक थे। इसके अलावा, उन्होंने थोड़ा-बहुत हिंदी में भी लिखा। गांधी जी के समस्त लिखित और वाचिक साहित्य के प्रकाशन का अधिकार-प्राप्त नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद ने उनके हिंदी में लिखित लेखों और टिप्पणियों को 'बापू की कलम से' पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया हुआ है।

गांधी जी बहुभाषा-भाषी भी थे। उनकी मातृभाषा गुजराती थी और उनकी शिक्षा अंग्रेजी भाषा में हुई थी। इंगलैंड में बैरिस्टरी की शिक्षा के साथ-साथ उनके दैनिक जीवन-व्यवहार में भी अंग्रेजी ही माध्यम भाषा बनी थी। दक्षिण अफ्रीका में वकालत एवं संघर्ष भी उन्होंने अंग्रेजी में ही चलाया। उन्होंने उर्दू, तमिल और बंगला भाषाएँ भी सीखीं थीं। इसके अलावा, उन्हें फ्रांसीसी भाषा का भी पर्याप्त ज्ञान था।

महात्मा गांधी ने अपने जीवन-काल में साहित्य रचना के साथ-साथ अनुवाद साधना भी की है और अनुवाद चिंतन भी। उनका यह चिंतन उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र अनुवाद संबंधी विचारों के रूप में और उनकी रचनाओं के अनुवादों की भूमिकाओं आदि के माध्यम से प्राप्त होता है। इसके अलावा, गांधी जी ने अपने जीवन में 'भाषांतरकार' और अनूदित सामग्री को जाँचने-परखने वाले अर्थात् 'पुनरीक्षक' की भूमिका भी निभाई और कोश-निर्माण कार्य भी किया। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व-कृतित्व और उसके विवेचन-विश्लेषण एवं महत्व-प्रतिष्ठा-आलोचना पर अनगिनत अध्ययन कार्य हुए हैं और अभी भी हो रहे हैं। किंतु इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि गांधी जी के पक्ष लगभग अनालोचित ही बने हुए हैं। वैसे, इस संदर्भ में किए गए कतिपय प्रयासों में डॉ. कमल किशोर गोयनका और प्रो. हेमचंद्र पांडे के नाम विशेषतौर पर उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में 'अनुवादक, पुनरीक्षक, भाषांतरकार और कोशकार गांधी' से परिचित कराने के साथ 'अनुवाद सैद्धांतिकी के निर्माण और समृद्धि में गांधी जी के योगदान' के आलोक में गांधी जी की अनुवाद साधना को रेखांकित किया गया है।

(1) **'अनुवादक, पुनरीक्षक और भाषांतरकार गांधी':**

गांधी जी ने अनुवाद कर्म के जरिए साहित्य-समृद्धि में अपना योगदान दिया है। उन्होंने मुख्य रूप से अंग्रेजी से गुजराती में अनुवाद किए। उल्लेखनीय यह भी है कि गांधी जी ने अपनी रचनाओं के स्वयं अनुवाद भी किए

हैं। जैसे, उन्होंने गुजराती में लिखी अपनी 'हिंद स्वराज' का अंग्रेजी अनुवाद स्वयं किया था। गांधी जी ने मूल 'हिंद स्वराज' को इंगलैंड से लौटते समय 'किल्डोनन कैसिल' नामक जहाज पर लिखा, जो उनके दक्षिण अफ्रीका पहुँचने पर 'इंडियन ओपिनियन' में प्रकाशित हुई थी और फिर जनवरी 1910 में पुस्तकाकार रूप में। भारत में मुंबई सरकार ने 24 मार्च 1910 को उसके प्रचार पर प्रतिबंध लगा दिया था। अपने यूरोपीय मित्र कैलेनबैक से हुई चर्चा के बाद गांधी जी ने इसका मौखिक अंग्रेजी अनुवाद किया और कैलेनबैक ने इसे लिपिबद्ध किया था। 'हिंद स्वराज' के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में गांधी जी ने स्वीकार किया है कि "It is not a literal translation but it is a faithful rendering of the original." (यह कोई शब्दशः अनुवाद नहीं है। परंतु इसमें मूल के भाव पूरे-पूरे आ गए हैं)'[1] स्पष्ट है कि गांधी जी 'शाब्दिक अनुवाद' के स्थान पर 'भावानुवाद' को प्रश्रय देते थे।

'हिंद स्वराज' के अंग्रेजी अनुवाद के अलावा, गांधी जी ने अन्य लोगों की रचनाओं का अंग्रेजी से गुजराती में भी अनुवाद किया है। उन्होंने रस्किन की पुस्तक 'Unto This Last' का 'सर्वोदय' नाम से गुजराती अनुवाद किया। उन्हें यह पुस्तक उनके मित्र मिस्टर पोलक ने उस समय भेंट की थी जब वे रेल से नाटाल के लिए रवाना हो रहे थे। जोहनसबर्ग से डर्बन तक की अपनी चौबीस घंटे की रेल-यात्रा के दौरान उन्होंने यह पुस्तक पढ़ कर पूरी कर ली।[2]

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने अपने मुकदमे में अपनी सफाई में एक भाषण दिया था। गांधी जी ने उस भाषण का 'एक सत्यवीर की कथा' अथवा 'सुकरात की सफाई' के नाम से अनुवाद भी किया था। इस अनुवाद की भी यह विशेषता रही कि इसे उन्होंने 'सार' रूप में अनूदित किया था। इसी प्रकार, गांधी जी ने लियो तॉलस्तॉय की कहानी का 'मूरखराज' नाम से अनुवाद भी किया था। इस अनुवाद का उल्लेख करते हुए श्री विष्णु प्रभाकर ने लिखा है कि "इस कहानी का शब्दार्थ अनुवाद नहीं किया है बल्कि उसका रहस्य ठीक-ठीक समझ में आ जाए और अपनी भाषा में ठीक लगे इस प्रकार लिखने का प्रयत्न किया है। नाम ठाम भी बदल दिए हैं।"[3]

गांधी जी ने गुजराती-भाषी मुसलमान पाठकों के लाभ के निमित्त प्रसिद्ध न्यायाधीश अमीर अली की अंग्रेजी पुस्तक 'स्पिरिट आफॅ इस्लाम' का भी गुजराती में अनुवाद किया। इस अनुवाद को उन्होंने 5 जनवरी 1907 के 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती स्तंभ में प्रकाशित किया।'[4] इसके अलावा, गांधी जी ने अमरीकी नैतिकतावादी विद्वान विलियम मैंकिटायर सोल्टर की अंग्रेजी पुस्तक 'एथिकल रिलीजन' का गुजराती में अनुवाद किया। उन्होंने 1907 में इसका सारांश 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती स्तंभ में आठ लेखों में प्रकाशित किया। गांधी जी चाहते थे कि पाठक नीति-वचनों का पालन करें।[5] इसके संदर्भ में श्री विष्णु प्रभाकर ने लिखा है कि "एक और पुस्तक है - नीतिधर्म। मि.साल्टर (सोल्टर) नाम के एक अमरीकी विद्वान की पुस्तक के आधार पर उन्होंने इसकी रचना की है। वे धर्म और नीति अलग नहीं मानते थे। धर्म ही नीति है। नीति को धर्म के अनुसार होना चाहिए.....नीति और सच्ची सफलता तथा सच्ची उन्नति सदा एक साथ देखने में मिलती है - यही इस पुस्तक का सार है।"[6]

गांधी जी ने 'भगवद्गीता' का भी अनुवाद किया। उन्होंने यह अनुवाद गुजराती में किया था, जो 12 मार्च 1930 को प्रकाशित हुआ था। यह वह ऐतिहासिक दिन था जब गांधी जी ने साबरमती आश्रम से दांडी यात्रा शुरू की थी। इस अनुवाद को पढ़कर जब एक आश्रमवासी ने गांधी जी से यह शिकायत की कि उनका अनुवाद समझने में बहुत कठिन है तो उन्होंने इस पाठकीय प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए नमक कानून तोड़ने के जुर्म में यरवडा जेल के बंदीगृह में रहते हुए ही गीता के प्रत्येक अध्याय पर एक-एक पत्र लिखा था।[7] गांधी जी पर भगवद्गीता का बहुत अधिक प्रभाव था। इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि उन्होंने 'गीतापदार्थकोश' भी बनाया और 'अनासक्तियोग' नाम से गीता की व्याख्या भी लिखी। इस प्रकार की व्याख्या को 'अनुवाद सैद्धांतिकी' में अनुवाद का ही एक प्रकार माना जाता है और इसे 'व्याख्या अनुवाद' कहा जाता है।

अपने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधी जी ने वहाँ से 'इंडियन ओपिनियन' समाचार-पत्र निकाला था। यह मुख्य रूप से अंग्रेजी में निकलता था और उसमें भारतीय भाषाओं में से गुजराती, हिंदी तथा तमिल के स्तंभ भी जोड़े गए थे। किंतु उचित सहयोगी नहीं

मिलने के कारण दो वर्ष के बाद इसके हिंदी और तमिल स्तंभ बंद कर दिए गए। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने लिखा है कि 'इंडियन ओपिनियन' में भारतीय भाषाओं में समाचार एवं लेख देने के कारण उन्हें अंग्रेजी से अनुवाद करना अनिवार्य था। गांधी के उस समय लिखे गए पत्रों, लेखों आदि में कुछ ऐसे विवरण मिलते हैं जिनसे यह जानकारी मिलती है कि गांधी स्वयं ही अंग्रेजी से गुजराती आदि भाषाओं में अनुवाद करते थे, स्वयं ही दूसरों के द्वारा किए गए अनुवाद देखते थे तथा विभिन्न अंग्रेजी अखबारों से महत्वपूर्ण समाचारों की कतरनें, अनुवाद के लिए एकत्र करते थे और उनका अनुवाद करके गुजराती, हिंदी तथा तमिल भाषा के स्तंभों में नियोजित करते थे।[8] इस संदर्भ में डॉ. गोयनका ने कुछ और उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं, जोकि इस प्रकार हैं:

1. तमिल की सामग्री भेजी है, परंतु मैं देखता हूँ कि उसमें कठिनाई होगी। जिस व्यक्ति ने अनुवाद किया है उसका ज्ञान अल्प ही है, ऐसा मैंने अनुभव किया। ....मैं यहाँ से जो अंग्रेजी भेजूँगा उसका सिर्फ तर्जुमा ही करना पड़ेगा। (पत्र : छगनलाल गांधी को 6 नवंबर 1905)[9]

2. गांधी अपने गुजराती भाषी मुसलमान पाठकों के लाभार्थ प्रसिद्ध न्यायाधीश अमीर अली की अंग्रेजी पुस्तक 'स्पिरिट आफॅ इस्लाम' का गुजराती में अनुवाद करके 'इंडियन ओपिनियन' में प्रकाशित करने का निर्णय करते है। ('इंडियन ओपिनियन, गुजराती, 5 जनवरी 1907)[10]

3. गांधी अमेरिकन नैतिकतावादी विद्वान विलियम मैंकिटायर सोल्टर की अंग्रेजी पुस्तक 'एथिकल रिलीजन' का गुजराती में सारांश आठ लेखों में प्रकाशित करते हैं और चाहते हैं कि पाठक नीति-वचनों का पालन करें। ('इंडियन ओपिनियन, गुजराती, 1907)[11]

4. गांधी हमीदिया अंजुमान की पुस्तक को गुजराती और अंग्रेजी अनुवाद के साथ छापने के लिए छगनलाल गांधी को भेजते हैं। (पत्र : छगनलाल गांधी को 26 फरवरी 1907)[12]

5. गांधी अंग्रेजी समाचार पत्र 'टाइम्स ऑफ इंडिया' से महामहिम अमीर हबीबुल्ला के भाषण का गुजराती अनुवाद करके 'इंडियन ओपिनियन' 'गुजराती' में प्रकाशित करते हैं। ('इंडियन ओपिनियन', गुजराती, 2 मार्च 1907)[13]

6. गांधी ब्लूमफॉन्टीन के अंग्रेजी अखबार 'फ्रेंड' से एक लेख का गुजराती में अनुवाद करके 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) में प्रकाशित करते हैं और चाहते हैं कि पाठक इस अंग्रेज के भारत-प्रेम को समझें। ('इंडियन ओपिनियन', गुजराती, 24 अगस्त 1907)[14]

7. गांधी अपने मुस्लिम पाठकों के लिए हज़रत मुहम्मद की वॉशिंगटन इरविंग की अंग्रेजी जीवनी 'लाइफ ऑफ द प्रॉफेट' का गुजराती में अनुवाद कर 'इंडियन ओपिनियन' में प्रकाशित करते हैं, किंतु इसके पाँचवें प्रकरण में मुहम्मद साहब की शादी का विवरण पढ़कर मुस्लिम पाठक नाराज़ हो जाते हैं और उनके दबाव में गांधी को उसका प्रकाशन बंद करना पड़ता है। गांधी को इसका अफ़सोस है कि अनुवाद में की गई मेहनत व्यर्थ हो गई। ('इंडियन ओपिनियन', गुजराती, 31 अगस्त 1907)[15]

डॉ. गोयनका द्वारा उद्धृत इन कतिपय प्रसंगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी जी ने 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती, हिंदी तथा तमिल स्तंभों के प्रकाशन के लिए स्वयं सैकड़ों-हजारों पृष्ठों का अंग्रेजी भाषा से अनुवाद किया होगा।

पुनरीक्षक गांधी : गांधी जी ने अनूदित सामग्री को जाँचने का कार्य भी किया। अनुवाद सैद्धांतिकी में इस प्रकार के कार्य को 'पुनरीक्षण' (vetting) कहा जाता है। किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा किए गए अनुवाद को जाँचना 'पुनरीक्षण' कहलाता है। इस कार्य में विशेष बात यह होती है कि अनुवादक और पुनरीक्षक, दोनों अलग-अलग व्यक्ति होते हैं। उनके गुजराती लेखक और फ्रांसीसी पुस्तकों का गुजराती में अनुवाद करने वाले अनुवादक नारायण हेमचंद्र ने अपने अनुवाद गांधी जी को उनके विदेश प्रवास के दौरान जाँचने के लिए दिए थे। अनुवाद जाँचने पर गांधी जी ने पाया कि नारायण हेमचंद्र ने अनुवाद नहीं बल्कि भावार्थ प्रस्तुत किया है।[16]

पुनरीक्षण कार्य का एक और प्रमाण हमें गांधी जी द्वारा यरवडा जेल से आश्रमवासियों को हर सप्ताह गुजराती में लिखे पत्रों के अंग्रेजी अनुवाद के संदर्भ में भी मिलता है। गांधी जी के इन पत्रों का अंग्रेजी अनुवाद वालजी गोविंदजी देसाई ने किया था। गांधी जी इन अंग्रेजी अनुवादों का पुनरीक्षण भी करते थे। उन्होंने जेल में रहते हुए यह लिखा है कि - "श्री वालजी देसाई ने

अंग्रेजी में पूरा अनुवाद प्रस्तुत किया है। परंतु जब उन्हें पता चला कि जेल में मुझे कुछ फुर्सत रहती है तो उन्होंने अपने किए अनुवाद को मेरे पास संशोधन के लिए भिजवा दिया। मैंने उनका किया अनुवाद ध्यान से देख लिया है और उसमें यत्र-तत्र संशोधन भी कर दिया है जिससे कि मेरे आशय की अभिव्यक्ति हो सके।" प्रो. हेमचंद्र पांडे ने गांधी जी के इस प्रकार के प्रयास को अनुवादक और लेखक के बीच संपर्क के संदर्भ में देखा है और यह स्वीकार किया है कि इससे 'अनुवाद में सुधार लाया जा सकता है।'[18] जबकि प्रो. अवधेश कुमार सिंह ने इस प्रकार के प्रयास को 'सहयोगात्मक कार्य' कहा है।[19]

गांधी जी की गुजराती में लिखी आत्मकथा 'सत्य ना प्रयोगो' का अंग्रेजी अनुवाद महादेव हरिभाई देसाई ने किया था। महादेवभाई द्वारा किया गया अनुवाद 'सहयोगात्मक कार्य' का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस संदर्भ में प्रो. अवधेश कुमार सिंह की विस्तृत टिप्पणी ध्यान देने योग्य है कि - 'महादेवभाई द्वारा किया गया अनुवाद इस तथ्य का भी प्रमाण है कि अनुवाद एक सहयोगात्मक कार्य है। महादेवभाई देसाई के 'एडिटर्स इंट्रोडक्शन' (संपादकीय प्रस्तावना) में यह उल्लेख मिलता है कि प्रथम खंड 1927 में आया और दूसरा 1929 में। यह 'यंग इंडिया' में शृंखलाबद्ध रूप में प्रकाशित होता रहा। इसके अलावा, इस 'इंट्रोडक्शन' से यह भी पता चलता है कि अनुवादक महादेवभाई को 'दि बेनिफिट ऑफ गांधीज रिविजन' (गांधी जी द्वारा संशोधित करने का लाभ) भी मिला। साथ ही, यह 'केयरफुली रिवाइज्ड बाय ए रेवरेड फ्रेंड' (श्रद्धेय बंधु द्वारा ध्यानपूर्वक संशोधित किया गया) था, जो महादेवभाई के अनुसार अंग्रेजी भाषा के प्रतिष्ठित विद्वान थे। लेकिन, उन बंधु ने इस कार्य को करने से पूर्व यह शर्त रखी थी कि उनके नाम का उल्लेख नहीं किया जाएगा। खंड-V के अध्याय-XXIV-XLIII के अनुवाद प्यारेलाल ने किए। यह वह समय था जब महादेवभाई 1928-29 के दौरान स्वाधीनता आंदोलन में भी शामिल थे। गांधी जी के जीवन की कथा को महादेव देसाई जैसी कई शक्तियों और स्रोतों ने रूपाकार प्रदान किया। ऐसा लगता है मानो गांधी जी के जीवन की तरह उनकी आत्मकथा को कई जाने-अनजाने लोगों ने बुना था। उनकी आत्मकथा अथवा उनके जीवन की कहानी गुजराती, अंग्रेजी, हिंदी और कई अन्य भाषाओं में साथ-साथ उपलब्ध हैं, जो गांधी जी की आत्मा के कई अवतारों की तरह है।'[20]

'इंडियन ओपिनियन' में भारतीय भाषाओं में समाचार एवं लेख शामिल करने की जरूरत को पूरा करने के लिए अंग्रेजी से अनुवाद किया-कराया जाता था। 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती, हिंदी तथा तमिल स्तंभों के प्रकाशन के लिए स्वाभाविक है कि जहाँ स्वयं गांधी जी ने सैकड़ों-हजारों पृष्ठों का अंग्रेजी भाषा से अनुवाद किया होगा, वहीं अन्य लोगों के द्वारा किए गए अनुवादों का पुनरीक्षण कार्य भी किया होगा।

भाषांतरकार गांधी : गांधी जी ने भाषांतरण कार्य भी किया है। गांधी जी के भाषांतरण कर्म पर विचार करने से पूर्व यहाँ यह संकेत करना भी अनुचित न होगा कि 'अनुवाद सैद्धांतिकी' में भाषांतरण/भाषांतरकार से क्या अभिप्राय है।

अनुवाद कार्य करने वाले व्यक्ति को 'अनुवादक' कहा जाता है। 'अनुवादक' का एक रूप हमें 'भाषांतरकार' के रूप में नजर आता है जिसे अंग्रेजी में 'Interpreter' कहा जाता है। अनुवाद सिद्धांत चिंतन में इसके लिए 'भाषांतरकार' के अलावा 'दुभाषिया' अथवा 'आशु अनुवादक' शब्द भी प्रयुक्त किया जाता है। तात्विक दृष्टि से भाषांतरकार भी अनुवादक ही होता है, किंतु दोनों में मूलभूत अंतर यह है कि अनुवादक लिखित रूप में अनुवाद करता है और भाषांतरकार मौखिक अनुवाद करता है। यानी वह मूल वक्ता के वाक्यों को सुनते हुए मौखिक रूप से ही अनुवाद प्रस्तुत कर देता है।

गोखले जी की दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के समय गांधी जी द्वारा भाषांतरकार की भूमिका निभाने का विशेषतौर पर उल्लेख किया जा सकता है। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'गांधी, अंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ'[21] शीर्षक अपनी पुस्तक में 'जातीय भाषा और राष्ट्रभाषा' विषय पर विवेचन करते हुए लिखा है कि जब गोखले दक्षिण अफ्रीका गए तब गांधी जी ने प्रयत्न किया कि वह अंग्रेजी के बदले हिंदुस्तानियों की सभा में भारतीय भाषाओं का व्यवहार करें।.....गोखले की मातृभाषा मराठी थी। वहाँ कोंकण के बहुत से लोग थे। वे विशेष रूप से चाहते थे कि गोखले मराठी में बोलें।.....गांधी जी ने लिखा : 'मैंने उनसे पूछा, आप मराठी में बोलेंगे तो इन

लोगों को खुशी होगी और आप मराठी में बोलें तो मैं उसका हिंदुस्तानी में अनुवाद करूँगा। इससे वे बड़े जोर से हँस पड़े। आपका हिंदुस्तानी का ज्ञान तो मुझे अच्छी तरह मालूम है। वह हिंदुस्तानी आपको मुबारक रहे। किंतु अब आप मराठी से अनुवाद करेंगे? मुझे आप यह तो बताइए कि आपने इतनी मराठी कहाँ से सीखी। मैंने कहा : "जो बात आपने मेरी हिंदुस्तानी के बारे में कही, वही मेरी मराठी के संबंध में भी समझें। मैं मराठी का एक शब्द भी नहीं बोल सकता किंतु मुझे जिस विषय का ज्ञान है यदि आप उस विषय में मराठी में बोलेंगे तो उसका आशय मैं अवश्य समझ जाऊँगा।" आखिर गोखले मराठी में बोलने को राजी हो गए। 'उन्होंने मुझे यह कहकर खुश कर दिया कि आप अपनी जिद जरूर पूरी करेंगे। यहाँ तो मैं आपके पल्ले पड़ा हूँ, इसलिए छूट नहीं सकता। इसके बाद उन्होंने ठेठ जंजीबार तक मराठी में ही भाषण दिए और मैं उनका विशेष रूप से नियुक्त भाषांतरकार रहा। हमें यथासंभव मातृभाषा में और व्याकरण शुद्ध अंग्रेजी की अपेक्षा व्याकरण की भूलों से भरी टूटी-फूटी हिंदी में ही बोलना चाहिए, मैं यह बात उनके मन में बैठा सका या नहीं, यह मैं नहीं जानता। किंतु इतना जानता हूँ कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में मुझे खुश रखने के लिए ही मराठी में भाषण दिए।'[22]

(2) कोशकार गांधी :

गांधी जी की अनुवाद-साधना का ही विस्तार हमें 'कोश कार्य' के रूप में भी नजर आता है। कोश निर्माण को भी अनुवाद सैद्धांतिकी की परिधि में ही शामिल किया जाता है। गांधी जी ने इस कार्य में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने गुजराती की वर्तनी में एकरूपता स्थापित करने की दृष्टि से गुजराती वर्तनी कोश पर भी काम किया और 1929 में 'सार्थ जोड़नी कोश' तैयार किया। इस कोश में गुजराती की मानक वर्तनी के साथ-साथ कोश में शामिल शब्दों के अर्थ भी दिए हुए थे। कोश में अर्थ का समावेश कोश के नामकरण अर्थात् 'सार्थ' की सार्थकता प्रमाणित करता है। उनके इस कोश को व्यापक मान्यता प्राप्त हुई और उसमें दी गई वर्तनी की प्रामाणिकता को स्वीकृति मिलने लगी। 'सन् 1940 में तत्कालीन मुंबई प्रांत ने एक अधिसूचना जारी की जिसमें यह कहा गया था कि गुजराती में लिखी केवल उन्हीं पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के लिए राजकीय अनुदान मिल सकेगा जिनमें गांधी जी के 'सार्थ जोड़नी कोश' में दी गई वर्तनी का पालन किया जाएगा।[23]

(3) गांधी जी का अनुवाद सैद्धांतिकी-समृद्धि में योगदान :

घोषित रूप में गांधी जी कोई अनुवाद-चिंतक नहीं थे, किंतु उन्होंने अपनी अनुवाद साधना और अपने लेखन में अनुवाद संबंधी विचारों को स्थान देकर अनुवाद सैद्धांतिकी निर्माण और उसकी समृद्धि में उल्लेखनीय योगदान दिया है। वैसे भी, देखा जाए तो अनुवाद एक व्यावहारिक भाषिक गतिविधि है, जो मुख्यत: दो भाषाओं के बीच घटित होने वाली प्रक्रिया है। इस व्यावहारिक गतिविधि के गर्भ से ही अनुवाद सिद्धांत का जन्म होता है। लेकिन, विशेष बात यह है कि अनुवाद का व्यवहारपरक पक्ष विविधता लिए हुए होता है। प्रत्येक अनुवादक की अपनी-अपनी क्षमता के संदर्भ में अनुवाद की विविधता के कारण 'अनुवाद सैद्धांतिकी' में भी विविधता आ जाती है। किंतु अनुवाद सैद्धांतिकी में कुछ ऐसे सामान्य नियमों की चर्चा की जाती है जिन पर किसी भी अनुवादक/अनुवाद-चिंतक की अनुवाद सैद्धांतिकी को कसा जा सकता है। गांधी जी द्वारा अनुवाद सैद्धांतिकी निर्माण और उसकी समृद्धि में दिए गए योगदान को इनमें से कुछ बिंदुओं के आलोक में देखा जा सकता है, जो कि इस प्रकार हैं :

(i) 'विचारों का अनुवाद' और गांधी जी : वैसे तो यह माना जाता है कि व्यक्ति जब भी कोई विचार व्यक्त करता है तो वह अनुवाद ही होता है - 'विचारों का अनुवाद'। मूल बात यह है कि विचार व्यक्ति के अपने तो होते ही हैं, किंतु अन्यों से अनुप्राणित भी होते हैं। इसकी पुष्टि गांधी जी स्वयं भी करते हैं। उन्होंने 'हिंद स्वराज' की 'प्रस्तावना' में यह स्वीकार किया है कि "These views are mine, and yet not mine. They are mine because I hope to act according to them. They are almost a part of my being. But, yet, they are not mine, because I lay no claim to originality. They have been formed after reading several books. That which I dimly felt received support from these books." (जो विचार यहाँ रखे गए हैं, वे मेरे हैं और मेरे नहीं भी हैं। वे मेरे हैं, क्योंकि उनके मुताबिक बरतने की मैं उम्मीद रखता हूँ; वे मेरी आत्मा में गढ़े-जड़े हुए जैसे हैं। वे मेरे नहीं हैं, क्योंकि सिर्फ मैंने ही उन्हें सोचा हो सो बात नहीं। कुछ किताबें पढ़ने के बाद वे बने हैं। दिल में भीतर ही भीतर मैं जो महसूस करता था, उसका इन किताबों ने समर्थन किया।)[24]

(ii) पत्रकारिता में अनुवाद का महत्व : गांधी जी 'विचारों' के प्रचार-प्रसार के प्रति कटिबद्ध थे और इस कार्य को संपन्न करने में समाचार-पत्रों की भूमिका को स्वीकार करते थे। यही कारण है कि वे समाचार-पत्रों को 'विचार-पत्र' भी कहते थे। वे इस तथ्य से भी परिचित थे कि देश की जनता तक पहुँचने के लिए समाचार-पत्र भारतीय भाषाओं में होने चाहिए। इसलिए वे पत्रकारिता में अनुवाद के महत्व को भी स्वीकार करते थे। दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' में अंग्रेजी के साथ-साथ गुजराती, हिंदी तथा तमिल के भी स्तंभ निकालने में अनुवाद का भी सहारा लिया। इस कार्य को पूरा करने के लिए उन्होंने स्वयं मुख्य रूप से अंग्रेजी-गुजराती अनुवाद कार्य भी किया। इसी तरह उन्होंने 'जब अंग्रेजी में 'यंग इंडिया' निकाला तो गुजराती में 'नवजीवन' भी प्रकाशित किया, क्योंकि 'यंग इंडिया' की अंग्रेजी को गुजराती में अनूदित करके गुजराती भाषा में 'नवजीवन' निकालना उनके लिए सहज संभव था।[25]

(iii) अनुवाद की महत्ता : गांधी जी की दृष्टि में अनुवाद करना अधिक महत्वपूर्ण है, लेकिन साथ ही वे अपनी भाषा में मौलिक चिंतन पर भी जोर देते हैं और संपर्क भाषा के महत्व को स्वीकार करते हैं। अनुवाद करने के प्रयासों के क्रम में वे अनूदित भाषा की अशुद्धियाँ और व्याकरण की दुर्बलताओं तक को भी स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि उनके अनुवादक-मन ने भाषा की अशुद्धियों तथा व्याकरण की दुर्बलताओं की ओर ध्यान नहीं दिया, जबकि कतिपय विद्वान गांधी जी के अंग्रेजी तथा गुजराती भाषा-ज्ञान पर प्रश्न भी उठाते रहे हैं। उन्होंने अपने पाठकों से कहा भी था कि वे उनके विचारों को महत्व दें, उनकी भाषा को नहीं।[26] इसका मूल कारण यह था कि 'वे अच्छी तरह समझते थे कि अपने विचार अनुवाद के माध्यम से सशक्त ढंग से कभी भी व्यक्त नहीं किए जा सकते, इसीलिए वे सदैव अपनी-अपनी भाषा में मौलिक चिंतन पर जोर देते थे और पूरे देश में आपसी संपर्क के लिए एक सर्वमान्य भाषा का महत्व समझते हुए हिंदी के प्रचार एवं प्रसार पर बल देते थे।"[27]

(iv) राष्ट्रीय एकता में अनुवाद की भूमिका : गांधी जी ने राष्ट्रीय एकता की स्थापना में अनुवाद की विशिष्ट स्थिति और भूमिका को महसूस किया। राष्ट्रीय एकता की स्थापना में धर्म और नीति की विशिष्ट स्थिति है और गांधी जी इन दोनों को अलग नहीं मानते थे - धर्म ही नीति है और नीति को धर्म के अनुसार होना चाहिए। इसी कारण उन्होंने अपने गुजराती भाषी मुसलमान पाठकों के लाभ के लिए प्रसिद्ध न्यायाधीश अमीर अली की अंग्रेजी पुस्तक 'स्पिरिट आफॅ इस्लाम' का गुजराती में अनुवाद करके 'इंडियन ओपिनियन' में प्रकाशित किया। इसी प्रकार, नैतिकता को ध्यान में रखते हुए ही गांधी जी ने अमरीकी नैतिकतावादी विद्वान विलियम मैंकिटायर सोल्टर की अंग्रेजी में लिखी पुस्तक 'एथिकल रिलीजन' का गुजराती में सारांश 'इंडियन ओपिनियन' में आठ लेखों में प्रकाशित किया ताकि पाठक नीति-वचनों का पालन करें। लोगों में देश-प्रेम जाग्रत करने और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के लिए ही उन्होंने ब्लूमफॉन्टीन के भारत-प्रेम से संबंधित उस लेख का गुजराती में अनुवाद करके 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) में प्रकाशित किया जो अंग्रेजी के अखबार 'फ्रेंड' में छपा था।

(v) अन्य भाषाओं में रचित ज्ञान-भंडार से अपनी भाषा को समृद्ध करना: अन्य भाषाओं में रचित ज्ञान-भंडार और उत्तम विचारों को अपनी भाषा में लाने की दृष्टि से अनुवाद की विशेष प्रासंगिकता है। गांधी जी अनुवाद के इस पक्ष को महसूस करते थे और इसीलिए उन्होंने भारत के लोगों तक पहुँचने के लिए देशी भाषाओं में अखबारों की आवश्यकता महसूस की। यही कारण है कि 'नवजीवन' (गुजराती) और 'नवजीवन' (हिंदी), अंग्रेजी के 'यंग इंडिया' के चुने हुए लेखों-समाचारों आदि के अनुवाद का ही आधार लिए हुए होते थे। गांधी जी ने लिखा भी है कि 'हिंदी नवजीवन' में इन दोनों समाचार-पत्रों से चुने हुए लेखों का अधिकृत तथा स्वतंत्र अनुवाद किया गया है।[28] वे चाहते हैं कि अंग्रेजी जानने वाले भारतीय जनसाधारण के लाभ के लिए अंग्रेजी के उत्तम विचारों को देशी भाषाओं में अनूदित करें। इसीलिए उन्होंने नीति-वचन आदि का अनुवाद किया।

(vi) अनुवादक की लक्ष्य भाषा क्या हो?: अनुवादक की लक्ष्य भाषा का सीधा-सा अर्थ यह है कि अनुवादक को किस भाषा में अनुवाद करना चाहिए। इस संदर्भ में देखा जाए तो गांधी जी अनुवादक के लिए मातृभाषा में अनुवाद करना अधिक बेहतर मानते हैं। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, 'इंडियन ओपिनियन' के लिए गांधी जी ने अंग्रेजी समाचारों, लेखों, भाषणों, पुस्तकों आदि का अनुवाद किया। विशेष बात यह रही है कि यह अनुवाद मुख्य रूप से अंग्रेजी भाषा से

गुजराती में किए। यह तो सर्वविदित ही है कि गुजराती भाषा गांधी की मातृभाषा थी। अनुवादक के लिए यह माना जाता है कि उसे दो भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए और उनमें से उसे उस भाषा में अनुवाद करना चाहिए जिसपर उसका ज्यादा अधिकार हो, पकड़ हो। स्वाभाविक है कि व्यक्ति की अपनी मातृभाषा पर पकड़ सर्वाधिक होती है इसलिए अनुवाद कार्य में आमतौर पर लक्ष्य भाषा मातृभाषा ही होती है। इससे अनुवादक को सुविधा भी रहती है। गांधी जी द्वारा अंग्रेजी से गुजराती अनुवाद इसी तथ्य को प्रमाणित करता है कि अनुवादक मातृभाषा में अनुवाद अधिक सहजता से कर पाता है। यही कारण है कि जब गांधी जी ने अंग्रेजी में 'हरिजन' निकाला तो उसके हिंदी, गुजराती, तमिल, मराठी, बंगला आदि अनेक भाषाओं में संस्करणों में से गुजराती संस्करण के साथ उनका अधिक मोह था क्योंकि वह उनकी मातृभाषा में था और गुजराती में मूल रूप से लिखना उन्हें प्रिय था। इसलिए उनकी इच्छा थी कि 'हरिजन' (गुजराती) के लिए वे लिखें और बाकी सब संस्करण अनुवाद होकर ही छपें।[29]

(vii) 'शब्दानुवाद' के स्थान पर 'भावानुवाद' बेहतर विकल्प : गांधी जी 'शब्दानुवाद' के स्थान पर 'भावानुवाद' को अनुवाद का बेहतर प्रकार मानते हैं। उदाहरण के लिए, 'हिंद स्वराज' के अंग्रेजी अनुवाद का उल्लेख किया जा सकता है, जिसकी भूमिका में गांधी जी ने स्वीकार किया है कि "It is not a literal translation but it is a faithful rendering of the original." (यह कोई शब्दशः अनुवाद नहीं है। परंतु इसमें मूल के भाव पूरे-पूरे आ गए हैं।)[30] इस अनुवाद की यह विशेषता कही जा सकती है कि गांधी जी 'शाब्दिक अनुवाद' के स्थान पर 'भावानुवाद' को प्रश्रय देते थे। बल्कि उससे भी बढ़कर कहा जाए तो कृति को आत्मसात करने के पश्चात अपने परिवेश में और 'सार रूप में स्वतंत्र अनुवाद' करने के पक्षधर थे। इस संदर्भ में विचार करते हुए श्री विष्णु प्रभाकर ने लिखा है कि "अनुवाद भी उन्होंने किए परंतु जो अर्थ हम अनुवाद का समझते हैं वैसे अनुवाद नहीं। सार रूप में स्वतंत्र रूप में अपने परिवेश की पृष्ठभूमि पर ही आधारित करके उन्होंने जो उन्हें अच्छा लगा उसे स्वीकार किया।[31]" शब्दानुवाद के स्थान पर भाव या आशय का आधार लेने की स्थिति मूल पाठ के संदर्भ में तो थी ही, साथ ही शब्द निर्माण के स्तर पर भी देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए, 'civil disobendience', 'passive resistence' आदि शब्दों के लिए गुजराती समतुल्य की खोज के प्रयास की परिणति 'सत्याग्रह' शब्द में हुई। गांधी जी को 'सदाग्रह' शब्द पसंद आया था जो मगनलाल गांधी का सुझाया हुआ था, परंतु गांधी जी ने इस शब्द को संशोधित करके 'सत्याग्रह' बना दिया।[32]

(viii) अनुवाद की प्रामाणिकता को महत्व : गांधी जी का अनुवाद सैद्धांतिकी में इस दृष्टि से भी योगदान उल्लेखनीय है कि उन्होंने अनुवाद की प्रामाणिकता को महत्व प्रदान किया। अनूदित पाठ की प्रामाणिकता तभी सिद्ध हो पाती है जब मूल लेखक स्वयं अनूदित पाठ को देख ले या फिर उसका गंभीर पुनरीक्षण-मूल्यांकन हो। इस संदर्भ में गांधी जी की गुजराती पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' के अंग्रेजी अनुवाद का उल्लेख किया जा सकता है, जिसे वालजी गोविंदजी देसाई ने अनूदित किया था। इस अनुवाद के विषय में गांधी ने लिखा है - "श्री वालजी देसाई के अनुवाद में मैंने कुछ संशोधन किया है और मैं पाठकों को आश्वस्त कर सकता हूँ कि अनुवादक ने मूल गुजराती की भावना की रक्षा की है। मूल पुस्तक के सारे अध्याय मैंने अपनी याददाश्त के आधार पर लिखे थे। इनका कुछ अंश यरवडा जेल में लिखा गया था और कुछ अंश समय से पूर्व जेल से छोड़ दिए जाने के बाद लिखा गया था। अनुवादक को इस बात की जानकारी थी और इसलिए उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' की फाइल का बारीकी से अध्ययन किया और जहाँ भी मेरी स्मृति में संदेह हुआ उन्होंने आवश्यक सुधार करने में कोई संकोच नहीं किया। पुस्तक के पाठकों को इस बात की प्रसन्नता होनी चाहिए कि अब इसमें तथ्य अथवा सामग्री की कोई भी महत्वपूर्ण त्रुटि नहीं रह गई है।"[33] अनुवाद की विश्वसनीयता बढ़ाने की दृष्टि से गांधी जी के उक्त विचार विशेषतौर पर प्रासंगिक कहे जा सकते हैं। प्रो. हेमचंद्र पांडे के शब्दों में कहा जा सकता है कि "महात्मा गांधी का उक्त कथन व्यावहारिक अनुवादकों के लिए दिशा-निर्देश का काम कर सकता है। यदि अनुवादक को मूल पाठ में दिए गए किसी तथ्य के बारे में संदेह हो रहा हो तो उसे चाहिए कि आवश्यक स्रोत से तथ्य की जाँच कर ले और अपने अनुवाद में आवश्यक टिप्पणी जोड़ दे।"[34]

अनूदित पाठ की प्रामाणिकता को बनाए रखने के लिए गांधी जी मूल लेखक से संपर्क तक को स्वीकार

करते हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपने मित्र के द्वारा लियो टॉलस्टॉय के "एक हिंदू के नाम पत्र' के अनुवाद की प्रामाणिकता को पुष्ट करने के लिए टॉलस्टॉय को पत्र लिखा कि 'हम इस पत्र (अनूदित) को तभी छापना चाहेंगे जब हम इसकी सही-सही जाँच कर लें और आश्वस्त हो जाएँ कि यह आपका ही पत्र है। जो प्रति हमें प्राप्त हुई उसकी एक नकल आपको भेज रहा हूँ और आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप हमें सूचित कर सकें कि यह आपका ही पत्र है, कि यह प्रति सही है और आप इस रूप में इसके प्रकाशन का अनुमोदन करते हैं।[35]" प्रो. हेमचंद्र पांडे ने गांधी जी के इस प्रयास को अनुवादक में धैर्य के गुण से जोड़कर देखा है। उन्होंने लिखा है कि "इससे यह भी पता चलता है कि अनुवादक में धैर्य का गुण भी होना चाहिए क्योंकि उस जमाने में दक्षिण अफ्रीका से भेजे पत्र को रूस तक पहुँचने में काफी अधिक समय लगा होगा। त्वरित संप्रेषण के वर्तमान युग में प्रत्येक अनुवादक इतना अधिक धैर्य शायद ही रखता हो।"[36] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अनूदित पाठ की प्रामाणिकता एक महत्वपूर्ण निकष है और इस पर खरा उतरने के लिए अनुवादक में धैर्य का गुण होना चाहिए।

(ix) नई भाषा सीखकर अनुवाद में योगदान : गांधी जी इस तथ्य से भली-भाँति वाकिफ थे कि नई भाषा सीखने से व्यक्ति दूसरी भाषा की शब्दावली और विशिष्ट अभिव्यक्तियों से लाभांवित होता है। सीखी गई नई भाषा से व्यक्ति को अनुवाद करने की प्रेरणा मिलती है, उसे जाँचने-परखने में मदद मिलती है। गांधी जी का तमिल भाषा ज्ञान इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है जिसकी वजह से वे 'इंडियन ओपिनियन' के तमिल स्तंभ में शामिल की जाने वाली सामग्री का निरीक्षण-मूल्यांकन कर पाते थे। 6 नवंबर 1905 को छगनलाल गांधी को लिखे गांधी जी के पत्र की यह पंक्ति विशेषतौर पर ध्यान देने की है कि 'जिस व्यक्ति ने अनुवाद किया है उसका ज्ञान अल्प ही है, ऐसा मैंने अनुभव किया।[37]'

(x) नव शब्द निर्माण और अनुवादक : अनुवादक लक्ष्य भाषा में विभिन्न स्रोतों से आए शब्दों का प्रयोग करते हुए अनुवाद करता है। लेकिन, कभी-कभी जब नया और मौलिक विचार या अवधारणा आदि जन्म लेती है तो उसके लिए अनुवादक को नया शब्द तक गढ़ना पड़ जाता है। गांधी जी ने नव शब्द निर्माण में भी अपना योगदान दिया है। उनके द्वारा गढ़ा गया 'सत्याग्रह' शब्द इसका प्रमाण है। गांधी जी ने अपने विचार-प्रस्तुति में 'हरिजन', 'ग्राम स्वराज' और 'सर्वोदय' जैसे शब्दों को व्यवहृत करके हमारी भाषाओं को कुछ विशिष्ट शब्द प्रदान किए। इनसे भाषाई शब्द भंडार में तो वृद्धि हुई ही, साथ ही ज्ञान की नई अवधारणाएँ भी सामने आई। आज स्थिति यह हो चुकी है कि राजनीति विज्ञान, ग्रामीण विकास आदि जैसे अनेकानेक क्षेत्रों में ये पारिभाषिक शब्दों के रूप में व्यवहृत हो रहे हैं।

(xi) 'अनुवाद की राजनीति' और गांधी जी : अनुवाद सैद्धांतिकी में आजकल 'अनुवाद की राजनीति' की अक्सर चर्चा की जाती है। 'अनुवाद की राजनीति' का शाब्दिक अर्थ है - अनुवाद करने में राजनीति। यह सही है कि अनुवाद करते समय अनुवादक स्रोत भाषा के कथ्य को लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त करता है। लक्ष्य भाषा में अंतरण का यह कार्य अनुवादक, दोनों भाषाओं और उनकी संस्कृतियों के अपने ज्ञान-विवेक तथा विषय-बोध के आधार पर अर्थ और संदर्भ को आत्मसात करके करता है। लेकिन यह कार्य सहज नहीं है। जाने-अनजाने यह अंतरण किसी न किसी रूप में हो ही जाता है, किसी न किसी मात्रा में चूक हो जाती है या कर दी जाती है। इस तरह की कमी या चूक के मूल में निहित राज या नीति को समझना ही अनुवाद की राजनीति है। अनुवाद (=अनूदित पाठ) का गलत इस्तेमाल करना या अनूदित पाठ को अपने नजरिए, अपनी विचारधारा की चाशनी में लपेटकर प्रस्तुत करना 'अनुवाद की राजनीति' है।

गांधी जी को अनुवाद की इस राजनीति का प्रत्यक्ष बोध था क्योंकि उनका काल-खंड ब्रिटिश औपनिवेशिक शासनकाल का था। इस कालखंड में भारत अंग्रेजों की गुलामी के विरुद्ध आजादी की लड़ाई लड़ रहा था। अंग्रेजों का दमन-शोषण चक्र जारी था। इस दमन-शोषण की प्रक्रिया में ही गांधी जी के द्वारा 1910 में दक्षिण अफ्रीका से प्रकाशित 'हिंद स्वराज' के प्रचार पर भारत में मुंबई सरकार ने 24 मार्च 1910 को प्रतिबंध लगा दिया था। किंतु गांधी जी इस राजनीति के समक्ष नहीं झुके। और फिर उन्होंने गुजराती संस्करण के स्वयं किए गए अंग्रेजी अनुवाद को प्रकाशित करने का निर्णय लिया। प्रकाशित अनूदित संस्करण की 'भूमिका' में उन्होंने निर्भीकता से यह लिखा भी है कि मुझे पता नहीं कि 'हिंद स्वराज' पुस्तक भारत में जब्त क्यों कर ली गई? मेरी दृष्टि में तो यह जब्ती ब्रिटिश सरकार जिस

सभ्यता का प्रतिनिधित्व करती है उसके निंद्य होने का अतिरिक्त प्रमाण है। इस पुस्तक में हिंसा का तनिक-सा भी समर्थन कहीं किसी रूप में नहीं है। हाँ, उसमें ब्रिटिश सरकार के तौर-तरीकों की जरूर कड़ी निंदा की गई है। अगर मैं यह न करता तो मैं सत्य का, भारत का और जिस साम्राज्य के प्रति वफादार हूँ उसका द्रोही बनता। वफादारी की मेरी कल्पना में वर्तमान शासन अथवा सरकार को, उसकी न्यायशीलता या उसके अन्याय की ओर से आँखें मूँदकर चुपचाप स्वीकार कर लेना नहीं आता। न्याय और नीति के नाम पर वह आज जो कर रही है उसे मैं नहीं मानता। बल्कि मेरी वफादारी की यह कल्पना इस आशा और विश्वास पर आधारित है कि नीति के जिस मानदंड को सरकार आज अस्पष्ट और पाखंडपूर्ण ढंग पर सिद्धांत रूप में स्वीकार करती है उसे वह भविष्य में कभी व्यवहार में भी स्वीकार करेगी। परंतु मुझे साफतौर से मान लेना चाहिए कि मुझे ब्रिटिश साम्राज्य के स्थायित्व से इतना सरोकार नहीं है जितना भारत की प्राचीन सभ्यता के स्थायित्व से है; क्योंकि मेरी मान्यता है कि वह संसार की सर्वोत्तम सभ्यता है।[38]

वैसे, गांधी जी के संदर्भ में ही 'अनुवाद की राजनीति' का एक अन्य पक्ष उस समय भी नजर आता है जब वे 'इंडियन ओपिनियन' के मुस्लिम पाठकों के लिए हज़रत मुहम्मद की वॉशिंगटन इरविंग की अंग्रेजी जीवनी 'लाइफ आफॅ द प्रॉफेट' का गुजराती में अनुवाद कर प्रकाशित करते हैं। इसके पाँचवें प्रकरण में मुहम्मद साहब की शादी का विवरण पढ़कर मुस्लिम पाठक नाराज़ हो जाते हैं और उनके दबाव में गांधी को उसका प्रकाशन बंद करना पड़ता है। गांधी को इसका अफ़सोस है कि अनुवाद में की गई मेहनत व्यर्थ हो गई। ('इंडियन ओपिनियन', गुजराती, 31 अगस्त 1907)[39] स्पष्ट है कि यह गांधी जी का अनुवाद की राजनीति संबंधी बोध ही था जो बाहरी दमनकारी ताकत के खिलाफ तो कड़े से कड़े शब्दों का प्रयोग करने और अनुवाद करके प्रकाशित कराने के दृढ़ निश्चय को उभारने का आधार बना, वहीं किसी संप्रदाय-विशेष की धार्मिक भावनाएँ आहत न हों इसलिए वे वॉशिंगटन इरविंग की अंग्रेजी जीवनी का अनुवाद न करने तक का निर्णय ले लेते हैं। इसे 'अनुवाद की राजनीति' में गांधी जी का महत्वपूर्ण योगदान ही कहा जाएगा कि कहाँ इस राजनीति को दरकिनार करना है और कहाँ नहीं।

निष्कर्ष :

राजनीति, समाज-सुधार, आर्थिक नव-विकल्प एवं व्यवस्थात्मक परिवर्तन पर अमूल्य चिंतन करने वाले महान राष्ट्रनिर्माता महात्मा गांधी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व नए-नए अर्थ-संदर्भों एवं स्थितियों के परिप्रेक्ष में आज भी गहन अध्ययन-विवेचन की अपेक्षा रखता है। उनके विचार वर्तमान समाज में भी प्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं। भले ही वे मानवाधिकारवादी दर्शन के निकष पर परखे जाएँ या फिर स्त्री विमर्श, जल संकट, पर्यावरण, सतत विकास या फिर उदारवादी भूमंडलीकरण के रचनात्मक विकल्प के रूप में स्वदेशी के संदर्भ में। ऐसी स्थिति-परिस्थिति में बहुभाषा-भाषी गांधी जी की अनुवाद-साधना, उनके अनुवादक रूप पर चर्चा भी उसी क्रम में एक प्रयास है जो यह सिद्ध करता है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में अनुवाद को एक जरिया बनाकर उन्होंने स्वयं अनुवाद-साधना भी की और अपनी रचनाओं के 'अनुवादों की भूमिकाओं' आदि में अनुवाद संबंधी विचार भी व्यक्त किए। इसके अलावा, उन्होंने अपने जीवन में 'भाषांतरकार' और अनूदित सामग्री को जाँचने-परखने वाले अर्थात् 'पुनरीक्षक' की भूमिका निभाने और कोश निर्माण कार्य करने के साथ-साथ अनुवाद संबंधी व्यावहारिक नियम प्रस्तुत किए। ये नियम आज के और भावी अनुवादकों के लिए महत्वपूर्ण हैं, प्रासंगिक हैं। सार रूप में यही कहा जा सकता है कि अनुवाद व्यवहार के व्यापक आयामों के आलोक में अनुवाद सैद्धांतिकी निर्माण और समृद्धि में गांधी जी का अवदान अतुलनीय है।

संदर्भः

1 'हिंद स्वराज' ('Preface to 'INDIAN HOME RULE' और 'हिंद स्वराज' के अनुवाद की भूमिका), Appendix-2 और परिशिष्ट 2, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2009, पृ.286 एवं 297

2 सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अनुवादक - काशीनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1957/2005, चौथा भाग, अध्याय 18, पृ.271

3 गांधी : समय, समाज और संस्कृति, विष्णु प्रभाकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2000, पृ. 123

4 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 6, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 286

5 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 6, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 289

6 गांधी: समय, समाज और संस्कृति, विष्णु प्रभाकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2000, पृ. 123

7 दि सेलेक्ट वर्क्स आफॅ महात्मा गांधी, भाग 4, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1997, पृ. 262

8 गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान, कमल किशोर गोयनका, नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 281

9 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 5, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 262

10 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 6, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 286

11 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 6, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रलय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 289

12 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 6, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 364

13 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 6, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 369

14 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 7, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 193

15 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 7, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 205

16 सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अनुवादक - काशीनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1957/2005, पहला भाग, अध्याय 22, पृ.70

17 दि सेलेक्टिड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, भाग 4, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1997, पृ. 211

18 अनुवादशास्त्र : व्यवहार से सिदधांत की ओर, प्रो. हेमचंद्र पांडे, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2008, पृ.128

19 'अनुवाद' पत्रिका ('अनूदित पाठों का शिक्षण : कुछ विषय-अध्ययन, प्रो. अवधेश कुमार सिंह, अनुवादक - डॉ. हरीश कुमार सेठी), 'अनुवाद' पत्रिका, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, अंक 158, जनवरी-मार्च 2014, पृ. 57

20 'अनुवाद' पत्रिका ('अनूदित पाठों का शिक्षण : कुछ विषय-अध्ययन, प्रो. अवधेश कुमार सिंह, अनुवादक - डॉ. हरीश कुमार सेठी), 'अनुवाद' पत्रिका, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, अंक 158, जनवरी-मार्च 2014, पृ. 57

21 'गांधी, आंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ', डॉ. रामविलास शर्मा (जातीय भाषा और राष्ट्रभाषा'), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 405-406

22 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 29, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 200-201

23 इंडियन एक्सप्रेस, 15 अगस्त 2004 (अनुवादशास्त्र : व्यवहार से सिद्धांत की ओर, प्रो. हेमचंद्र पांडे, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2008, पृ.124 से उद्धृत)

24 'हिंद स्वराज' ('Preface to 'INDIAN HOME RULE' और 'हिंद स्वराज' के अनुवाद की भूमिका), Appendix-2 और परिशिष्ट 2, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2009, पृ-xii-xiii

25 गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान, कमल किशोर गोयनका, नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 282

26 गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान, कमल किशोर गोयनका, नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 284

27 स्मारिका (23 सितंबर 1994 को संपन्न नातालि एवं द्विवागीश सम्मान-अर्पण के अवसर पर प्रकाशित), संपा. डॉ. गार्गी गुप्त, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, पृ. 53

28 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 20, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 539

29 संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 83, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 133

30 'हिंद स्वराज' ('Preface to 'INDIAN HOME RULE' और 'हिंद स्वराज' के अनुवाद की भूमिका), Appendix-2 और परिशिष्ट 2, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2009, पृ.286 एवं 297

31 गांधी : समय, समाज और संस्कृति, विष्णु प्रभाकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2000, पृ. 123

32 सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अनुवादक - काशीनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1957/2005, चौथा भाग, अध्याय 26, पृ.291

33 दि सेलेक्टि वर्क्स आफॅ महात्मा गांधी, भाग 3, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1997, पृ. viii

34 अनुवादशास्त्र : व्यवहार से सिद्धांत की ओर, प्रो. हेमचंद्र पांडे, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2008, पृ.126

35 दि सिलेक्ट वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, भाग 5, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1997, पृ. 12-13

36 अनुवादशास्त्र : व्यवहार से सिद्धांत की ओर, प्रो. हेमचंद्र पांडे, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2008, पृ.127

37 संपूर्ण गांधी वांगम्य, खंड 5, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 262

38 'हिंद स्वराज' ('Preface to 'INDIAN HOME RULE' और 'हिंद स्वराज' के अनुवाद की भूमिका), Appendix-2 और परिशिष्ट 2, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2009, पृ. 286-287 एवं 297-298

39 संपूर्ण गांधी वांगम्य, खंड 7, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ. 205

– असिस्टेंट प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, ब्लॉक 15-सी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068.

❑❑❑

गांधीवाद और हिंदी कविता

डॉ. श्याम सुंदर पांडेय

बीसवीं शताब्दी में विश्व को अपने विचारों से सर्वाधिक प्रभावित करने वाले महापुरुषों में महात्मा गांधी का नाम सर्वप्रमुख है। वैसे तो महात्मा गांधी अपने नाम पर कोई वाद चलाने के समर्थक नहीं थे फिर भी, समाज के विविध पक्षों पर उनके विचारों को ही गांधीवाद नाम दे दिया गया। व्यक्तिगत रूप से एक राजनीतिज्ञ होने के साथ - साथ महात्मा गांधी एक समाजसुधारक, शिक्षाविद और अध्यात्मचिंतक भी थे। उनके विचारों ने राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि लगभग सभी पक्षों को प्रभावित किया। मूलरूप से उनके विचारों में मानवतावाद विद्यमान है।

गांधी जी के चिंतन के मुख्य आधार सत्य और अहिंसा हैं। वे सदा कहते रहे कि सत्य और अहिंसा की साधना करके ही मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। उनके लिए सत्य ईश्वर का स्वरूप है। अहिंसा सत्य का दूसरा पहलू है जिसका संबंध प्रेम से है। मूल रूप से अहिंसा अधिकतम प्राणियों के प्रति प्रेम की भावना का दर्शन है। यह कर्म और निडरता का परिचायक होता है। उनके सत्य और अहिंसा के प्रयोग ने न केवल भारत बल्कि संपूर्ण विश्व के समक्ष एक नया मार्ग प्रशस्त किया। वह मार्ग भी ऐसा जो विरोधियों के साथ बिना किसी मारपीट के, बिना किसी हिंसा के उनसे अपनी बात मनवा लेने की सामर्थ्य रखता हो। तत्कालीन समाज के लिए यह विचार एक मंत्र की तरह कार्य करने लगा और समाज के सभी पक्षों पर इसका प्रभाव दिखाई देने लगा। ठीक इसी तरह उन्होंने अपने चिंतन में सदाचार और नैतिकता को विशेष महत्व दिया। उनके अनुसार सदाचार और नैतिकता का पालन ही धर्म है। उन्होंने धर्म को पूर्णत: हृदय से संबद्ध बताया क्योंकि उनके लिए धर्म बुद्धिग्राह्य नहीं बल्कि हृदयग्राह्य है। धर्म के क्षेत्र में उन्होंने सर्वधर्म समभाव की स्थापना की और धर्म को सत्य तक पहुँचाने वाला सेतु बताया। उन्होंने ईश्वर को ही इस संसार का नियामक माना। सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना ईश्वर सुनता है इसका प्रयोग भी उन्होंने अपने जीवन में अनेक बार किया। प्रार्थना उनके जीवन का मुख्य अंग रही। उनके धार्मिक चिंतन में व्रत का स्थान भी महत्वपूर्ण था। जीवन में सत्यनिष्ठ बने रहने के लिए उन्होंने व्रत को आवश्यक बताया। उनका मानना था कि व्रत विचारों को दृढ़ता प्रदान करता है। उन्होंने आध्यात्मिक एवं धार्मिक विचारधारा की शुद्धि के लिए शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विकास को महत्वपूर्ण बताया।

सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने रामराज्य की परिकल्पना की। उनके विचारों में एक ऐसे समाज की परिकल्पना थी जिसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं, असमानता नहीं और उन्नति का सबको समान अधिकार हो। धर्म-जाति, संप्रदाय, वर्ग आदि को आधार बनाकर किसी प्रकार का कोई विभाजन न हो। वह सोचते थे कि नर-नारी में समानता हो, छूआछूत का अंत हो, बाल विवाह, बहु विवाह जैसी कुप्रथाएँ बंद हों तथा युगों से पीड़ित महिलाओं और दलितों का शोषण बंद हो। वास्तव में महात्मा गांधी एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जो प्रेम और अहिंसा की नींव पर टिका हो। धर्म को उन्होंने राजनीति से भी जोड़ा। उन्होंने राजनीति को आध्यात्मिकता प्रदान की। राजनीति में सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा और असहयोग जैसी बातें जो

आज कभी-कभी दिखाई देती हैं वह महात्मा गांधी की ही देन हैं। उनके अनुसार सत्याग्रह का मार्ग अहिंसा के साथ-साथ आत्मशक्ति और प्रेम शक्ति का द्योतक भी है। यदि महात्मा गांधी के आर्थिक चिंतन का अवलोकन करें तो देखते हैं कि वह चिंतन भारतीय परंपरा के सर्वथा अनुकूल है। उन्होंने मशीनों के अनियंत्रित प्रयोग का विरोध किया। उनका मानना था कि इससे पूंजी का केंद्रीकरण होता है जो कि समाज के लिए किसी भी दृष्टि से लाभदायक नहीं होता। इसीलिए उन्होंने कुटीर उद्योग धंधों का जोरदार समर्थन किया। खादी और चरखा उनके स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख अंग थे। इसके पीछे गौ रक्षा की भावना भी काम कर रही थी क्योंकि भारतीय खेती में गौ की विशेष भूमिका थी। अपने आर्थिक चिंतन में उन्होंने स्पष्ट किया कि जिस प्रकार प्रकृति प्रदत्त हवा-पानी आदि सबको उपलब्ध हैं ठीक उसी प्रकार जीवनयापन की सभी सुविधाएँ भी सबको उपलब्ध होनी चाहिए। उनके सर्वोदय की विचारधारा के पीछे उनका यही आर्थिक चिंतन कार्य कर रहा था उनका स्पष्ट कहना था कि वह अर्थव्यवस्था अच्छी होगी जिसमें अमीर-गरीब सबका भला हो सके, सबको रोजगार मिल सके। राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ महात्मा गांधी कला, साहित्य और संस्कृति के भी मर्मज्ञ थे। उनकी दृष्टि में कला और साहित्य दोनों का उद्देश्य मानव जीवन को उन्नत बनाना था। शिक्षा के माध्यम के रूप में उन्होंने मातृभाषा का समर्थन किया। हिंदी के प्रयोग पर उन्होंने विशेष बल दिया। वे अच्छी तरह जानते थे कि हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो पूरे देश को जोड़ने का कार्य कर सकती है। इसीलिए आजादी की लड़ाई में उन्होंने हिंदी को अपनाया। इस प्रकार समाज के विविध पक्षों को महात्मा गांधी ने अपनी दृष्टि प्रदान की और उनके इन्हीं विचारों को गांधीवाद के नाम से अभिहित किया गया।

महात्मा गांधी की इस मानवतावादी विचारधारा ने जिस प्रकार समाज के विविध पक्षों को प्रभावित किया ठीक उसी प्रकार हिंदी का साहित्यकार भी उनसे अछूता नहीं रह सका। हिंदी की गद्य और पद्य दोनों विधाओं पर गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उनके मानवतावादी विचारों को आधार बनाकर एक तरफ दर्जनों उपन्यास लिखे गए तो दूसरी तरफ हिंदी कविता के क्षेत्र में भी गांधीवाद का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। साहित्य समाज से ही संबद्ध होता है इसलिए साहित्यकारों ने भी सत्य और अहिंसा तथा गांधी के अन्य विचारों को हाथोंहाथ लिया। हिंदी के कवियों ने गांधी के इन मानवीय मूल्यों का समर्थन किया। भारत की राजनीति में महात्मा गांधी की सक्रिय भागीदारी 1915-1916 से मानी जाती है। हिंदी साहित्य के इतिहास में यह युग द्विवेदी युग के समापन और छायावाद के आगमन की तैयारियों का युग माना जाता है। इस दौर के अधिकांश कवि महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित हुए और उनके विचारों को काव्यमय अभिव्यक्ति की। इन कवियों में सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी आदि का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इस समय अनेक कवि ऐसे भी थे जो गांधीवाद से प्रेरणा ग्रहण करके साहित्य रचना कर रहे थे। ऐसे कवियों में प्रसाद, पंत, नरेंद्र शर्मा आदि का नाम लिया जा सकता है। वैसे यह क्रम बाद तक भी चलता रहा और भविष्य में भी चलता रहेगा क्योंकि महात्मा गांधी के विचार मानवतावादी हैं। इस रूप में जब-जब मानवीय भावधारा को आधार बना कर काव्य रचना की जाएगी तब-तब किसी न किसी रूप में महात्मा गांधी वहाँ विद्यमान दिखाई देंगे।

महात्मा गांधी के भारत में आगमन के बाद सामाजिक जीवन में प्रवेश के साथ ही उनके सत्य और अहिंसा के प्रयोगों को समाज का व्यापक समर्थन मिला। भारत का बौद्धिक वर्ग दक्षिण अफ्रीका में उनके इस प्रयोग और उसके परिणामों से अवगत हो चुका था। वहाँ सत्य और अहिंसा की ताकत का लोहा अंग्रेज सरकार भी मान चुकी थी। भारत का संपूर्ण स्वतंत्रता संग्राम गांधी जी की अगुआई में सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर ही टिका था। उनके आंदोलन के मुख्य आधार सत्य और अहिंसा थे। हिंदी कवियों ने सत्य को निर्बल का बल और जीवन का सार कहा। सनेही जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस संदर्भ में दर्शनीय हैं -

सत्य सृष्टि का सार, सत्य निर्बल का बल है,
सत्य-सत्य है, सत्य नित्य है, अचल है, अटल है।

सत्य की तरह ही इस समय के कवियों ने अहिंसा का भी समर्थन किया। महात्मा गांधी का यही मानना था कि हिंसा से हिंसा का अंत कभी नहीं हो सकता। उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया सदा चलती रहेगी। इसलिए मानव कल्याण का एक मात्र उपाय अहिंसा है।

सियारामशरण गुप्त गांधी जी के इन्हीं विचारों को कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि :

हिंसा से शांत नहीं होता हिंसानल
हिंसा का है, एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।

प्रथम विश्व युद्ध के समय ही महात्मा गांधी ने कहा था कि युद्ध किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यदि मानव समाज का कल्याण करना है तो हिंसा को त्यागना होगा। हथियारों की अंधी दौड़ का भी उन्होंने विरोध किया –

अणु बम से है नहीं/अहिंसा से है जग का कल्याण।

महात्मा गांधी की इस अहिंसक क्रांति ने पूरी दुनिया का ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया। यह क्रांति दुनिया के इतिहास में एक नए युग की शुरुआत करती है। जिसकी महत्ता को स्पष्ट करते हुए नरेंद्र शर्मा जी लिखते हैं कि –

क्रांतियाँ जग में हुईं अब तक कई,
पर अहिंसक क्रांति की संज्ञा नई, शैली नई।

महात्मा गांधी के सामाजिक चिंतन को भी हिंदी कवियों ने अपने साहित्य में स्थान दिया। सभी भेदभावों को मिटाकर जिस सामाजिक एकता की बात वे कह रहे थे उसी को आधार बनाते हुए सोहनलाल द्विवेदी ने लिखा कि –

हिंदू – मुस्लिम, सिक्ख – ईसाई
क्या न सभी हैं भाई – भाई ?
जन्मभूमि है सबकी माई।

नारी कल्याण की बात गांधीवाद का एक महत्वपूर्ण पक्ष था। उनका स्पष्ट मानना था कि नारी किसी भी रूप में पुरुष से कम नहीं है। उसका अपना एक स्वतंत्र व्यक्तिव है जिसे विकसित होने का पूर्ण अवसर समाज द्वारा मिलना चाहिए। इसलिए नारीवर्ग के लिए शिक्षा आवश्यक बताया। स्वाभाविक भी है कि जब नारी पुरुष की सहचरी है तब उसके पिछड़े रहने पर स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद और इस समय के लगभग सभी कवियों ने नारी के कल्याण को आवश्यक बताया।

इसी प्रकार महात्मा गांधी नें अछूतोद्धार पर भी बल दिया। अछूतों को भी ईश्वर की संतान बताते हुए उन्हें हरिजन कहा। उनके लिए जिस प्रकार नारियों का कल्याण होना चाहिए, उसी प्रकार हरिजनों का भी कल्याण होना चाहिए। छूआछूत को तो उन्होंने अमानवीय व्यवहार माना। महात्मा गांधी की इस मानवीय विचारधारा ने हिंदी कवियों को प्रभावित किया और उन्होंने इस कुप्रथा का विरोध करते हुए लिखा कि –

खोल दो ये द्वार मंदिर के पुजारी
द्वार पर ये जन खड़े हैं
द्वार पर हरिजन खड़े हैं
बिना इनके अधूरी है ये पूजा तुम्हारी।

महात्मा गांधी ने जिस धर्ममय राजनीति की बात कही वह भी हिंदी कवियों को रास आई। राजनीति के क्षेत्र में सत्याग्रह और असहयोग जैसी भावधाराएँ राजनीति के मनमानीपन पर प्रतिबंध लगाती हैं। राजनीति में सत्याग्रह महात्मा गांधी की ही देन है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति में इस सत्याग्रह की विशेष भूमिका रही। इसीलिए हिंदी के कवियों ने भी इसका जोरदार समर्थन किया और इसका समर्थन करते हुए सनेही जी ने लिखा कि–

सत्याग्रह प्रेमास्त्र मनों को हरने वाला
जिनसे परम विरोध उन्हें वश करने वाला

महात्मा गांधी के आर्थिक चिंतन को भी हिंदी कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रचारित-प्रसारित किया। इस चिंतन में खादी और चरखा को विशेष महत्व दिया गया। उन्होंने खादी को आर्थिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता का भी प्रतीक बताया। इसके पीछे मूल कारण यह था कि भारत की मानवीय शक्ति का पूर्ण सदुपयोग होने पर उत्पादन बढ़ेगा और बिना किसी विदेशी सहायता के हम उन्नति कर सकेंगे। चरखा हमारी उन्नति का आधार बनेगा क्योंकि भारतीय परिवेश में यह सामान्य लोगों के लिए कई तरह के रोजगार उपलब्ध कराता है। इसकी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए सनेही जी ने लिखा कि –

खादी के धागे-धागे में, अपनेपन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा।

महात्मा गांधी के ये विचार बाद के कवियों को भी प्रभावित करते रहे। सच्चाई तो यह है कि जब तक धरती पर मानव जाति रहेगी तब तक महात्मा गांधी के विचार प्रासंगिक बने रहेंगे। सत्य, प्रेम, अहिंसा और सत्याग्रह ये भाव ही ऐसे हैं जिनकी जरूरत सदा महसूस की जाएगी। भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य में भी ये विचारधाराएँ उभर कर आई हैं। पाप से नहीं पापी से

घृणा करो और स्नेह से विरोधियों का हृदय परिवर्तन करने जैसी बातें मिश्र जी के काव्य में यहाँ व्यापक मात्रा में उपलब्ध हैं। स्नेह की आवश्यकता पर जोर देते हुए मिश्र जी लिखते हैं - *कितने गहरे रहें गर्त / हर जगह प्यार जा सकता है*

कितना ही भ्रष्ट जमाना हो / हर समय प्यार भा सकता है

जो गिरे हुए को उठा सके / इससे प्यारा कुछ जतन नहीं

× × × ×

हो सख्त बात से नहीं : स्नेह से काम जरा लेकर देखो

अपने अंतर का नेह। अरे ! जरा देकर देखो।

अंत में यह कहना समीचीन होगा कि महात्मा गांधी के विचार पूर्णतः मानव कल्याण की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। उन्होंने जिस समाज की कल्पना की वह समाज तभी निर्मित हो सकेगा जब हमारे बीच आपसी सहयोग और प्रेम का भाव बढ़ेगा। साहित्य एक ऐसी कला है जो समाज को अपना उपजीव्य बनाती है, उससे लेती है और उसे देती भी है। साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे को छोड़कर कभी बहुत दूर तक नहीं जा सकते। साहित्य किसी विचारधारा के प्रचार - प्रसार में सर्वाधिक उपयोगी और टिकाऊ माध्यम है। यही कारण है कि महात्मा गांधी के विचारों को सामान्य जनता तक पहुँचाने में साहित्य की विशेष भूमिका रही। व्यापक मात्रा में कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास और गीत आदि की रचना हुई और इन सबके माध्यम से गांधीवाद जन-जन का कंठहार बन सका।

– निदेशक, गांधी अध्ययन केंद्र, बिड़ला महाविद्यालय, कल्याण (थाने), मुंबई।

❑❑❑

गांधी जी के शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण की प्रासंगिकता

डॉ. वैशाली कुशवाहा

कोई चिंतन या दृष्टिकोण तभी प्रासंगिक होता है जब समसामयिक संदर्भों में उसकी सार्थकता हो। डॉ. जगमोहन सिंह राजपूत अपने एक आलेख 'स्कूली शिक्षा के बदलते पाठ्यक्रम सरोकार' में अपने विचार व्यक्त करते हुए यह कहते हैं कि- "सामान्यत: यह माना जाता है कि राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने, सामाजिक समरसता को स्थापित करने तथा जीवन के अनेक आयामों में गुणवत्ता लाने और उन्हें लगातार सुदृढ़ करने के लिए अच्छी व्यावहारिक और व्यापक शिक्षा व्यवस्था ही सार्थक और शक्तिशाली साधन हो सकती है। शिक्षा इंसान को समाज में जीना सिखाती है।" शिक्षा से व्यक्ति ज्ञानी ही नहीं अपितु शिक्षित बनता है और ज्ञानी व्यक्ति शिक्षा से जुड़ा होता है। सदियों से शिक्षा मानव जाति से किसी न किसी रूप में जुड़ी रही। अत्यंत प्राचीन काल में शिक्षा विभिन्न कलाओं के रूप में दी जाती रही है।

भाषा की तरह शिक्षा भी पहले मौखिक रूप में ही दी जाती थी। अब प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा है क्या? वास्तव में शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया निरंतर गतिमान रहती है और रहनी भी चाहिए। एक शिक्षा प्रमाण पत्रों को हासिल करने के लिए ली जाती है और दूसरी शिक्षा ज्ञान प्राप्ति के लिए। वास्तव में शिक्षा दर्शन से जुड़ी होती है क्योंकि इसमें शिक्षा के उद्देश्यों का मानवीय जीवन के उद्देश्यों से रिश्ता क्या है यह देखा जाता है। रूसो का शिक्षा दर्शन, टैगोर का शिक्षा दर्शन, विवेकानंद का शिक्षा दर्शन, अरविंद का शिक्षा दर्शन एवं गांधी जी का शिक्षा दर्शन मानव जीवन को महत्वपूर्ण बनाता है। अब तो माता-पिता की अति महत्वाकांक्षाएँ बच्चों का मानसिक संतुलन बिगाड़ रही है। स्कूल- कॉलेज या विश्वविद्यालय छोड़ने के पश्चात् हम शिक्षा को कितना उपयोगी बना पाते हैं यह विचारणीय प्रश्न है। शिक्षा दार्शनिक रूसो मानव को एक भावना प्रधान और एक संवेदनशील प्राणी मानते थे इसीलिए उनका सदैव यह मानना रहा कि मानव का शिक्षा के द्वारा भावनात्मक विकास होना चाहिए। रवींद्र नाथ टैगोर का शिक्षा दर्शन बहुत ही महत्वपूर्ण है। उनका यह सदैव मानना रहा है कि - "प्रकृति और सामाजिक संदर्भ से दूर ना हो शिक्षा"। आचार्य टैगोर भारत के पहले ऐसे दार्शनिक रहे जिन्होंने शिक्षा को बच्चों से जोड़ा और उसमें बड़े पैमाने पर सुधार करने का सुझाव दिया। हम देखते हैं कि कई वर्षों से शिक्षा व्यवस्था किताबों की गुलामी को प्रोत्साहन देती रही है किंतु धीरे-धीरे इस गुलामी से बाहर आने की जरूरत महसूस की जा रही है। वास्तव में दर्शन मानव जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करता है। टैगोर आधुनिक युग के महान दार्शनिक और प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रहे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के आधार पर न केवल भारतीय शिक्षा की नींव डाली अपितु पाश्चात्य शिक्षा में भी पूर्व एवं पश्चिम के आदर्शों को नए रूप में स्थापित किया। उनके शिक्षा दर्शन और कार्यों को देखते हुए बापू ने उन्हें 'गुरुदेव' की उपमा से सुशोभित किया। मोटे तौर पर यह मान सकते हैं कि गुरुवर प्रकृतिवादी शिक्षा के पक्षधर रहे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू का भी मानना था "शिक्षा संतुलित मानव का विकास करती है"। हम

सभी यह जानते हैं कि यदि शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ानी हो तो शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर भी ध्यान देना होगा। यह एक तुलनात्मक संप्रत्यय है जो देश काल एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलता ही रहता है और यह समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। चाहे अध्यापक हो या छात्र हो अथवा संस्थान हो, चाहे कोई अभिभावक हो या उस संस्थान के कोई नियोक्ता, सभी के द्वारा जो गुणात्मक कथन हो वही गुणवत्ता कहलाता है। यह गुणवत्ता संस्थान के पठन-पाठन, उसकी शासन प्रणाली, उसकी संरचना, उसके नियम तथा अन्य कार्यकलापों के आधार पर आश्रित किया जाता है। गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग का यह मानना था कि शिक्षा के क्षेत्र में किसी भी प्रकार के सुधार की कुंजी शिक्षक ही होते हैं इसीलिए पहले उन्हें प्रशिक्षित होना है। सन् 1964 में प्रोफेसर डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता वाली शिक्षा आयोग की मुख्य अवधारणा यही थी कि भारत के भाग्य का निर्माण विद्यालयों की कक्षाओं में हो रहा है और इसमें शिक्षक की भूमिका अहम होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो शिक्षक ही राष्ट्र का निर्माता होता है। इस बात पर यह विशेष ध्यान देना होता है कि शिक्षा के कई घटक होते हैं। पहला, यही कि शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं? और इस पर सभी एकमत होंगे कि बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ही शिक्षा का पहला उद्देश्य होना चाहिए चाहे शारीरिक विकास, मानसिक या चारित्रिक विकास हो; सभी इसी के अंतर्गत आ जाते हैं। केवल शिक्षा प्राप्त कर लेना काफी नहीं होता बल्कि नौकरी पा लेना और फिर अच्छे तरीके से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना शिक्षा को महत्वपूर्ण बनाता है। शिक्षा में दूसरा घटक पाठ्यक्रम से जुड़ा होता है। अच्छे-अच्छे पाठयक्रम बनाए जाएँ, विषय अच्छे रखे जाएँ, वह व्यवहारिक हो और आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रमों में विषयों को महत्व दिया जाना चाहिए। तीसरे घटक के रूप में जब हम शिक्षार्थी को लेते हैं तो उसके मनोविज्ञान का सदैव ही ध्यान रखना पड़ता है जैसे- शिक्षा जहाँ दी जाती है वह स्थान कैसा है? वहाँ का अनुशासन कैसा है? पठन-पाठन की सामग्री कैसी है? अन्य सुविधाएँ कैसी हैं? इन सभी को ध्यान में रखते हुए इन्हें जब शिक्षा से जोड़ा जाता है तो शिक्षा का महत्व और बढ़ जाता है। अब तो हम विज्ञान और तकनीकी युग में जी रहे हैं। रोजगार की संभावनाएँ भी इसी क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं।

भूमंडलीकरण के इस युग में शिक्षा चुनौतीपूर्ण होती जा रही है। मनुष्य मशीन ना बने, किस प्रकार सभ्यता का विकास हो? व्यक्ति के हृदय में देश प्रेम, सेवा, सहयोग और त्याग इन सारे कार्यों को सुविचारित ढंग से शिक्षा ही कर सकती है। अब शिक्षा का निजीकरण भी हो गया है। बाजारीकरण की नीतियों से वस्तु तथा संसाधन का चित्र बनाना तो उचित है किंतु शिक्षा का बाजारीकरण हो यह उचित नहीं है। यही कारण है कि शिक्षा का बाजारीकरण हमें दिखाई देता है, इसकी वजह से भारत की आधी से ज्यादा आबादी गुणकारी शिक्षा पाने से वंचित रह जाती है। कोचिंग सेंटर ज्यादा चल रहे हैं, ट्यूशन पढ़ाए जा रहे हैं। यह सब धन कमाने के साधन बनते जा रहे हैं और गरीब बच्चे इसका लाभ नहीं ले पाते हैं। ऐसी स्थितियों को यदि नहीं रोका गया तो शिक्षा का उद्देश्य एक ना एक दिन लुप्त हो जाएगा। अब धीरे-धीरे शिक्षा में कंप्यूटर और तकनीकी का महत्व बढ़ रहा है। समाज में हर क्षेत्र की नेटवर्किंग कंप्यूटर से जुड़ गई है। विद्यालयों में भी छोटी कक्षा से कंप्यूटर सिखाना अनिवार्य कर दिया गया है, जब बच्चे थोड़ी और बड़ी कक्षा में आते हैं तब तक वह कंप्यूटर सीख चुके होते हैं। यह एक अच्छी बात है। कहीं ऐसा ना हो कि इनकी आड़ में जो बुनियादी शिक्षा है उसका उद्देश्य ही लुप्त हो जाए। शिक्षक हो या शिक्षार्थी सभी को शिक्षा में रुचि अवश्य होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है तो शिक्षा की गुणवत्ता समाप्त हो जाती है। मैकेंजी ने शिक्षा के व्यापक अर्थ को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'व्यापक दृष्टि से शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अंगो द्वारा इसका विकास होता है'। समाज और व्यक्ति दोनों का विकास शिक्षा के द्वारा माना जाता है। प्रत्येक समाज की अपनी जीवनशैली होती है, उसकी आकांक्षाएँ होती हैं और समाज के वयस्क अपनी आने वाली पीढ़ी को इस जीवन शैली से प्रशिक्षित करने तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। इस शिक्षा व्यवस्था का एक उद्देश्य होता है, उसके अपने पाठ्यक्रम होते हैं और शिक्षण विधियाँ होती हैं। यह शिक्षा बालक को निश्चित समय में निश्चित स्थान पर निश्चित लोगों के द्वारा दी जाती है। शिक्षा की व्यवस्था सामान्यत: राज्य करता है। शिक्षा का उद्देश्य राज्य के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होना स्वाभाविक है और राष्ट्र की उन्नति शिक्षा पर निर्भर

करती है। विद्यालय छोड़ने के बाद शिक्षा के द्वारा ही विभिन्न कौशलों का विकास संभव होता है। श्रवण कौशल, वाक् कौशल, पठन कौशल और लेखन कौशल अर्थात् इन चारों कौशलों का विकास शिक्षा पर ही केंद्रित होता है।

विवेकानंद के शिक्षा संबंधी विचारों को यदि हम देखें तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि उन्होंने सामाजिक व्याधि के प्रतिकार का उपाय शिक्षा को ही माना है। वह कहते हैं- "समाज के दोषों को दूर करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से नहीं वरन शिक्षा दान द्वारा परोक्ष रूप से उसकी चेष्टा करनी होगी"। उनका मानना है कि मानव में जन्मजात् शक्तियां विद्यमान रहती हैं और शिक्षा उन्हीं शक्तियों का विकास करती है।

सभी प्रकार का ज्ञान मनुष्य की आत्मा में निहित रहता है। वह कहते हैं- 'गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत अपने प्रतिपादन के लिए न्यूटन की खोज की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था, वह न्यूटन के मस्तिष्क में पहले से ही था। जब समय आया तो न्यूटन ने केवल उसकी खोज की, इसी तरह विश्व का असीम ज्ञान भंडार मानव है। बाहरी संसार केवल एक निमित्त मात्र है जो अपने ही मन का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है। अतः सभी ज्ञान चाहे वह सांसारिक हो अथवा परमार्थिक मनुष्य के मन में निहित है बस यह आवरण से ढका रहता है और जब यह आवरण धीरे-धीरे हटता है तो मनुष्य को लगता है कि उसे ज्ञान हो रहा है। स्वामी विवेकानंद ने सर्वहितकारी, सर्वव्यापी एवं मानवता का निर्माण करने वाली शिक्षा पर सदैव बल दिया।

शिक्षा को धर्म से जुड़ा मानकर विवेकानंद ने दोनों की मानव के अंदर पाई जाने वाली प्रवृति को उजागर करना ही अपना धर्म माना। मानव कल्याण का मूल बीज शिक्षा को मानकर विवेकानंद ने शिक्षा को सफल बनाने की योजना बनाई। उन्होंने शिक्षा का एक उदार एवं संतुलित प्रारूप बनाया। इसी क्रम में यदि हम अरविंद के शिक्षा दर्शन को देखें तो हम पाते हैं कि अरविंद का शिक्षा दर्शन अनूठा है। उन्होंने यह माना कि मानव सांसारिक जीवन में भी दैवीय शक्ति प्राप्त कर सकता है। वे मानते थे कि मानव भौतिक जीवन व्यतीत करते हुए तथा अन्य मानव की सेवा करते हुए अपने मानस को अतिमानव अर्थात् सुपरमैन में परिवर्तित कर सकता है और यह शिक्षा के द्वारा ही संभव है। यदि श्री वी. आर. तनेजा के शब्दों में कहा जाए तो यह कहा जा सकता है कि- "श्री अरविंद का शिक्षा दर्शन लक्ष्य की दृष्टि से आदर्शवादी, उपागम की दृष्टि से यथार्थवादी, क्रिया की दृष्टि से प्रयोजनवादी, महत्वाकांक्षा की दृष्टि से मानवतावादी है। हमें इस दृष्टिकोण को शिक्षा में अपनाना चाहिए"। उन्होंने कई शैक्षिक प्रयोग किए और राष्ट्रीय शिक्षा की संकल्पना का विकास किया; यदि हम गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचारों पर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि उन्होंने सदैव शिक्षा को मनुष्य और समाज से जोड़ने का प्रयास किया है। उन्होंने सामाजिक उन्नति का आधार शिक्षा को ही माना है। शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान विशेष रूप से सराहनीय रहा है। उनका मूल मंत्र था- "शोषण विहीन समाज की स्थापना करना"। उसके लिए सभी को शिक्षित होना चाहिए ऐसा उनका मानना था क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण लगभग असंभव होता है, इसलिए गांधी जी ने शिक्षा के उद्देश्यों और सिद्धांतों की व्याख्या की तथा प्रारंभिक शिक्षा योजना उनके शिक्षा दर्शन का ही मूर्त रूप है। उनका शिक्षा दर्शन उनको एक शिक्षा शास्त्री के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है। भारत में बच्चों को 3H शिक्षा अर्थात हैंड, हेड और हार्ट की शिक्षा दी जाए। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि वह व्यक्ति को स्वावलंबी बनाए और देश को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सके।

महात्मा गांधी और भारतीय शिक्षा का आपस में गहरा संबंध है। वह हमेशा भारतीय शिक्षा को 'दी ब्यूटीफुल ट्री' कहा करते थे, उन्होंने हमेशा यह महसूस किया कि भारत में शिक्षा सरकार के बजाय समाज के अधीन है। डॉक्टर धर्मपाल जो प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक रहे उन्होंने गांधी जी के चिंतन को लेकर लगातार शोध किया और उन्हें यह समझ में आया कि भारतीय अर्थशास्त्र और कुटीर उद्योग को समाप्त कर अंग्रेजों ने पूरे अर्थतंत्र को खत्म दिया है। गांधी जी ने शिक्षा के लिए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जैसे उन्होंने बताया कि 7 वर्ष से लेकर 14 वर्ष की उम्र तक निशुल्क शिक्षा होनी चाहिए और यह शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए। इसी तरह उन्होंने साक्षरता को शिक्षा नहीं माना, उनका कहना था शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। जिस प्रकार एक बालक जीवन की प्रारंभिक शिक्षा अपनी माँ से ग्रहण करता है उसी प्रकार स्कूल जाने पर अपनी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करे। माना जाता है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे

बालक के शरीर, मन और आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास हो। सभी विषयों की शिक्षा स्थानीय उत्पादन ,उद्योगों के माध्यम से दी जानी चाहिए और ऐसी शिक्षा हो जो बड़े होने पर नवयुवकों को रोजगार मुहैया कराए। इस प्रकार शिक्षा का अर्थ बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में स्थित रहने वाले सर्वोत्तम गुणों का चहुँमुखी विकास है। बापू ने शिक्षा के उददेश्यों को दो भागों में बांट दिया - पहला है शिक्षा का तात्कालिक उद्देश्य और दूसरा सर्वोच्च उद्देश्य। तात्कालिक उद्देश्य जिनको नियमित शिक्षा के माध्यम से शीघ्र प्राप्त किया जा सकता है जो इस प्रकार से देखा जा सकता है जैसे जीविकोपार्जन का उद्देश्य क्या होना चाहिए? गांधी जी का मानना था कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो हमारी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे और बालक आत्मनिर्भर बन सके। उसके सामान्य व्यवहार में संस्कृति दिखाई देनी चाहिए। शिक्षा का विकास होना चाहिए क्योंकि इसके द्वारा बालकों का मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास होता है। वह भी मानते थे कि शिक्षा मानव के चारित्रिक और नैतिक विकास का आधार होना चाहिए। शिक्षा के द्वारा समस्त बंधनों से मुक्ति मिले यह भी उनका उद्देश्य रहा। अविनाश निगम जी कहते हैं- 'बुनियादी शिक्षा हमारे राष्ट्रपिता का अंतिम और संभवत: महानतम उपहार है'। सन 1937 में बापूंजी ने वर्धा के 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन' में अपनी बेसिक शिक्षा अर्थात बुनियादी शिक्षा की नई योजना प्रस्तुत की। सन् 1938 में हरिपुर के अधिवेशन में इस रिपोर्ट को स्वीकृति दी गई जो कि 'वर्धा शिक्षा योजना' के नाम से प्रसिद्ध हुई और बुनियादी शिक्षा का आधार बनी, यदि बुनियादी शिक्षा की विशेषताओं की ओर देखा जाए तो उसमें यह कहा गया कि बुनियादी शिक्षा के पाठयक्रम की अवधि 7 वर्ष की हो, शिक्षा का माध्यम अपनी मातृभाषा हो और यह बालक-बालिकाओं दोनों के लिए अनिवार्य हो, 7 से 14 वर्ष के बालक बालिकाओं को निशुल्क शिक्षा दी जानी चाहिए, संपूर्ण शिक्षा का संबंध आधारभूत शिल्प से हो, शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जाए कि बालक उसके सामाजिक और वैज्ञानिक महत्व को समझ सकें, शारीरिक श्रम को महत्व दिया जाना चाहिए जिससे वह जीविकोपार्जन का आधार बने, शिक्षा बालकों के समाज, ग्रामीण उद्योगों, हस्तशिल्पियों और व्यवसायों से जुड़ी होनी चाहिए ताकि उनके द्वारा बनाई गई वस्तुएं जिनका प्रयोग वे स्वयं कर सकें और उन्हें बेचकर कुछ आय करके विद्यालय के ऊपर व्यय कर सकें, चाहे बालक हो या बालिका दोनों का पाठ्यक्रम समान रखा जाना चाहिए, पाठ्यक्रम का स्तर वर्तमान मैट्रिक के समकक्ष हो, छठी और सातवीं में बालिकाएँ शिल्प के स्थान पर गृह विज्ञान ले सकती हैं, इस प्रकार बापू ने बुनियादी शिक्षा को प्रासंगिकता से जोड़ा। बुनियादी शिक्षा की संरचना से यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि यह राष्ट्रीय सभ्यता और सामुदायिक जीवन के आधारभूत व्यवसायों और संस्कृति के साथ जुड़ी है इसलिए बालकों और बालिकाओं ने जो कुछ सीखा उससे अपने जीवन का निर्वाह कर लिया। शिक्षा मानव की बुनियादी आवश्यकताओं से जुड़ी हुई है इसीलिए इसे बुनियादी शिक्षा का नाम दिया गया। आज भी हम देख सकते हैं माननीय प्रधानमंत्री हस्तशिल्प को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दे रहे हैं और गांधी जी के सपनों को साकार कर रहे हैं क्योंकि गांधी जी की बुनियादी शिक्षा पाठ्यक्रम के अंतर्गत कृषि, कढ़ाई, बुनाई, लकड़ी, चमड़े, मिट्टी के काम, बागवानी करना, सब्जियाँ उगाना, मछली पालन, बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान और समाज तथा परिवार से जुड़ी कलाओं का विकास करना रहा। साथ ही चाहे विज्ञान हो चाहे शारीरिक शिक्षा हो इसे भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया और यह माना गया जो शिक्षण विधि हो उसमें कार्यकलापों और अनुभवों को जोड़ते हुए शिक्षा दी जाए।

आज हम विज्ञान और तकनीक में भी देख रहे हैं कि केवल पुस्तकों की शिक्षा पर्याप्त नहीं होती जब तक कि उसे व्यवहारिकता से ना जोड़ा जाए। यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि बालक- बालिका स्कूल के स्तर पर और युवा महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के स्तर पर जो कुछ सीखते हैं उसे व्यवहारिक रूप से प्रयोग में लाए तो उन्हें कभी भी रोजी रोटी की समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ेगा। गांधी जी का शिक्षा दर्शन यदि देखा जाए तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में और भी अधिक प्रासंगिक बन गया है। यदि धीरे-धीरे आज के शिक्षा शास्त्री इस बात की ओर ध्यान देने लगें और ऐसी शिक्षा योजनाएँ तैयार की जाएँ जिनको अपनाकर भारतीय समाज एक नए जीवन की कल्पना कर सकें। गांधी जी आदर्शवादी थे क्योंकि यह जीवन के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करता है इसके साथ ही बापू प्रयोगवादी और प्रयोजनवादी भी थे क्योंकि

उनका मानना था कि बालक-बालिकाओं की रुचि के अनुरूप यदि शिक्षा की व्यवस्था की जाए तो उनका शारीरिक और मानसिक विकास उत्तम होगा। आज पुनः समाज में बहुत से लोगों के द्वारा शिक्षा को नए रूपों में लागू करने के प्रयास चल रहे हैं। बालिकाओं के लिए कई तरह की योजनाएँ बनाई गई हैं। यह बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि आज युवाओं के पास बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ तो हो जाती हैं किंतु उनके पास रोजगार नहीं होते और ना ही वह आत्मनिर्भर बन पाते हैं क्योंकि उनके पास केवल किताबी शिक्षा होती है जो कहीं भी रोजगार दिलाने में सही साबित नहीं होती, इसीलिए बार-बार इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि किताबी शिक्षा के साथ-साथ उसकी व्यवहारिकता और व्यावसायिक शिक्षा को महत्व दिया जाना चाहिए। यदि आज की युवा पीढ़ी यह समझ सके तो वह दिन दूर नहीं जब भारत वर्ष में रोजगारों की कमी नहीं रहेगी। बापू ने मानवीय गुणों के विकास पर हमेशा बल दिया और यह भावना आज भी प्रासंगिक है क्योंकि आए दिन अखबारों में ऐसी ऐसी खबरें पढ़ते हैं जिससे हमारा मन अत्यंत दुखित और द्रवित हो जाता है कि यह आज का समाज ऐसी स्थितियों में जी रहा है और यदि ऐसा ही होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब विकास की ओर जाने वाला समाज अंधकार के गर्त में समा जाएगा, इसीलिए हम सबकी जिम्मेदारी यह बन जाती है कि हम बालकों में, युवाओं में मानवता का विकास करें उन्हें आत्मनिर्भर बनने में सहायता दें और यह भावना जगाने का प्रयास करें कि कोई काम छोटा बड़ा नहीं होता, जो अपने कार्य का आदर करेगा वही समाज में और अपने जीवन में आगे बढ़ सकेगा। बापू ने सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक आदि मूल्यों को शिक्षा के साथ जोड़कर यह बता दिया कि जीवन में चाहे धर्म हो, अर्थ हो या संस्कृति हो उसकी सही शिक्षा ही मनुष्य का विकास कर सकती है। बापू ने जिस सर्वोदय समाज की स्थापना का उद्देश्य मनुष्य के समक्ष रखा था उसके पीछे उनकी विभिन्न प्रकार की शिक्षाएँ कार्य कर रही थीं, वास्तव में देखा जाए तो देश और समाज के लोगों की सोच और उनकी चेतना के निर्माण में शिक्षा की नियामक भूमिका होती है। अक्षर ज्ञान से आगे बढ़कर अपने देश और समाज की परंपराओं को और जीवन मूल्यों को जानते हुए उसके अनुरूप राष्ट्र के उत्थान और समाज के उत्थान की दिशा में लोगों को जागृत और सक्रिय बनाने का अमोघ अस्त्र शिक्षा ही है किंतु अंग्रेजों ने अपने शासन के समय यहाँ ऐसी शिक्षा पद्धति का चलन किया जो शिक्षित वर्ग को यहाँ के जन जीवन से बिल्कुल विमुख कर देती है और उनकी चाकरी करने के लिए प्रेरित कर देती है। भारत के बड़े-बड़े देश प्रेमी अंग्रेजों की चालाकी को समझ नहीं पाए और इसे ही भारत के उत्थान का आधार समझ बैठे किंतु कई बुद्धिजीवी ऐसे भी रहे जिन्होंने अंग्रेजों की इस चालाकी को समझा और परखा तथा इसके विरुद्ध कदम भी उठाया। सन् 1878 में बंकिमचंद्र का 'लोक शिक्षा' लेख 'बंग दर्शन' पत्रिका में छपा था जिसमें उन्होंने अंग्रेजी भाषा एवं उसके शिक्षण के नाम पर दी जाने वाली वैज्ञानिक एवं आधुनिक शिक्षा को अपर्याप्त बताते हुए इस तथ्य की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया कि भले ही व्याकरण और गणित मानसिक उन्नति के लिए जरूरी किंतु व्यावहारिक जीवन की समस्याओं से जूझने के लिए यह संपूर्ण रूप से सहायक नहीं है। इसी तरह गांधी जी सदैव यह मानते रहे कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा के बजाय मातृभाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा अत्यधिक सहज और स्वाभाविक होती है।

भारत गाँवों का देश है। विभिन्न राज्यों की अपनी परंपराएँ और संस्कृतियाँ हैं, उनकी अलग-अलग भाषाएँ हैं, इसीलिए अंग्रेजी के खतरे को भाँपते हुए यदि अपनी-अपनी मातृभाषा में बुनियादी शिक्षा दी जाए तो वह बड़ी ही सफल और सरल होगी। यदि देश के स्वतंत्र होने के पश्चात तुरंत ही मातृभाषा के द्वारा शिक्षा प्रारंभ कर दी गई होती तो आज देश की यह स्थिति ना होती। जब बापू देश या विदेश का दौरा करते थे तो उन्हें मातृभाषा का महत्व समझ में आता था इसीलिए उन्होंने यह माना कि किसी भी भाषा का कोई दोष नहीं होता और ना ही वह छोटी-बड़ी होती है केवल शिक्षा के क्षेत्र में अपनी मातृभाषा का विकास नहीं हो पाया यही बड़े दुख की बात रही। बापू कहते हैं- माँ के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए वह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने में टूट जाता है इसके अतिरिक्त विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा देने से अन्य हानियाँ होती हैं। शिक्षित वर्ग और सामान्य जनता के बीच में अंतर पड़ गया है। हम जनसाधारण को नहीं

पहचानते। जनसाधारण हमें नहीं जानता वह हमें साहब समझते हैं और हमसे डरते हैं यदि यही स्थिति अधिक समय तक रही तो एक दिन लार्ड कर्जन का आरोप सही हो जाएगा कि- 'शिक्षित वर्ग जनसाधारण का प्रतिनिधि नहीं है'। 1 सितंबर 1921 के 'यंग इंडिया' में उन्होंने शिक्षा की चर्चा करते हुए लिखा कि- 'अन्य देशों के बारे में कुछ भी सही हो, कम से कम भारत में तो जहाँ 80 फीसदी आबादी खेती करने वाली है और दूसरी 10 फीसदी उद्योगों में काम करने वाली है, शिक्षा को निरी साहित्यिक बना देने तथा लड़कों और लड़कियों को उत्तर जीवन में हाथ के काम के लिए अयोग्य बना देना गुनाह है क्योंकि हमारा देश अधिकांश समय रोजी कमाने में लगा रहता है, इसलिए हमारे बच्चों को बचपन से ही इस प्रकार के परिश्रम का गौरव सिखाना चाहिए'। अपनी श्रेष्ठ जीवन शैली और आचरण के द्वारा बापू ने अपनी पीढ़ी ही नहीं बल्कि आगे आने वाली पीढ़ी के विचारों पर बड़ा गहरा असर डाला। उन्होंने सदैव स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं माना। आज भी अधिकांश स्त्रियाँ स्वतंत्र चिंतन नहीं करती और चाहे माता-पिता हों, भाई हों अथवा पति सभी के आदेशों का पालन करते हुए संतोष का अनुभव कर लेती हैं। अपनी निर्भरता का एहसास होने पर भी स्त्री अधिकार की आवाज नहीं उठाती, किंतु बदलते समय के साथ स्थितियाँ बदलने लगी हैं। नारी अपने जीवन में बदलाव लाए पुरुष प्रधान समाज उनकी शक्ति और क्षमता को पहचाने और उन्हें सम्मानित स्थानों पर बैठाने का प्रयास करे। नारी शिक्षा की दृष्टि से भारत काफी पिछड़ा हुआ है। इस बात से हम और आप कोई भी इनकार नहीं कर सकते, लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि भारत की महिलाएँ अपने कर्तव्य को पूरा करने में किसी से पीछे हैं। शिक्षा और कर्तव्य दो अलग बातें हैं। गांधी जी का अभिप्राय मात्र अक्षर ज्ञान से नहीं था बल्कि वह मानते थे- 'सा विद्या या विमुक्तये' शिक्षा का आशय केवल आध्यात्मिक शिक्षा नहीं है और ना ही विमुक्ति से मृत्यु के उपरांत मोक्ष में है, विमुक्ति का अर्थ वर्तमान जीवन की सभी प्रकार की पराधीनताओं से मुक्ति से है। ज्ञान में वह समस्त प्रशिक्षण समाहित है जो मानव जाति की सेवा के लिए उपयोगी है। स्त्री शिक्षा पर अपने विचार देते हुए बापू कहते हैं- 'मैं स्त्री की उचित शिक्षा में विश्वास करता हूँ लेकिन मेरा पक्का विश्वास है कि पुरुष की नकल करके या उसके साथ होड़ लगाकर वह दुनिया में अपना योगदान नहीं कर सकेगी। वह पुरुष की नकल करके ऊँचाइयों को नहीं छू सकती। जितनी सामर्थ्य उसके अंदर है उसे पुरुष का पूरक बनना है'। उन्हें पुरुषों के समकक्ष शिक्षा के सुविधाएँ मिलनी चाहिए और जहाँ आवश्यक वहाँ उन्हें विशेष सुविधाएँ भी अवश्य दी जानी चाहिए क्योंकि उनका मानना था कि जब एक घर में एक स्त्री शिक्षित होगी तभी परिवार, समाज और राष्ट्र शिक्षित होगा। शिक्षा ही स्त्री में आत्मविश्वास जगाती है और शिक्षा के द्वारा ही वह अपने बच्चों का सही रूप में लालन-पालन करने में सक्षम होगी। उन्होंने बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, तलाक, वेश्यावृत्ति, दहेज प्रथा जैसी अनेक कुरीतियों को देखा यही कारण रहा कि उन्होंने नारी के शिक्षित होने पर बल दिया क्योंकि जब भी किसी समाज और राष्ट्र में कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठानी हो तो आत्मबल और ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसीलिए नारी को पहले मानसिक तौर पर सक्षम बनना होगा तथा शिक्षा उसके लिए ज्ञान के नए क्षितिज खोल देगी। उन्होंने नारी को अबला कभी नहीं माना वह सदैव इसके खिलाफ रहे। वह कहते हैं कि- 'नारियों को अबला पुकारना उनकी आंतरिक शक्ति को दुत्कारना है यदि हम इतिहास उठाकर देखें तो उनकी कई मिसाले मिलेंगी जहाँ महिलाएं देश की गरिमा बढ़ाती हैं और जरूरत पड़े तो आध्यात्मिक अनुभूति के बल पर देश का स्वरूप बदल सकती हैं'। हम यह निसंकोच मान सकते हैं कि आज हम अपने चारों ओर महिला अधिकारों को लेकर जो अनुकूल वातावरण देख रहे हैं, उसकी नींव बापू जैसे महात्माओं ने बहुत पहले ही रख दी थी। सामाजिक कार्यकर्ता इला भट्ट ने अपनी पुस्तक 'गांधी ऑन वूमेन' में लिखा है कि- 'महिलाओं ने उनके नेतृत्व में चले जन आंदोलन में सहज ढंग से भाग लिया इससे भारतीय महिलाओं के जीवन में हमेशा के लिए एक मोड़ आ गया। मैं यह कहना चाहूँगी यदि गांधी यह मोड़ ना लाए होते तो मैं वह ना होती जो आज मैं हूँ, यह बात आज की हर महिला पर लागू होती है'। भले ही गांधी जी समूची मानव जाति का सम्मान करते थे किंतु नारियों के लिए उनके हृदय में गहरी संवेदना, आदर के भाव और सहानुभूति मौजूद थी। उन्होंने महिलाओं को केवल स्वतंत्रता आंदोलन में कूदने के लिए ही प्रेरित नहीं किया बल्कि उसको नेतृत्व करने का भी अवसर दिया।

स्वाधीनता संघर्ष के इतिहास में सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी, सुशीला नैयर, विजयलक्ष्मी पंडित, इंदिरा गांधी आदि महिलाओं ने कांग्रेस को सशक्त बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा कई महिलाओं ने बापू की प्रेरणा से सामाजिक उत्थान तथा अन्य रचनात्मक कार्यों को अपनाया और देश की सेवा की। यहाँ तक कि उन विदेशी महिलाओं को भी अपने व्यवहार व स्नेह से उन्होंने इतना प्रभावित किया कि अपना देश छोड़कर ना केवल भारत में बस गईं बल्कि भारतीय नाम और जीवन पद्धति भी अपना ली तथा रचनात्मक कार्यों में सदैव सहयोग किया। इनमें सरला बेन तथा मीरा बेन जैसे नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे हैं। इस प्रकार देखा जाए तो महिलाओं के प्रति गांधी जी का सकारात्मक दृष्टिकोण सदैव रहा।

महात्मा गांधी के शिक्षा संबधी विचार वर्तमान शिक्षा में अत्यंत उपयोगी बनते जा रहे हैं। आधुनिक भारत के निर्माण में बापू का बहुआयामी योगदान रहा है। शिक्षा, इतिहास, राजनीति, संस्कृति, नैतिक मूल्य, अर्थ आदि सभी क्षेत्रों में बापू के विचार महत्वपूर्ण हैं। उनकी शिक्षा संबंधी विचारधारा उनकी नैतिकता तथा स्वावलंबन संबंधी सिद्धांतों पर आधारित रही। उन्होंने सदैव आचरण पर आधारित शिक्षा को महत्व दिया। वह सदैव मानते रहे कि शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो इंसान को अच्छाई और बुराई का ज्ञान दे सके तथा उसे नीतिवान बनाए। वह यह भी मानते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसको प्राप्त कर मनुष्य का चहुँमुखी विकास हो। अखिल भारतीय स्तर पर भाषा एकीकरण के लिए उन्होंने कक्षा 7 में हिंदी भाषा में ही शिक्षा देने की सिफारिश की। किताबी शिक्षा को इतना महत्व ना देकर उन्होंने कौशल को अधिक महत्व दिया और शिक्षा को व्यवसाय तथा स्वावलंबन का आधार माना। मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि आज की जो शिक्षा प्रणाली है वही भारतीय समाज की समस्याओं की मूल जड़ है क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में भाई भतीजावाद, स्वार्थी प्रवृत्ति, नैतिक मूल्यों का हनन, शिक्षा का बाजारीकरण बड़े पैमाने पर हो रहा है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रति लोगों का मोह आज भी बरकरार है जिसके कारण समाज में मातृभाषा का महत्व कम हो रहा है और लोग दिखावा करते हुए बुनियादी शिक्षा में अंग्रेजी को महत्व दे रहे हैं जो कि बिल्कुल अप्रासंगिक है। मैं पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के शिक्षा संबंधी विचार से अपना कथन समाप्त करना चाहूँगी- "शिक्षा मानवों को बंधनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है।"

– एन. 9/87, लेन न. 2, प्लॉट न.ं डी-142, जानकी नगर, काकरमाता, वाराणसी-221109

❑❑❑

गांधी के एकादश व्रत और सामाजिक सरोकार

प्रो. निर्मला एस. मौर्य

गांधी एक नाम नहीं एक संस्था है, एक दर्शन है, एक समाज है। मैं अपनी ही कुछ पंक्तियों से अपनी बात कहना चाहूँगी ...

सही है छूट जाता है बहुत कुछ जीवन में पीछे
धूल भरी पगडंडिया
ऊबड़-खाबड़ रास्ते, नाते रिश्ते
सही है
छूट जाता है बहुत कुछ जीवन में
वह खुशियाँ छूट जाती हैं जिन्हें
नहीं लौटा सकता पैसों का अंबार
वह संवेदनाएँ छूट जाती हैं जिन्हें
नहीं लौटा सकता किसी का दुलार
गांधी बरगद की ढाल थे, सुरक्षा का अहसास दिलाते थे
सही है अब तो ठूंठ उग आए हैं समाज में
जीवन में अब उन पर नहीं चला जाता नंगे पाँव
सही है छूट जाता है बहुत कुछ जीवन में .....
मुट्ठी भर सपने, छोटी - छोटी खुशियाँ,
सुरक्षा के अहसास, यादों का रेला
सही है छूट जाता है बहुत कुछ पीछे

2 अक्तूबर 1869 में जन्मे मोहनदास करमचंद गांधी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख राजनैतिक और आध्यात्मिक नेता रहे। उन्होने सत्याग्रह जिसे सविनय अवज्ञा भी कहा जाता है , के माध्यम से अत्याचार का प्रतिकार किया। उन्होने अपने सत्याग्रह की नींव अहिंसा के सिद्धांत पर रखी और भारत को आजादी दिला कर जनता को नागरिक अधिकारों के लिए प्रेरित किया। पूरी दुनिया उन्हें महात्मा गांधी के नाम से जानती है। संस्कृत में महात्मा अर्थात महान आत्मा एक सम्मान सूचक शब्द है। गांधी जी को महात्मा के नाम से सबसे पहले संबोधन देने वाले राजवैद्य जीवराम कालिदास थे जिन्होंने 1915 में उन्हें महात्मा के नाम से पुकारा। गुजराती में पिता को बापू कहा जाता है, सुभाष चंद्र बोस ने 1944 में रंगून रेडियो से गांधी जी के नाम जारी प्रसारण में उन्हें राष्ट्रपिता कहकर संबोधन दिया और आजाद हिंद फौज के सैनिकों के लिए उनका आशीर्वाद मांगा

2 अक्तूबर को उनका जन्मदिन गांधी जयंती के रूप में और पूरे विश्व में अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जाता है। 30 जनवरी 1948 में 78 वर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ। राष्ट्रपिता, बापू, महात्मा,गांधी आदि अनेक नामों से पुकारे जाने वाले गांधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े रहे। वह दक्षिण अफ्रीका में रहे। कहते हैं जब मानव के जीवन में कठिनाइयां आती हैं तो वह संघर्ष करता है, बापू ने दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भारतीय समुदाय के नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष किया, सत्याग्रह किया और जब वह 1915 में भारत लौटे तो यहाँ के किसानों, मजदूरों और श्रमिकों को उनके अधिकारों के लिए आवाज उठाने हेतु एकजुट किया। वह देश के हालत से दुखी थे। महिलाओं की स्थिति उन्हें द्रवित कर देती थी, यही कारण था देशभर में गरीबी से राहत दिलाने, महिलाओं के अधिकारों का विस्तार करने, अस्पृश्यता का विरोध, स्वराज की प्राप्ति, नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आंदोलन जैसे कार्यक्रमों से जुड़े। एक बात उनमें विशेष थी कि सभी परिस्थितियों में उन्होंने सत्य और अहिंसा का रास्ता नहीं छोड़ा। इनका पालन करने के लिए समाज को संदेश दिया। साबरमती आश्रम में अपना जीवन गुजारते हुए उन्होंने चरखे पर सूत कात कर जो

वस्त्र बनाए वही पहने। सदैव शाकाहारी भोजन किया और लंबे - लंबे उपवास रखे। बापू की दृष्टि में व्रत का अर्थ है 'अटल निश्चय'। मानव विकास के लिए व्रत आवश्यक है।

गांधी जी पर भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दर्शनों का प्रभाव पड़ा और इसी के आधार पर उन्होंने नैतिक सिद्धांत बनाए। यह नैतिक सिद्धांत सामाजिक सरोकारों से जुड़े हुए हैं, यही कारण है कि इन सिद्धांतों को अपने आपमें मोक्ष प्राप्ति रूपी उद्धार के साध्य - साधन के रूप में माना जाता है। ये ग्यारह नियम एकादश व्रत के नाम से जाने जाते हैं। जिस प्रकार मनुष्य व्रत रखता है, उपवास करता है और इस व्रत या उपवास के पीछे उसकी अपनी इच्छा पूर्ति की कामना रहती है किंतु गांधी के एकादश व्रत मनुष्य की मोक्ष प्राप्ति के लिए ग्यारह व्रतों को साधन माना है। सामान्यतया यह माना जाता है कि यदि लक्ष्य न्यायपूर्ण तथा शुभ है तो उसकी प्राप्ति के लिए शुभ अथवा अशुभ सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग करना उचित है परंतु गांधी ने साधन साध्य संबंधी इन विचारों को स्वीकार नहीं किया। उनका यह मानना था कि शुभ लक्ष्य के लिए शुभ साधनों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए इसीलिए दोनों का शुभ होना आवश्यक है। इसी विचारधारा के आधार पर गांधी जी ने एकादश व्रत की व्याख्या करते हुए उन्हें मोक्ष प्राप्ति के साधनों के रूप में स्वीकार किया। कहते हैं सत्य अहिंसा परमो धर्मः। गांधी के एकादश व्रत समाज से गहरा संबंध रखते है .. सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता निवारण, शारीरिक श्रम, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी आदि व्रत अपनाकर मनुष्य और समाज शांति और सम्मान से जीवन की कठिन डगर को सरलता से पार कर सकता है। अब समय बड़ी तेजी से बदल रहा है, आज का मानव भाग रहा है, उसे लगता है कि वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करेगा किंतु लक्ष्य कहीं पीछे छूट जाता है और वह भागता जाता है बस भागता ही जाता है। इन विषम परिस्थितियों में गांधी के व्रत और सिद्धांत मन में एक नई आशा जगाते हैं। मानव के जीवन को सुंदर बनाने के लिए सत्यम शिवम सुंदरम की कल्पना की गयी है। सत्य ही शिव है और शिव हमेशा सौंदर्य के प्रतीक हैं। हम लोक मंगलकारी शिव की कल्पना करें - पालथी लगा कर वाघ चर्म पर बैठे शिव के गले में सर्प, भाल पर तीसरा नेत्र, जटाओं में उतरती गंगा और सुशोभित चंद्रमा। सर्प कुटिलता का प्रतीक है तो चंद्रमा शीतलता का और गंगा पावनता की अर्थात अमंगल पर मंगल की विजय, यही शिव गांधी जी के सत्य में प्रतिबिंबित होते हैं। इन तीनों का सम्मिलन ही जीवन को औदार्य से भर देता है। गांधी जी ने सत्य को परमेश्वर का रूप माना है। उनका कहना था यदि मनुष्य में सत्य का आग्रह हो, उसके मन में सत्य विचार हों, वाणी में सत्य बसता हो, कर्म सत्य से परिपूर्ण हों तो उसका जीवन सफल है, जहाँ सत्य है वही शुद्ध ज्ञान है और जहाँ शुद्ध ज्ञान है वही आनंद हो सकता है, यह बापू का मानना था। सत्य हमेशा तथ्यों से जुड़े होते हैं, तथ्य साध्य हैं तो सत्य साधन हैं। कबीर भी तो मनुष्य का ध्यान सत्य की ओर आकृष्ट करते हैं और कहते हैं . ... मूंड मुंडाए हरि मिले, ते सब कोई लेय मुड़ाय। बार-बार के मूडते, भेड़ न बैकुंठ जाया। सही है हिंदू समाज अनेक भ्रांतियों में जी रहा था। कबीर और गांधी जैसे संतों ने समाज को अंधविश्वासों से छुटकारा दिलाते हुए सत्य की राह दिखाई। गांधी जी मानते हैं सत्य के अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म नहीं होता। उन्होंने सत्य को साधन मानकर अन्य सभी व्रतों को उसका साधक माना है। गांधी जी की दृष्टि में सत्य मानव के हृदय में सात्विकता की भावना जगाने के साथ-साथ उसमें दृढ़ संकल्प और निष्ठा जगाता है। मनुष्य किसी भी स्थिति में हो उसे अधिक से अधिक सत्य का प्रयोग करना चाहिए। सत्य सेतु है, समाज और संस्कृति का वाहक है, जब समाज समय के साथ परिवर्तित होता है तो सत्य की स्थितियाँ भी थोड़ी बदल जाती हैं। समाज में रहने वाले मनुष्य को सद्मार्ग पर ले जाने का कार्य सत्य के द्वारा ही संभव है। सत्य की एक बानगी मेरे शब्दों में ....

सत्य भावनाओं का नाम है,
सत्य संवेदनाओं का नाम है।
सत्य पीयूष वर्षा है शब्दों की,
सत्य ज्वाला है आग की
सत्य मन को धीरे - धीरे स्पर्श करता है प्राणों में बस जाता है
मन के बंद कपाट खोल देता है सत्य!!!!!!

सत्य वह धर्म है जो हमेशा समाज और मनुष्य में संस्कारों के बीज बोता है। क्या आपने कभी ओस की बूंदें देखी हैं शीशे सी चमकती हैं, धर्म यही ओस की बूंद है। भले ही संस्कृति और मानवता की बात बापू ने की जैसे खेती में बीज तैयार करते हैं, बुवाई होती है, रोपाई-सिंचाई, गुड़ाई आदि अनेक प्रक्रियाओं से होकर फसल तैयार होती है उसी तरह धर्म भी एक लंबी

प्रक्रिया है यह मानव जीवन का आधार है। मनुष्य समाज का अंग है उसकी दृष्टि को शक्ति देता है। सत्य समाज को यह बताता है कि कैसे उसे संस्कारों की तुलसी बनकर मन रूपी आंगन में बस जाना है। सत्य हृदय में आशा के दीप जलाता है, मानवता की शिक्षा देता है, विश्व बंधुत्व की भावना का पाठ पढ़ाता है। समय की मांग जैसी हो सत्य का प्रयोग वैसा ही हो तभी यह अपने लक्ष्य की पूर्ति करेगा। गांधी जी ने सत्य को एक व्रत के रूप में मात्र नहीं लिया बल्कि अपने जीवन में पग - पग पर सत्य को अपनाया, सत्य को अनुभव किया, सत्य को अपने जीवन में उतारा और तब उसे समाज के लिए उपयोगी माना। कई परिस्थितियाँ ऐसी हैं जब वह असत्य बोल कर बच सकते थे किंतु उन्होंने सत्य का सहारा लेते हुए सदैव अपनी बातें रखीं। गांधी जी ने अपने जीवन में 16 आदर्शों को विशेष महत्व दिया किंतु अपने जीवन में उन्होंने 3 सूत्रों को विशेष महत्व दिया। पहला - झाड़ू के सहारे सामाजिक गंदगी को दूर करना दूसरा - एकजुटता अर्थात् सामूहिक प्रार्थना पर बल देना और तीसरा - चरखा जिसे उन्होंने एकता और आत्मनिर्भरता का प्रतीक माना। वह सदैव सत्य के मार्ग पर चले और सत्याग्रह की नींव रखी। जीवन में कई मोड़ आए, संघर्ष और कठिनाइयां आई किंतु वह सत्य के मार्ग पर डटे रहे। वह हर धर्म और जाति से जुड़े, उनके प्रति आस्था रखी, त्याग को जीवन में सदा महत्व दिया। सादा जीवन उच्च विचार उनके जीवन के मूल मंत्र रहे। गांधी जी सच्चे मानवतावादी रहे वह सच्चे अर्थो में योद्धा थे, भले ही उनके पास ना बम था ना तलवार और ना ही कोई अस्त्र किंतु सत्य को हथियार बनाकर उन्होंने जीवन की हर लड़ाई जीती। गांधी जी की दृष्टि में जो कुछ अशुभ है, असुंदर है, अशिव है, असत्य है वह सब अनैतिक है जो शुभ है जो सत्य है सुंदर है शिव है वही नैतिक है। दुनिया के दिलों पर राज करने वाले बापू ईश्वर और उसकी सत्यता पर अटूट विश्वास रखते थे। उनका मानना था सच्चे मन से की गई प्रार्थना हमारे जीवन में आने वाली सभी कठिनाइयों को दूर कर सकती है। गांधी जी ईश्वर को सत चित आनंद की संज्ञा देते थे क्योंकि उसमें स्वयं सत्य का निवास है। उन्होंने जीवनपर्यंत सत्य को सर्वोपरि माना। वह अपनी आत्मकथा में कहते हैं जब मैं निराश होता हूँ तब मैं याद करता हूँ कि इतिहास सत्य का मार्ग होता है किंतु प्रेम इसे सदैव जीत लेता है, यहाँ अत्याचारी और हत्यारे भी हुए हैं। वह कुछ समय के लिए अपराजेय लगते हैं किंतु अंत में उनका पतन भी होता है। इसका सदैव विचार करें मरने के लिए मेरे पास बहुत से कारण हैं किंतु मेरे पास किसी को मारने का कोई भी कारण नहीं है। उनकी जीवन दृष्टि संपूर्ण विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती रही है और सदैव करती रहेगी भले ही वह हमारे बीच नहीं हैं किंतु उनकी प्रेरणा और उनके द्वारा दिखाए गए सत्य के मार्ग को अपना कर मानव और समाज सदैव गतिमान रह सकता है। आज 21वीं सदी में गांधी के सत्य की सही अर्थों में आवश्यकता है इससे हर कोई सहमत होगा।

सत्य की तरह अहिंसा गांधी जी के जीवन का मूल मंत्र रहा है। क्या केवल जीवों को मारना ही हिंसा है और उन्हें ना मारना अहिंसा है। नहीं मैं इसे नहीं मानती मेंरा मानना है कि यदि हम किसी का मानसिक शोषण करते हैं, मानसिक यंत्रणा देते हैं वह किसी हिंसा से कम नहीं। मानव को ऐसी हिंसा से बचना चाहिए। गांधी जी का यह भी मानना था कि जो हम पर हिंसा करे उसका उचित जवाब देना चाहिए यदि कोई सर्प हमें काट ले तो उस सर्प को उचित सजा मिलनी चाहिए उसे यूं ही छोड़ देना मूर्खता होगी। अहिंसा को विशेष महत्व दिया है क्योकि इसका पालन किए बिना अन्य व्रतों का पालन करना लगभग असंभव है। गांधी जी मानते हैं कि केवल किसी की हत्या ना करना ही अहिंसा नहीं, काम-क्रोध वश अथवा स्वार्थ पूर्ति के लिए किसी प्राणी को कष्ट पहुंचाना, उसे घायल करना भी हिंसा है और ऐसा ना करना अहिंसा है। मनुष्य को सभी के प्रति दया, प्रेम, करुणा, सहानुभूति की भावना रखनी चाहिए; जब मनुष्य मानवतावादी दृष्टिकोण रखेगा तभी वह अहिंसक दृष्टि भी रखेगा। गांधी जी ने अनुभव और विवेक के आधार पर सत्य और अहिंसा को परखा। 2 अक्तूबर को विश्व अहिंसा दिवस के रूप में मनाने की घोषणा संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई। आज विश्व विनाश के ज्वालामुखी पर खड़ा है इससे बचना हो तो गांधी जी का दर्शन पर्याप्त है। गांधी जी के महत्व को देखते हुए लॉर्ड माउंटबेटन ने कहा था कि जो काम 50000 हथियारबंद सेना नहीं कर सकी थी वह गांधी जी ने कर दिया। वह अकेले ही एक पूरी सेना हैं, हिंसा फैली हुई है, ना सत्य दिखाई देता है और ना प्रेम; यह दूर-दूर तक गायब है। क्या ऐसा नहीं है कि यदि आज के समाज और मनुष्य के दुखों को दूर करना हो तो गांधी दर्शन और एकादश व्रत ही इसकी औषधि हैं। हम सभी जानते हैं अहिंसा को सामान्य रूप में हिंसा न करने के रूप में जाना जाता है,

किसी भी प्राणी को मनसा-वाचा-कर्मणा से कोई नुकसान ना पहुँचाएँ और किसी के मन को दुख ना दें, किसी का अहित ना सोचें और कटु वाणी ना बोलें तो यही अहिंसा का सही रूप है। हिंदू धर्म और जैन धर्म में अहिंसा का बड़ा महत्व है इसीलिए तो जैन धर्म के मूल मंत्र के रूप में अहिंसा परमो धर्मः अर्थात् अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म माना गया है। गांधी जी द्वारा चलाया गया भारत की आजादी का आंदोलन अहिंसात्मक था। जैन धर्म में सब जीवों के प्रति संयम पूर्ण व्यवहार अहिंसा है। अहिंसा के दो रूप होते हैं निषेधात्मक और विध्यात्मक अहिंसा है। राग-द्वेष की प्रवृत्ति ना रखना, प्राण साधना करना निषेधात्मक अहिंसा है। अच्छी प्रवृत्ति रखना, अध्यात्म सेवा, ज्ञान चर्चा, स्वाध्याय, उपदेश आदि विध्यात्मक अहिंसा है। निषेधात्मक अहिंसा में केवल हिंसा का वर्जन होता है निषेध में प्रवृत्ति और प्रवृत्ति में निषेध होता है। आत्मा की अशुद्ध परिणति मात्र हिंसा है। इसके विषय में आचार्य अमृत चंद्र कहते हैं - असत्य आदि सभी विकार आत्म परिणति को बिगाड़ने वाले हैं, इसलिए वह सब भी हिंसा हैं; इस तरह राग-द्वेष का प्रादुर्भाव हिंसा है। हिंसा मात्र से ही पाप कर्म का बंधन होता है। हिंसा के प्रकार भले ही ना हों किंतु उसके कारण अनेक होते हैं। कोई जान बूझ कर हिंसा करता है तो कोई अनजाने में हिंसा करता है; कोई प्रयोग के कारण हिंसा करता है तो कोई बिना प्रयोजन ही हिंसा करता है। सूत्र प्रसंग में हिंसा के पाँच समाधान बताए गए हैं - अर्थदंड, अनर्थ दंड, हिंसा दंड, दृष्टि विपर्यास दंड आदि। बौद्ध और ईसाई धर्मों में भी अहिंसा को बड़ा ही महत्व दिया गया है इस प्रकार हर संस्कृति और धर्म में अहिंसा को श्रेष्ठ माना गया है। गांधी जी ने अपने 11 व्रतों में इसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वे मानते थे कि अहिंसा का विज्ञान अकेले ही किसी व्यक्ति को शुद्ध लोकतंत्र के मार्ग की ओर ले जा सकता है और व्यक्तिवादिता वाले देश इसका कभी भी अभ्यास नहीं कर सकते हैं। ऐसे किसी देश अथवा समूह जिसने अहिंसा को अपनी अंतिम नीति बना लिया है उसे परमाणु बम भी अपना दास नहीं बना सकता है। उस देश में अहिंसा का स्तर खुशी-खुशी गुजरता है तब वह प्राकृतिक तौर पर इतना अधिक बढ़ जाता है कि उसे सार्वभौमिक आदर मिलने लगता है। वह यह भी मानते हैं यहाँ डरपोक और हिंसा में से किसी एक को चुनना हो तो वह हिंसा के पक्ष में अपनी राय देंगे

गांधी जी का तीसरा व्रत बह्मचर्य है। उपनिषदों, गीता आदि में मनुष्य को बार - बार आत्म संयम एवं इंद्रिय शक्ति पर नियंत्रण रखने का संदेश दिया गया है।

गांधी जी भी कहते हैं कि -

'बह्मचर्य का पूर्ण अर्थ है ब्रह्म की खोज, ब्रह्म की खोज तभी हो सकती है जब मनुष्य अपनी इंद्रियों पर काबू करें। मनुष्य को इसके लिए मनसा वाचा कर्मणा का पालन करना होगा। इस शब्द का अर्थ है सत्य का आचरण करना और इंद्रियों का निग्रह करना। गांधी जी ने ब्रह्मचर्य का जो अर्थ लिया वह भारतीय ज्ञान परंपरा से बिल्कुल अलग है। किसी का आजीवन ब्रह्मचारी रहना अथवा किसी गृहस्थ का ब्रह्मचारी होना जैसी बातें भारतीय परंपरा में नहीं हैं। गांधी प्रत्येक व्यक्ति को गुण - भाव - प्रवृति में समान मान कर चलते हैं। गांधी जी ने ब्रह्मचर्य पर लेख लिखे और अनेक प्रयोग किये। गांधी की दृष्टि में ब्रह्मचर्य के संपूर्ण पालन का अर्थ है ब्रह्म दर्शन, उनका मानना है कि जैसे-जैसे उन्हें अनुभव मिलता गया वैसे-वैसे वह ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ समझते गए।

गांधी जी का मानना था कि यदि स्वाद को जीत लिया जाए तो ब्रह्मचर्य का पालन बहुत सरल हो जाता है। उन्होंने ब्रह्मचर्य से संबंधित अनेकों प्रयोग किए। उन्होंने सन् 1906 में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था जो उनके लिए बहुत कठिन सिद्ध हुआ ऐसा उनका मानना था। इस व्रत को लेकर गांधी जी के अनेक विचार मिलते हैं जो बड़े-बड़े लेख के रूप में लिखे गए हैं। वह कहते हैं कि ईश्वर साक्षात्कार के लिए जो लोग मेरी व्याख्या वाले ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं यदि वह अपने प्रयत्न के साथ ही ईश्वर पर श्रद्धा रखने वाले हों तो उनके निराशा का कोई कारण नहीं रहेगा। जिनके मन के विषय तो शांत हो जाते हैं पर उनकी वासना का शमन नहीं होता तब ऐसी स्थिति में ईश्वर दर्शन से वासना भी शांत हो जाती है। आज समाज जिस रास्ते पर चल रहा है उसे त्यागने की आवश्यकता है और उसके लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक हो जाता है क्योंकि ब्रह्मचर्य का अर्थ ब्रह्मचारी बनना नहीं है बल्कि ब्रह्मचर्य एक अनुशासन है जो मनुष्य को समाज में रहने लायक बनाता है और अच्छा जीवन जीने की राह दिखाता है। बापू के विचारों पर मेरी कुछ पक्तियाँ देखें

---- जिंदगी धूप का एक टुकड़ा है
उस टुकड़े को सुख से जी सको तो अवश्य जियो
अन्यथा
दूसरों को जीने दो।

जिंदगी नंगी पहाड़ियों का खुरदुरापन है
उसे ढाँप सको तो अवश्य ढाँपो
अन्यथा
दूसरो को ढांपने दो।
जिंदगी सतरंगी सपनों की मंजिल है
उसे पा सको तो अवश्य पाओ
अन्यथा
दूसरों को पाने दो।
जिंदगी धूप का एक टुकड़ा है
उस टुकड़े को सुख से जी सको तो अवश्य जियो
अन्यथा
दूसरों को जीने दो

मेरी यह पंक्तियाँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि अब दुनिया में लोग अपनी जिंदगी तो नहीं जीते बल्कि दूसरे की जिंदगी में ज्यादा ताक - झांक करने की प्रवृत्ति रखते हैं। यह एक प्रकार की चोरी है गांधी जी का चौथा व्रत अस्तेय कहलाता है। अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। मनुष्य को विचारों और वस्तुओं दोनों की चोरी नहीं करनी चाहिए किंतु आज वस्तुओं और विचारों की भरपूर चोरी हो रही है इससे हम सब अनजान नहीं हैं, जब हम दूसरों के विचारों की चोरी करने लगते हैं तो भ्रष्टाचार की भावना पनपने लगती है। अस्तेय के संबंध में गांधी के विचार मानवतावादी विचारधारा से परिपूर्ण हैं, जब दूसरे की वस्तु को उसकी इज़ाजत के बिना ले लिया जाता है तो वह चोरी ही कहलाता है किंतु मनुष्य अपनी कम - से - कम जरूरत के अलावा भी जो कुछ संग्रह करता है वह भी चोरी ही कहलाता है। आज यदि थोड़ी सी भी समस्या उत्पन्न हो जाती है तो लोग चीजों का संग्रह शुरू कर देते हैं; मौका पड़े तो चोरी भी कर लेते हैं। गांधी जी का मानना है कि अस्तेय और अपरिग्रह मन की स्थितियाँ है सब के लिए इतनी बारीकी से उसका पालन करना कठिन है पर जैसे - जैसे मनुष्य अपने जीवन में अपनी आवश्यकताएँ घटाता जाता है वैसे-वैसे अस्तेय और अपरिग्रह की गहराई में पहुँच जाता है। आज समाज में गांधी के इस व्रत की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि इसको अपनाकर आज का मनुष्य और समाज शांतिपूर्वक अच्छी जिंदगी जी सकेगा।

अपरिग्रह का शाब्दिक अर्थ है व्यर्थ वस्तुओं का संग्रह। जीवन में जो वस्तुएँ हमारे उपयोग में आती हैं वह हमारे लिए मूल्यवान हैं बाकी व्यर्थ। गांधी जी के अनुसार मनुष्य को अपनी आवश्यकता के अनुसार ही वस्तुओं का संग्रह करना चाहिए। यदि वह किसी वस्तु के पीछे भागेगा और ना मिलने पर उसे कष्ट भी होगा तब हास्य की स्थिति बनेगी, मनुष्य को सादा जीवन और उच्च विचार की भावना अपनानी चाहिए और यह तभी संभव है जब वह व्यर्थ वस्तुओं का संग्रह करना छोड़ देगा। अस्तेय और अपरिग्रह दोनों का गहरा संबंध है और दोनों स्थितियां मानव जीवन में साथ - साथ चलती हैं, जिस प्रकार चोरी करना पाप है उसी प्रकार जरूरत से ज्यादा चीजों का संग्रह भी पाप है। अनेक प्रकार की वस्तुएं जो रोजमर्रा की जिंदगी में हमारे लिए उपयोगी होती हैं यदि हम उन्हें आवश्यकता से अधिक इकट्ठी कर लेते हैं तो यह अनुचित होता है। उदाहरण के लिए यदि एक वस्तु से हमारा काम चलता हो तो उसे एक से ज्यादा रखना व्यर्थ होगा। गांधी जी अपरिग्रह में विश्वास करते थे उनका जीवन स्वयं इसका उदाहरण है। आस्वाद का ब्रह्मचर्य से अनिवार्यत: संबंध है। इससे मनुष्य अपने ऊपर आत्म नियंत्रण रख पाता है और वह किसी भी चीज का आदी नहीं बनेगा। उसका स्वास्थ्य भी खराब नहीं होगा, इस विचार को स्वास्थ्य व्रत के नाम से भी जाना जाता है। गांधी जी ने सदैव स्वास्थ्य की चिंता की; वह औषधियों का विरोध करते थे और प्राकृतिक चिकित्सा पर विश्वास करते थे। वह हमेशा अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ते हुए उनमें बतलाए गए नियमों का पालन करते थे। जल चिकित्सा, योग आदि उनके जीवन के अभिन्न अंग थे। आज विश्व में मधुमेह जैसी बीमारी बढ़ती जा रही है जिसका मूल कारण स्वाद है। तरह - तरह के जंक फूड हमारी जिंदगी का हिस्सा बनते जा रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी और बच्चे इसकी लपेट में ज्यादा हैं, यही कारण है कि वह अनेक प्रकार की बीमारियों से घिरते जा रहे हैं; एक ही स्थान पर बैठे रहने की प्रवृत्ति बढ़ गई है, चलना फिरना नहीं होता, आउटडोर गेम्स समाप्त हो रहे हैं इंडोर गेम्स बढ़ते जा रहे हैं। TV देखने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है यही नहीं हमेशा कुछ ना कुछ खाते रहने की कमजोरियां लोगों में दिखाई देती हैं जिससे मोटापा बढ़ रहा है और अनेक प्रकार की बीमारियां घर कर रही हैं; ऐसी स्थिति में गांधी जी के अनुसार मनुष्य को हमेशा तीन चीजों से डरना चाहिए दैहिक-दैविक-भौतिक तापा अर्थात् मनुष्य को शारीरिक कष्टों से डरना चाहिए, ईश्वर के द्वारा दिए गए ताप से डरना चाहिए जैसे प्रलय - सूखा - बाढ़

आदि। इनसे भय ना हो तो यह स्थिति गांधी जी के शब्दों में अभय कहलाती है। क्या आप सभी भीड़ से विपरीत दिशा में चले हैं? शायद नहीं क्योंकि आपके मन में एक डर है जो आपको ऐसा करने से रोकता है पर शांति की चाह में बुराई नहीं। क्या हम मंदिर में अपने और अपने परिवार के लिए ईश्वर से अभयदान नहीं मांगते। अभय राष्ट्र की सबसे बड़ी निधि है और उसका अभिप्राय केवल शारीरिक साहस से नहीं बल्कि मानसिक निर्भयता से भी है। चाणक्य ने भी कहा था जन नेताओं का कर्तव्य जनता को अभयदान देना है। इसी तरह सांसारिक कष्टों से भी डरना चाहिए यदि मनुष्य इन तीनों तापों से ऊपर उठ जाता है तो उसे कभी भी जीवन में कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा। हम जो प्रकृति को देते हैं उसे कई गुना बनाकर प्रकृति हमें लौटाती है। आज उत्तराखंड, बिहार, आसाम, ओड़िशा, केरल आदि राज्यों में जो बाढ़ की स्थितियाँ पैदा हो रही हैं क्या उसके जिम्मेदार हम स्वयं नहीं हैं? हमने जो बोया है वही काट रहे हैं। आज जिनका भी जिस स्तर पर भी शोषण हो रहा है यदि उन्हें अभयदान सचमुच दिया जाए तो हमारा समाज ही नहीं संपूर्ण विश्व एक नेक रास्ते पर अपना कदम बढ़ाएगा। आज के समाज और राष्ट्र को गांधी के इस अभय दान की अधिक आवश्यकता है। अभय मानव हृदय की एक ऐसी अवस्था है जिससे जीवन की सक्रियता कभी बाधित नहीं होती, यह एक ऐसा हथियार है जिसके पास रहने से मनुष्य घोर संकट में भी कभी निराश नहीं होता; इसे अपने साथ रखकर हर मनुष्य कभी भी असत्य, अन्याय आदि की शक्ति से पराजित होकर अपने जीवन का मार्ग नहीं बदलता। केवल यही नहीं अभय प्रत्येक मानव व प्राणी के हृदय की आत्मचेतना है। यदि इसे आत्म विद्युत का नाम दिया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अस्पृश्यता निवारण गांधी का एक महत्वपूर्ण व्रत है। उनके द्वारा दिया गया हरिजन नाम इसका सबसे श्रेष्ठ उदाहरण है। कबीर ने भी जातिगत भेदभाव का विरोध किया है वह कहते हैं ----

जाति ने पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

कबीर का मानना था कि कोई भी धर्म हो, जाति हो सभी मनुष्य समान तत्वों से बने हैं। दोनों का कर्ता भी एक है और दोनों की राह भी एक है; भले ही हर जाति और धर्म अपनी अपनी बड़ाई करते हों फिर भी उन्हें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि उन सभी में एक समान रक्त प्रवाहित है। इस व्रत को स्पर्श व्रत के नाम से भी जाना जाता है। स्पर्श के आधार पर किसी भी व्यक्ति को ऊँचा या नीचा मानना घोर अज्ञानता है। हम सभी ईश्वर के अंश हैं। ऐसा व्यक्ति जो सच में ज्ञानी होगा वह इस प्रकार के भेदभाव को देख कर मन में दुख का अनुभव करेगा। अस्पृश्यता निवारण समाज सुधार एवं सर्वोदय समाज की नींव है। परस्पर प्रेम का प्रसार भी इसके द्वारा संभव है। आज के वैज्ञानिक युग में स्नेह, सम्मान और प्रेम की ही तो कमी होती जा रही है जबकि मानव जीवन ही प्रेम पर टिका है, यदि हम यह मानें कि गांधी जी के एकादश व्रत ऐसे दिव्य विमान हैं जिन पर चढ़कर मानवता, पृथ्वी पर बसे हुए आंनद निर्मित स्वर्ग की ओर प्रस्थान करती है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कायिकश्रम एक अन्य व्रत है जिसका शाब्दिक अर्थ है शारीरिक श्रम। मनुष्य को अपना काम स्वयं करना चाहिए तभी उसका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। मनुष्य में तभी आत्म सम्मान की भावना आएगी जब वह स्वयं अपने कार्य करने में विश्वास रखेगा। वर्तमान समय में शारीरिक श्रम के स्थान पर मानसिक श्रम अधिक हो रहा है जिसके फलस्वरूप शरीर में अनेक व्याधियाँ घर करती जा रही हैं। विश्व में लोगों का बहुत बड़ा प्रतिशत ऐसा भी है जिनमें विटामिन-डी की कमी हो रही है जिसका मूल कारण धूप में ना रहना है। बड़े सवेरे घर से काम पर निकल जाना, दिनभर एसी रूम में बैठे रहना, रात में घर आना यह सुनने में तो अच्छा लगता है किंतु मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसका बड़ा ख़राब असर पड़ रहा है। लोग स्वयं अपना कार्य नहीं करते नौकर - चाकर रखते हैं जिसके फलस्वरूप परिवार भी विघटित हो रहे हैं। बच्चों का लालन - पालन ठीक नहीं हो रहा है; केवल पैसा कमाना ही पर्याप्त नहीं होता पैसे को खर्च करने के लिए स्वास्थ्य भी अच्छा होना चाहिए जिसमें धीरे-धीरे कमी आती जा रही है, विशेषतया यह देखने में आ रहा है कि आज की युवा पीढ़ी अपने छोटे-मोटे कार्यों को करने में शर्म महसूस करती है। उन्हें स्वयं गांधी जी का जीवन देखना चाहिए कि किस प्रकार वह स्वयं अपने कार्य करते थे। चरखा चलाते थे, तकली काटते थे, स्वयं अपने हाथों से बुना हुआ कपड़ा पहनते थे। सादा जीवन और उच्च विचार पर विश्वास करते थे। हमारे देश के प्राचीन ऋषि भगवान से यह प्रार्थना करते

थे कि वह कर्म करते हुए 100 वर्ष तक जीवित रहें किंतु कर्महीन बनकर इस पृथ्वी का बोझ ना बनें। प्राचीन काल में शारीरिक श्रम पर ही वर्ण व्यवस्था खड़ी की गई थी। गांधी जी मानते हैं शरीर श्रम व्रत के अनुसार जब तक मनुष्य के तन रूपी घट में सांस है तब तक उन्हें श्रमनिष्ठ रहना चाहिए और यह तभी संभव है जब कि जीवन के उषा काल से ही हम श्रम के अभ्यासी बन जाएं। जवानी से ही श्रम व्रत का पालन करने वाला जीवन की शाम आ जाने पर भी काम में लगा रहता है और व्रत की कुछ भी परवाह न करने वाला प्राणी गीदड़ की तरह मोटा होने पर भी गद्दे पर पड़ा रहता है। भारतीय नौजवानों को श्रम का अभ्यास डालना चाहिए और राष्ट्र को समृद्धशील बनाना चाहिए। केवल शारीरिक श्रम ही नहीं मानसिक श्रम की भी उन्होंने बात की है। यही एक संदेश है जो आज की पीढ़ी को ग्रहण करना है जिसकी आज सही अर्थो में आवश्यकता है। गांधी जी के एक व्रत में सर्वधर्म समभाव तथा स्वदेशी प्रेम विशेष महत्व रखते हैं। उन्होंने मनुष्यों को सभी धर्मो को एक समान मानने को कहा है और सर्वधर्म का संदेश दिया है। वह सदैव मानते थे कि स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना चाहिए और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना चाहिए, जब व्यक्ति स्वदेशी वस्तुओं को अपनाएगा तभी उसमें देशभक्ति की भावना जागृत होगी। मनुष्य को तन - मन - धन से अपने राष्ट्र की निस्वार्थ भावना से सेवा करनी चाहिए। इसी सर्वधर्म समभाव के प्रतीक के रूप में गांधी जी के ही कथन को लिया जा सकता है जहाँ वह कहते हैं कि वैष्णव जन उन्हें ही कहना चाहिए जो दूसरे की पीड़ा को अच्छी तरह समझते हैं, यदि वर्तमान परिस्थितियों में गांधी जी के एकादश व्रतों को लिया जाए तो यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि उनका सामाजिक सरोकार बढ़ता ही जा रहा है। वैश्विक धरातल पर आज बेरोजगारी, महंगाई, हिंसा, संघर्ष, कुंठा, अकेलापन आदि व्याप्त हैं इसके मद्देनजर सामाजिक सरोकारों के धरातल पर यह 11 व्रत और अधिक प्रासंगिक बन गए हैं। आज पूरी दुनिया मंदी और तानाशाही के जाल में उलझी हुई है, ऐसी स्थितियों में यह आवश्यक बन जाता है कि आम आदमी अमन और चैन से रहे। पूरी दुनिया सुखी हो। युद्ध ना हों, बेरोजगारी खत्म हो; सब एक साथ मिलकर चलें। आज समाज के हर क्षेत्र में इन व्रतों की बड़ी शिद्दत से आवश्यकता महसूस की जा रही है। बापू को समर्पित मेरी ये पंक्तियाँ कि ----------

व्यक्ति कहीं जाता नहीं
वह रहता है यहीं हमारे आस - पास
कुछ शब्दों, कुछ सुर्ख़ियों में
कुछ स्मृतियों में ।।

– 95/1, थर्ड क्रॉस रोड, गिल नगर, चेन्नै-600094

❑❑❑

गांधी की राजनैतिक विचारधारा और धूमिल

डॉ. डॉली

राजनीति समाज की आँख है। समाज का ऐसा कौन सा पक्ष है जहाँ राजनीति नहीं है। वास्तव में राजनीति को अर्थ संकुचन के लिए नहीं बल्कि अर्थ विस्तार के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि धर्म, संस्कृति, अर्थ, समाज अर्थात् मानव जीवन का कोई भी पक्ष हो वहां राजनीति किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहती है। मेरी दो पंक्तियां हैं --- हम राह तका करते है,

गहरे अंधियारे को झेल कर
सुनहरी सुबह का इंतजार करते हैं
हम राह तका करते हैं
गुनगुनी धूप का
एक छोटा-सा टुकड़ा शायद ले आएगा
सुंदर-सा संदेशा
हम राह तका करते हैं।

भले ही बापू ने किसी भी प्रकार की मान्यताएँ या दर्शन नहीं दिए किंतु उन्होंने जो कुछ भी कहा वह अपने आप में दर्शन और व्रत के रूप में ढलते गए। उनके द्वारा दी गई आर्थिक और सामाजिक मान्यताएँ राजनैतिक व्यवस्था को जन्म देती हैं। राजनीति वास्तव में एक प्रकार का दर्शन है जिसमें स्वतंत्रता, न्याय, संपत्ति, अधिकार, कानून आदि अनेक प्रकार के प्रश्नों पर विचार किया जाता है। हम यह विचार बनाते हैं यह क्या है? इसकी क्या आवश्यकता है? कौन सी ऐसी वस्तु है जो सरकार को वैध बनाती है? किस प्रकार से मानव अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करनी है। इसमें सरकार का क्या योगदान है सरकार के प्रति नागरिकों के कर्तव्य क्या है? यदि सरकार गलत कर रही हो तो क्या उसे उखाड़ फेंकना है? जो जीवन में एक लक्ष्य को लेकर चलते हैं राजनीति उनके लिए जिज्ञासा का विषय होती है। मानव मन हमेशा बहुत कुछ जानने को जिज्ञासु रहता है और यही जिज्ञासा मानव तथा समाज के विकास का आधार भी बनती है। आज नए संदर्भों में राजनीति कई रूपों में हमारे सामने आ रही है। वास्तव में आज राजनीति स्वयं में शोध का विषय बनती जा रही है। मैं डॉक्टर निर्मला एस मौर्य की कुछ पंक्तियों से गांधी जी के राजनैतिक चिंतन को देते हुए उनके चिंतन के साथ धूमिल के राजनैतिक चिंतन को जोड़ना चाहूँगी। डॉ मौर्य कहती हैं ---

गांधी अच्छा हुआ नाथूराम ने तुम्हारा शिकार किया
क्योंकि
तब एक ही शिकारी था, अब शिकारियों की फौज है तुम क्या करते?
किससे - किससे लड़ते अच्छा हुआ तुम चले गए
गांधी जी अच्छा हुआ तुम अपने साथ ले गए अपने सिद्धांत वरना
तुम्हारे उन सिद्धांतों की रोज हत्या होती, शोषण उनका रोज किया जाता। होली उनकी रोज खेली जाती
गांधी अच्छा हुआ तुम चले गए

उपर्युक्त पंक्तियाँ हमें आज की राजनैतिक स्थितियों पर सोचने को विवश कर देती है। गांधी ने जिस रामराज्य की कल्पना की थी क्या इतने वर्षों बाद भी यह कल्पना साकार हो सकी है? हम सभी जानते हैं

ऐसा नहीं है। कवि धूमिल अपनी कविताओं में राजनैतिक भ्रष्ट व्यवस्था का चित्रण तो करते ही हैं साथ ही रामराज्य स्थापित ना होने की स्थितियों पर भी व्यंग्य करते हैं। महात्मा गांधी की आर्थिक - सामाजिक मान्यताएँ जैसी राजनैतिक व्यवस्था को जन्म देती हैं उनका चिंतन बहुआयामी है। भले ही राजनैतिक दर्शन पर उनकी कोई पुस्तक ना हो लेकिन मानव जीवन से संबंधित उन्होंने जो भी व्याख्याएँ की हैं उनमें कहीं ना कहीं राजनीति के विभिन्न रूप बिखरे पड़े हैं।

गांधी जी ने कभी भी अपने किसी भी विचार को एक सीमा में बांधकर नहीं रखना चाहा, वह बार - बार कहते थे मुझे ना कोई वाद चलाना है ना संप्रदाय, मैं तो एक सत्य को जानता हूँ और सत्य की बातें कहता हूँ और करता हूँ। वह कहते हैं - 'गांधी मर सकता है पर गांधीवाद जीवित रहेगा'। जिस तरह गांधी के राजनैतिक चिंतन में सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह और रामराज्य को विशेष महत्व मिला है उसी तरह कविवर धूमिल ने भी अपनी कविताओं में यह माना है कि राजनीति में जब तक तक सत्य - अहिंसा आदि जैसे भाव नहीं होंगे तब तक सच्ची राजनीति नहीं की जा सकती। धूमिल कहते हैं आजादी के इतने वर्षों बाद भी आम आदमी आजादी का मतलब नहीं समझ पाया है यदि समझने का प्रयास करें तो गालियों और गोलियों का सामना करना पड़ेगा। गांधी जी की तरह 'जनतंत्र' धूमिल का प्रिय शब्द है और उनकी राजनैतिक कविताओं में यह अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। कवि लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंदरूनी चरित्र को अच्छी तरह से समझ सके हैं। वह अच्छी तरह जानते हैं कि सत्ता, सांप्रदायिकता-युद्ध-आतंक पैदा कर आने लिए रास्ता बनाती है। 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह की एक कविता 'जनतंत्र के सूर्योदय में' वह राजनैतिक घटनाओं के चित्र बिंबित करते हैं -

रक्तपात कहीं नहीं होगा
सिर्फ एक पत्ती टूटेगी
एक कंधा झुक जाएगा
और वह आगे कहते हैं --
'अपने आप से सवाल करता हूँ
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है।

धूमिल की कविताओं में गांधी के राजनैतिक चिंतन का भी प्रभाव दिखाई देता है। शांतिपात कविता में बड़े ही संवेदनात्मक ढंग से वह भारत के बड़े - बड़े तथाकथित राजनेताओं और पूंजीवादियों की करतूतों पर व्यंग्य करते हैं --

मैंने गांधी के तीनों बंदरों की हत्या की है
देश - प्रेम की भट्ठी जलाकर
मैं अपनी ठंडी मांसपेशियों को विदेशी मुद्रा में ढाल रहा हूँ
फूट पड़ने के पहले अणुबम के मसौदे को बहसों की प्याली में उबाल रहा हूँ

कवि धूमिल की कविताएँ आत्म सजगता की कविता हैं जिनमें अनुभूति ही नहीं अनुभव और विचार भी बोलते हैं। वह राजनीति की विषम स्थितियों को सपाटबयानी में कह जाते हैं। जिन्होंने देश की आजादी के लिए प्राण न्योछावर किए उनके परिवारों को दुख के सिवा कुछ नहीं मिला। अब तो स्वतंत्रता का अर्थ ही बदल गया है। जनतंत्र के सूर्य बापू को एक राजनैतिक नेता समझा जाता है, जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न किया। एक राजनैतिक नेता के रूप में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है इसमें भी कोई संदेह नहीं है। वह समाज सुधारक, सत्यशोधक, आध्यात्मिक साधक और अर्थशास्त्री होने के साथ - साथ शिक्षाशास्त्री, लेखक और विचारक भी रहे; इन सभी खूबियों को हम धूमिल में भी देख सकते हैं। गांधी शांति में विश्वास करते थे किंतु धूमिल आक्रोश की बात करते हैं। एक बात गांधी जी में विशेष थी कि उनकी राजनैतिक शक्ति उनके आध्यात्मिक प्रयोगों से पैदा हुई थी। विश्व इतिहास में अहिंसा के सबसे बड़े अनुगामी गांधी जी माने जाते हैं। उन्होंने गौतम, महावीर, बुद्ध और ईसा मसीह के अहिंसा के सिद्धातों को अपने जीवन में उतारा; उनका यह मानना था कि अहिंसा के द्वारा राजनैतिक जीवन की कठिन से कठिन समस्याओं को हल किया जा सकता है। उन्होंने इसी के आधार पर राजनीति की विभिन्न समस्याओं से जूझने का संदेश मनुष्य को दिया और यही भावना धूमिल की कविताओं में दिखाई देती है। जिस प्रकार बापू युवाओं को लेकर चिंतित रहा करते थे उसी प्रकार धूमिल भी अपने मन की चिंता को यूं व्यक्त करते हैं --

युवकों को आत्महत्या के लिए रोजगार दफ्तर भेजकर

पंचवर्षीय योजनाओं की सख्त चट्टान को
कागज से काट रहा हूँ।

क्या यह पंक्तियाँ इस बात की ओर संकेत नहीं करती कि किस प्रकार राजनैतिक दल अपने स्वार्थ के लिए युवा पीढ़ी का फायदा उठाते हैं; युवा छात्र - छात्राएं राजनैतिक दलदल में फंस कर अपना सब कुछ गवाँ कर दिग्भ्रमित अवस्था में जीते हैं और जब जागते हैं तब सब कुछ उनके हाथ से निकल चुका होता है। गांधी जी नहीं चाहते थे कि आज की युवा पीढ़ी दिशाहीन हो और उनके भविष्य को आग के शोलों में झोंक दिया जाए। हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में जो घटनाएं घटित हुईं और उन्हें कैसे राजनैतिक रंग दिया गया यह किसी से छिपा नहीं है। आज यदि गांधी जिंदा होते तो उनका मन ऐसी स्थितियों को देखकर कितना द्रवित होता यह हम सभी जानते हैं। महात्मा गांधी ने हिंदी भाषा की बड़ी वकालत की और उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने का प्रयत्न किया जबकि स्वयं उनकी मातृभाषा गुजराती थी क्योंकि वह जानते थे कि किसी भी राष्ट्र का महत्व राष्ट्र की राष्ट्रभाषा से बनता है और हिंदी राष्ट्रभाषा बनने का गौरव रखती है किंतु भाषा के नाम पर होने वाली राजनीति गांधी के इन्हीं विचारों को शब्द देते हुए 'भाषा की रात' कविता में धूमिल भाषा की राजनीति को उजागर करते हैं --

और अब
वे लौटा रहे हैं उपाधियाँ और अलंकार।
यही नहीं वह आगे भी कहते हैं --
भाषा और भाषा के बीच की दरार में
उत्तर और दक्षिण की तरफ
फन पटकता हुआ एक दोमुंहा विषधर
रेंग रहा है
रोजी के नाम पर, रोटी के नाम पर
जगह - जगह जहर फेंक रहा है।

बापू कभी नहीं चाहते थे कि भाषा के नाम पर देश या राज्य बट जाएँ किंतु स्वार्थी राजनेता अपने लाभ के लिए भाषा को प्रांतीयता और रोटी से जोड़ देते हैं। देश की कई मूलभूत समस्याओं को सुलझाने में जब यह शासक वर्ग और नेता असफल हो जाते हैं तो आम आदमी का ध्यान अन्य समस्याओं की ओर उलझा देते हैं। देश को स्वतंत्र कराने में देशभक्तों ने उत्सर्ग भावना के साथ कई विदेशी वस्तुओं का परित्याग किया और उनकी होली भी जलाईं किंतु धर्म और सांप्रदायिकता के नाम पर आज के युवा देश की ही संपत्ति को नुकसान पहुँचा रहे हैं। गांधी जी ने अपने एकादश व्रत में एक व्रत देश प्रेम को भी माना है, उनका मानना था कि जब हम अपने देश से प्रेम करते हैं तब हम विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते हैं; यदि हम इतिहास को देखें स्पष्ट हो जाता है यथा कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस और गंगाधर तिलक जैसे राजनेता गरम दल के समर्थक थे और गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले आदि नरम दल के नेता थे; दोनों में भले ही वैचारिक मतभेद रहे हों किंतु सबसे पहले महात्मा गांधी को देश का पिता अर्थात राष्ट्रपिता कहकर संबोधन देने वाले सुभाष चंद्र बोस ही थे। उन्होंने स्वयं को गांधी जी का प्रिय शिष्य माना था; इसी तरह कविवर धूमिल आक्रोश के कवि हैं किंतु उनके मन में गांधी के प्रति जो आदर, समर्पण, भक्ति विद्यमान रही है ये सभी भाव उनकी कविताओं में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में अवश्य प्रतिबिंबित हुए हैं, चाहे उनके सभी सिद्धातों की बात हो चाहे उनके राजनैतिक विचारों की। धूमिल ने देशप्रेम की भावना को दिखावे का विषय नहीं बल्कि अनुभूति का विषय माना है हद तो तब होती है जब कुछ लोग देशभक्ति का मुखौटा लगाकर अपने स्वार्थ पूरे करते हैं। 'भाषा की रात' कविता में धूमिल इसी भावना को स्पष्ट करते हैं ---

अपने देश की मिट्टी को आँख की
पुतली समझता है, वरना रोटी के टुकड़े पर
किसी भी भाषा में देश का नाम लिखकर
खिला देने से
कोई देशभक्त नहीं होता है।
और वह आगे कहते हैं---
जिस पर मेरा जन्म खड़ा है
मेरे लिए मेरा देश
जितना बड़ा है, उतना बड़ा है।

धूमिल मानते हैं कि अब तो राजनीति लफंगों की मनपसंद जगह बन गई है। संसद में बैठकर सोना, मोबाइल पर अश्लील तस्वीरें और फिल्में देखना, चैटिंग करना सांसदों के लिए आम बात हो गई है; बापू ने कभी भी ऐसी राजनीति और ऐसे राजनेताओं की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की होगी, अब तो राजनीति में लोगों को नाटक के चरित्रों की तरह मनपसंद भूमिकाएँ अर्थात् पद बांट दिए जाते हैं। बार - बार जनतंत्र का नाम लेकर

हत्याएँ की जाती हैं फिर भी भेड़ियों की जुबान पर यह शब्द जिंदा रहता है वह कहते हैं ---

और हवा में एक चमकदार गोल शब्द
फेंक दिया है - जनतंत्र
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिंदा है।

कवि की यह पंक्तियाँ गांधी जी के ऊपर लिखी गई कविता सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की एक कविता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं ---

लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाए भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाए

बापू ने अपने जीवन में सदैव 5 वस्तुएँ धारण कीं - लाठी, चश्मा, छड़ी, लंगोटी और पाँव में पहनी जाने वाली खड़ाऊँ; उनकी वेशभूषा उनके त्याग से परिपूर्ण जीवन की ओर संकेत करती हैं; इन्हीं पाँच चीजों को केंद्र में रखकर सक्सेना जी ने 'पंचधातु' नाम से एक कविता लिखी जिसमें उन्होंने इस बात की ओर संकेत किया कि किस प्रकार राजनीति में गांधी जी के सिद्धांतों के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है? वह मानते हैं कि गांधी जी की लंगोटी उत्सव में अधिकारियों के बिल्ले बनाने के काम आ गई जिसके सहारे वह भीड़ से बचकर एक सम्मानित विशेष द्वार से कहीं आ जा सकते थे और लाठी को देखकर बिगड़े दिमाग की डगमगाती सत्ता आज भी चल रही है, अब हर कोई उनकी ऐनक लगाकर अंधों को करिश्मा दिखा रहा है; उनकी चट्टी गरीबी की चाँद गंजी करने के काम आ रही है और घड़ी देश की नब्ज की तरह बंद पड़ी है। कविवर धूमिल भी अपनी लंबी कविता 'पटकथा' में अपनी इसी वेदना को व्यक्त करते हैं। इस कविता में आम आदमी की व्यथा, मध्य वर्ग के आपराधिक चरित्र और तार तार होते हिंदुस्तान को बड़ी ही संवेदना के साथ अभिव्यक्ति मिली है ---

हाँ यह सही है कि कुर्सियां वही हैं
सिर्फ, टोपियाँ बदल गई हैं और
सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल - उछलकर, अपनी जगह बदल रहे हैं।

अब तो नए - नए नारे राजनीति में आ जाते हैं, मंत्री जब प्रजा के सामने आता है तो पहले से ज्यादा मुस्कुराकर नए - नए वादे करता है; यह तो उसी प्रकार है जैसे घोड़ा और घास। जिस जनतंत्र शब्द को बापू ने राजनीति में विशेष महत्व दिया उसी जनतंत्र को कवि धूमिल इन शब्दों में व्यक्त करते हैं ---

अखबारों की धूप और
वनस्पतियों के हरे मुहावरे
तुम्हें तसल्ली देंगे
और जलते हुए जनतंत्र के सूर्योदय में
शरीक होने के लिए।

कवि अपनी एक कविता 'राजकमल चौधरी के लिए' में कहते हैं --

आज़ादी इस दरिद्र परिवार की 20 साल 'बिटिया'
मासिक धर्म में डूबे हुए कुंवारेपन की आग से
अंधे अतीत और लंगड़े भविष्य की
चिलम भर रही है
वर्तमान की सतह पर।

रोटी जैसी बुनियादी समस्या आज भी भारत में व्याप्त है। बापू भारत के आमजन के लिए रोटी की समस्या हल करना चाहते थे, उनका मानना था कि रोटी के लिए शारीरिक श्रम आवश्यक है; जो आदमी शारीरिक श्रम नहीं करता उसे खाना खाने का अधिकार नहीं हैं। बाइबिल में यह कहा गया है कि तुझे पसीना बहाने पर ही रोटी मिलेगी, गांधी जी मानते थे कि जो बिना कर्म किए खाते हैं वह चोर हैं। ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि इसीलिए की है कि वह अपनी रोटी के लिए श्रम करे और पसीना बहाए, इसीलिए जो व्यक्ति एक मिनट भी बर्बाद करता है वह अपने पड़ोसियों पर भार है और ऐसा करना अहिंसा के प्रथम पड़ाव का उल्लंघन है। गांधी जी का मानना था कि मनुष्य को जीने के लिए कर्म करना आवश्यक है। पूंजी और श्रम के बीच विश्वव्यापी संघर्ष होते रहे हैं और गरीब अमीरों से ईर्ष्या करते रहे हैं। यदि सभी लोग रोटी के लिए श्रम करने लगें तो बड़े छोटे के भेदभाव मिट जाएंगे। ईश्वर कभी भी तात्कालिक आवश्यकता से अधिक मात्रा में भोजन की व्यवस्था नहीं करता यदि कोई व्यक्ति आवश्यकता से अधिक वस्तु का उपयोग करता हे तो वह अपने पड़ोसी को दरिद्र बनाता है। विश्व के अनेक भागों में लोग इसी कारण भूखे और असहाय रह जाते हैं क्योंकि हममें से कई लोग अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक मात्रा में वस्तुओं पर कब्जा कर लेते हैं। रोटी के लिए जो श्रम किया जाता है वह निश्चय ही समाज सेवा का

सर्वोत्तम रूप है और इससे अच्छा कुछ भी नहीं हो सकता; इस प्रकार गांधी जी ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए शारीरिक श्रम आवश्यक माना है और यह भी माना है कि इससे विश्व स्वर्ग बन जाएगा कविवर धूमिल अपनी एक कविता 'पटकथा' में कहते हैं --

आज मैं तुम्हें बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है। इस दुनिया में
भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क
रोटी है।

गांधी जी सदैव राजनीति में नैतिकता को विशेष महत्व देते थे किंतु धीरे - धीरे राजनीति में नैतिकहीनता का प्रवेश होता गया; इसी नैतिकहीनता और मूल्यविघटन को धूमिल अपनी अभिव्यक्ति देते हैं----

दिन की मुंडेर पर अंधकार में आधा
झुका सूरज
अपनी जांघों पर
रोशनी की गुलेल तोड़ रहा है।

किसी भी देश के समग्र विकास में राजनैतिक स्थितियों की बहुत बड़ी भूमिका होती है। महात्मा गांधी ने विदेशियों से देश को मुक्ति दिलाने के लिए स्वराज कार्यक्रम चलाया। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों पर लगाए गए नमक कर के विरोध में नमक सत्याग्रह आंदोलन चलाया और सन् 1942 में अंग्रेजों भारत छोड़ो आंदोलन छेड़ा तथा प्रसिद्धि प्राप्त की। दक्षिण अफ्रीका और भारत में कई बार उन्हें वर्षों तक जेल में भी रहना पड़ा किंतु वह राजनीति में सत्य अहिंसा, समन्वय, शांति, मानवतावाद, सच्ची राजनीति आदि की वकालत करते रहे। वर्तमान राजनैतिक स्थिति को देखकर कवि का मन दुखी हो जाता है और वह कहते हैं कि अब राजनैतिक चेहरे बड़े घिनौने लगते हैं अब तो केवल वोटों की ही राजनीति होती है। घर में कुछ खाना हो तो करछुल और बटलोही का बतियाना, चिमटे का तवे से मचलना ज़ायज है---

करछुल
बटलोही से बतियाती है और चिमटा
तवे से मचलता है
चूल्हा कुछ नहीं बोलता
चुपचाप जलता है और जलता रहता है।

जब देश के नेता अपने स्वार्थ और सत्ता की राजनीति करते हैं तब चूल्हा ही चुपचाप नहीं जलता बल्कि पेट रूपी चूल्हे में भी भूख की आग चुपचाप जलती है। मटके में ना तो आटा रहता है और ना ही कठौती का पेट भरता है---

फिर एक पोटली खोलती है
उसे कठवत में झाड़ती है
लेकिन कठवत का पेट भरता ही नहीं
पतरमुँही (पैथन तक नहीं छोड़ती)

अब तो राजनीति ऐसी हो गई है कि एक बड़े से परिवार मे बनने वाली थोड़ी-सी रोटियाँ घरवालों को खाली पेट पानी पीने को मजबूर करती हैं; अब परिवार के मुखिया की स्थिति यह है कि पहले उसे थाली खाती है और फिर वह रोटी खाता है, क्या बापू ने कभी ऐसे परिवारों की कल्पना की होगी। जब देश स्वतंत्र हुआ तब लोगों को आजादी बड़ी मन भाई और सबको ऐसा लगने लगा कि अब तो देश में खुशियाँ ही खुशियाँ होंगी, रोटी की समस्याएँ हल हो जाएंगी, गरीबी दूर होगी और गांधी के रामराज्य की स्थापना होगी किंतु जनता का मोहभंग हो गया अनेक विषमताओं के बीच जीने वाला आदमी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बस भागता ही रहा लेकिन उसके भागने का कोई नतीजा आज तक नहीं निकला है। गांधी के रामराज्य में राशन कार्ड बनवाना बहुत बड़ी समस्या है, अब तो राशन कार्ड,आधार कार्ड हर भारतवासी की पहचान बनते जा रहे हैं। अधिकतर नेता और मंत्री विभिन्न पदों पर अपने रिश्तेदारों और पहचान वालों को बैठा देते हैं। आज ही TV में समाचार आ रहे थे कि किस प्रकार देश में स्थित विभिन्न विश्वविद्यालयों और सरकारी संस्थानों में तथाकथित बड़े - बड़े उच्च जाति के लोगों को बड़े -बड़े पदों पर बैठाया जा रहा है; इससे ज्यादा दुखद स्थिति और क्या हो सकती है। राशन की दुकानों से राशन चुराकर बेच दिया जाता है सब की सांठगांठ रहती है, सब एक दूसरे की पोल जानते हैं। धूमिल ने 'कविता श्रीकाकुलम' में भारतीय व्यवस्था का बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र खींचा है, वह जनता के मन में साहस जगाना चाहते हैं---

तुम कहते हो यह हत्या हो रही है
मैं कहता हूँ मैकेनिज्म टूट रही है
नहीं इस तरह चेहरा
मत सिकोड़ो और न कंधे ही
उचकाओ

देश की परतंत्रता से गांधी दुखी थे, वहीं मुक्ति के बाद भी व्यक्ति दुखी है देश को आजाद कराने के लिए

कितने ही लोगों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया, देश में अस्थिरता आई, आपातकाल लगाया गया, आम आदमी के सपने टूटे; यह सारी विसंगतियाँ 'मुक्ति के तुरंत बाद' कविता में उभरती दिखाई देती हैं। जब देश स्वतंत्र था तब अंग्रेजों के द्वारा उन पर अत्याचार किया जाता था, कोड़े बरसाए जाते थे, जंजीरों में बांध दिया जाता था कि किंतु स्वतंत्रता के बाद जनता की आँखों का पानी क्यों नहीं सूखा है---

और तब। पहली बार दूर से आता हुआ आदमी
एक पूरा देश लग रहा था
क्या मैंने पेड़ की आत्मीयता की बात की
क्या मैंने कहा कि धूप माँ की गोद-सी गर्म थी
क्या मैंने कहा कि थरथराती हुई जुबान
डबडबाती आँख में बदल गई थी।

देश में आपातकाल लगाया गया, आम आदमी के सपने टूटे, सपनों का मोहभंग हुआ ऐसी स्थितियों की कल्पना बापू ने कभी नहीं की होगी। महात्मा गांधी को बापू या राष्ट्रपिता जैसे संबोधन यूँ ही नहीं दिए गए इसके पीछे आम जनता की संवेदनाएँ और भावनाएँ हैं। राजनैतिक गलियारों में गांधी अपने व्रतों और सिद्धांतों के कारण जाने जाते हैं किंतु आज तो ऐसा लगता है कि राजनीति को भ्रष्टाचार के कीड़े खा गए हैं, सड़ी गली व्यवस्था के कारण देशभर की हवा मानो बुदबुदाकर कुछ कह रही हो; अब तो देश में बौखलाए हुए मेंढक की तरह सांसद और नेता हैं जो अपनी कमी ना देखकर काई लगी दीवारों पर चढ़कर सूरज को ही गाली दे रहे हैं---

और सूरज को धिक्कारने लगे
व्यर्थ ही प्रकाश की बड़ाई में बकता है
सूरज कितना मजबूर है
कि हर चीज पर एक सा चमकता है

गांधी ने अपने सिद्धांतों में समन्वयवाद की बड़ी विस्तार से चर्चा की है। उन्हें विश्वबंधुत्व और मानवतावाद पर अखंड विश्वास था जिसके लिए उन्होंने प्रेम को विशेष महत्व दिया किंतु आज हमारे चारों ओर केवल 'फूट डालो राज करो' की राजनीति है। राजनीति में जो अपने को समझौतावादी और समन्वयवादी कहते हैं वही ज्यादातर भ्रष्टाचार में लिप्त रहते हैं और जो स्वयं को यह कहकर सबके सामने प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें माया -मोह से कुछ लेना - देना नहीं वही सबसे अधिक सांसारिकता से जुड़े रहते हैं। धूमिल बापू की इस विचारधारा को अपने शब्दों में अपनी ही एक रचना 'एक कविता: कुछ सूचनाएँ' में अलग ही अभिव्यक्ति देते हैं---

सबसे अधिक हत्याएँ
समन्वय वादियों ने की
दार्शनिकों ने
सबसे अधिक जेवर खरीदे।

यह एक ऐसी कविता है जिसमें कवि ने एक साथ बहुत सी सूचनाएँ समाहित कर दी हैं। सड़क पर राष्ट्र के कर्णधारों का किश्तियों की खोज में भटकना देश की शोचनीय दशा को दर्शाता है। इस कविता में एक ओर देश की युवा पीढ़ी पर व्यंग्य है तो दूसरी भ्रष्टाचार तथा सड़ी गली व्यवस्था का पर्दाफाश किया गया है। 'सुदूर पूर्व में' कविता युद्ध की विभीषिका को दर्शाती है; जहाँ गांधी जी विश्व को बंधु बनाना चाहते थे वहीं दूसरी ओर आज सच्चाई बिल्कुल इसके विपरीत हो गई है। जैसे गांधी जी मानते थे कि युद्ध से कभी किसी का भला नहीं हुआ है वैसे ही कविवर धूमिल भी मानते हैं युद्ध से कभी किसी का भला नहीं हुआ है; युद्ध का परिणाम उन्हीं लोगों को भुगतना पड़ता है जिनका दूर - दूर तक युद्ध से कुछ भी लेना देना नहीं होता। बम गिराने वाले मानव नहीं दानव होते हैं। कवि भी बापू की तरह प्रत्येक देश में शांति और सुंदरता की स्थापना चाहते हैं। कवि ने कटे हुए पेड़ का प्रतीक लेकर युद्ध भूमि में गिरने वाले वीरों की अति सुंदर और सटीक व्याख्या की है---

जब पेड़ किसी खोटे सिक्के सा
उछलकर घाटी की गुमसुम हथेली पर
बे खनक गिरता है एक तना
दूसरे तने को चाकू फेंकना सिखाता है।

अब तो मौका पड़ते ही दूसरे देश की सीमा को लाँघना, फायरिंग करना, गोले बारूद बिछा देना, बम से सैनिकों को उड़ा देना कुछ देशों की राजनैतिक महत्वाकांक्षा को दर्शाता है और यह स्थितियाँ मानवता का हनन करती हैं। उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया के बीच चलने वाले युद्ध के मूल में राजनैतिक महात्वाकांक्षा, स्वार्थलोलुपता और अवसरवादिता के साथ-साथ मानवीयता की हत्या होती दिखाई देती है। 'आतिश के अनार सी वह लड़की' में राजनैतिक स्थितियों और संघर्ष को दिखाया गया है। राजनीति में हत्याएँ करवाना, पिटवाना बड़ी आम बात हो गई है। कविवर धूमिल देश की दशा

और प्रजातंत्र की स्थिति से दुखी हैं। वह अपनी वेदना कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं---

क्या तुमने सुना है कि यह
लोहे की आवाज़ है या
मिट्टी में गिरे हुए खून
का रंग
लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।

यह धूमिल की ऐसी अंतिम कविता है जो गांधी के भारत का एक नया रूप हमारे सामने प्रस्तुत करती है। गांधी के सिद्धांत हैं और धूमिल के शब्द हैं। समय किसी के लिए रुकता नहीं हमेशा गतिमान रहता है। कवि धूमिल की कविताओं में सामयिक राजनीति पूरी शिद्दत से उभर कर हमारे सामने आती है और उनकी कविताओं में गांधी के विचार स्पष्ट रूप से बोलते दिखाई देते हैं। एक आम आदमी किस तरह संसद से लेकर सड़क तक व्याप्त है, उसी की गूँज जहाँ एक ओर राजनीति में सुनाई देती है वहीं दूसरी ओर कवि की कविताओं के मूल में है। कवि धूमिल ने कहीं भी बापू को बिसराया नहीं है बल्कि उनके हर शब्द में बापू के विचारों के बिंब - प्रतिबिंब बनकर उभरे हैं। 'सुदामा पांडे का प्रजातंत्र' काव्य संग्रह की कई कविताओं में राजनैतिक विचारधारा के कई रूप दिखाई देते है। यहां संसद की समीक्षा है तो संयुक्त मोर्चा भी है, सुदामा पांडे का प्रजातंत्र है तो कोड वर्ड भी है; मतदाता और चुनाव भी हैं। पहले राजनीति में केवल दो ही पार्टियां हुआ करती थीं किंतु आज अनेक राजनैतिक पार्टियों का बोल - बाला है; अब तो राजनीति में दलबंदी है, आपसी समझदारी है। राजनीति में हर छोटी से छोटी वस्तु या घटना को राजनैतिक रंग दे दिया जाता है यहाँ तक कि एक अदद बटन और चुटकी भर आटे की सुविधा के लिए भी व्यक्ति बागी बन जाता है---

एक अदद बटन और चुटकी भर
आटे की सुविधा ने
हमें बागी बना दिया है
जबकि हमारी पीठ बुरी तरह
महसूसती है कि हमारी रीढ़ पर
दाँत भेड़ियों के गड़े हैं।

गांधी जी सदैव यह मानते रहे कि राजनीति हमेशा धर्मपरक होनी चाहिए किंतु ऐसा हो नहीं पाया, अब तो धर्म में भी राजनीति का प्रवेश हो चुका है। बापू ने यह कभी नहीं चाहा था कि देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था लचर हो किंतु आज वही स्थिति देश के समक्ष है तभी तो कविवर धूमिल सशस्त्र क्रांति और संघर्ष की बातें करते हैं---

हवा गरम है
और धमाका एक हल्की सी रगड़ का
इंतजार कर रहा है
कठुआए हुए चेहरों की रौनक
वापस लाने के लिए
उठो और हरियाली पर हमला करो।

बापू सदैव ईमानदारी की राह पर चलते रहे उन्होंने कभी भी अराजकतावादी मूल्यों की कल्पना नहीं की होगी, उन्होंने जीवन भर अपना उत्तरदायित्व निभाने के साथ - साथ अपने जीवन का एक लक्ष्य रखा, उन्हीं की तरह कवि धूमिल भी राजनैतिक नेताओं द्वारा बांटी गई जनता को एक साथ लाना चाहते हैं। उन्हें लगता है कि राजनीति एक ऐसा दलदल है जिसमें फंसकर व्यक्ति जंगली बन जाता है। भ्रष्ट राजनीति में कैसी प्रजा और कैसा तंत्र यह तो केवल आदमी के खिलाफ आदमी का खुला षड्यंत्र है---

ना कोई प्रजा है
ना कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुला
षड्यंत्र है।

गांधी जी का यह मानना था कि राजनीति को नैतिकता और मानव कल्याण का साधन होना चाहिए। अब प्रश्न यह उठता है कि राजनीति का धर्म हो या धर्म की राजनीति हो। सीधी सी बात है राजनीति का कोई धर्म अवश्य होना चाहिए। धर्म की राजनीति कभी नहीं होनी चाहिए क्योंकि ऐसी राजनीति कभी नहीं पनपती। मतदान किए नहीं करवाए जाते हैं; धूमिल भी मानते हैं कि मतदाता कई बार पैसों से खरीदे जाते हैं। 'मतदाता' कविता में धूमिल सच्चाई बयां करते हैं --

जनतंत्र जनता से नहीं घर की जंग से शुरू होता है
और फिर पहली बार यह जानकर
वह खुश होगा कि मतपेटी में
मतपत्र के साथ वह अपनी समझ नहीं डाल आया है आज भी --

अगली लड़ाई के लिए उसके दाँत और नाखून
एक रोटी पर सुरक्षित हैं।

आज भी प्रजातंत्र की दुर्दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। गरीबों को पूंजीपतियों और नेताओं से डरकर मतदान करना पड़ता है। देश की आम जनता चुनाव की वास्तविकता को नहीं समझती, आज भी देश में ऐसे करोड़ों लोग हैं जो मेहनत मजदूरी और भू-स्वामियों के पास काम कर के 2 जून की रोटी की जुगत भिड़ाते हैं। वोट पाने के लिए उनसे कई बार वादे किए जाते हैं किंतु में धोखे के अलावा कुछ नहीं मिलता चाहे; राजनेता हों चाहे सांसद हों शासन हो या संविधान इन पर खोखले भाषण देकर आज के राजनेता स्वयं को देशप्रेमी सिद्ध करते हैं। गांधी जी ने एक मजबूत शासन प्रणाली की कल्पना की थी किंतु धूमिल यह जानते हैं कि देश की शासन प्रणाली छीज रही है। अहिंसावादी राष्ट्र भारत में हिंसा, सांप्रदायिकता, दंगे आम बात हो गए हैं---

घबराने की कोई बात नहीं गोली कांड के बाद
लड़कों का गायब होना नई बात नहीं है
यह शांति का मसला है
लेकिन खबरों के मलबे के नीचे
सच्चाई का पता कब चला है।

आज स्थिति यह है कि युवाओं को अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करके मरने के लिए छोड़ दिया जाता है और कई बार तो उनकी हत्या करवा दी जाती है---

खून के थक्के में तड़पता हुआ
जब वह युवा जिस्म गिर पड़ा रास्ते के ठीक बीचों - बीच
उस वक्त जनतंत्र किधर था

वास्तव में देखा जाए तो जिस आरक्षण को बापू ने महत्व नहीं दिया आज उसी आरक्षण की राजनीति हो रही है और ईमानदार नेताओं की उपेक्षा की जा रही है। देश की आजादी में स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका और संघर्ष भुलाए नहीं जा सकते किंतु वर्तमान राजनीति में इन्हें कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है। इस प्रकार राजनीति एक ऐसा नाम है जिसमें समाज के विभिन्न वर्ग राज्य शक्ति के उपयोग के लिए संघर्षरत रहते हैं। वास्तव में देखा जाए तो गांधी जी का यह विचार था कि मनुष्य के आपसी संबंध और व्यवहार यदि उन्नत हों तो राष्ट्र भी राजनीति धर्म का पालन करते हुए उन्नति की ओर अग्रसर होगा। देश की विसंगतियों और विषमताओं से व्यथित धूमिल की कविताओं में गांधी के विचार बोलते दिखाई देते हैं। अपने समय में बापू ने राजनीति को लेकर जो जो सपने देखे थे, देश की स्वतंत्रता के पश्चात् उन सपनों का क्या हश्र हुआ और राजनीति कैसे रंग दिखाने लगी, इन सभी विषमताओं को कवि की कविताओं में सपाटबयानी द्वारा सटीक अभिव्यक्ति मिली है और उनकी कविताएँ पाठकों में राजनैतिक चेतना जगाने का प्रयास करती दिखाई देती हैं। राजनीति पर मेरी कुछ पंक्तियों से मैं इस आलेख को समाप्त करना चाहूँगी---

आज राजनीति के रेगिस्तान में
घोटालों और तिकड़मों की
एक
काँटों भरी बाड़ उग आई है
छाए हुए सन्नाटे को तोड़ने के लिए
व्यवस्था हो रही है पलीता लगाने की

सीखचों के पीछे से घूंघट काढ़े गाँव की गोरी - सा देश न जाने क्या कहना चाहता है न जाने क्या करना चाहता है।

–263/33, सीब्रॉस आर्चिड ब्लॉक-34 वलचरी मेनरोड, वलचरी, चेन्नै-600042

❑❑❑

संस्कृत का एक अनालोचित गांधीवादी साहित्य

डॉ. अजय कुमार मिश्र

मधु के छत्ते पर मंडराते भौरों के समान ही समकालीन संस्कृत लेखक तथा समालोचक भी अमूमन भास, भवभूति, कालिदास तथा बाणभट्ट जैसे महाकवियों के महिमा मंडन में निरंतर संलग्न हैं। इस नौस्टेल्जिया (अतीत गौरव के प्रति विशेष आग्रह) का परिणाम यह हुआ कि आज हम संस्कृत भाषा के आधुनिक साहित्य का यथार्थ रूप से आकलन करने में अपने आपको सर्वथा असमर्थ पाते हैं। जबकि इसकी सम-सामयिक रचनाओं में भी राष्ट्रीय सरोकारों के सवाल भरे पड़े हैं। विदेशी विद्वान गोल्ड् फ्लेप तथा इड्विन विल्सन का विचार कि नौवीं शताब्दी में सल्तनत आक्रमण के बाद संस्कृत साहित्य विशेषकर नाट्य विधा पतन की ओर बढ़ने लगी। इस मिथक के जवाब में गांधिविजय नामक नाटक की भी चर्चा की जा सकती है। वर्तमान समय में भी संस्कृत भाषा नाटकों का देश - विदेश में मंचन इसकी सुदीर्घ परंपरा तथा उर्जस्विता को ही पुष्ट करता है। सुलेमान रुस्दी ने ग्रांटा तथा न्यूर्याकर नामक पत्रिका के माध्यम से भारतीय भाषाओं के विभिन्न रचनाओं के राष्ट्रवादी स्वरूप पर जो प्रश्न चिह्न लगाया है, उनका यह उत्तर उपनिवेशवादी फलसफा भी गले नहीं उतरता है। दुर्भाग्यवश, प्रो. सुधीर चंद्र तथा प्रो. सुमित सरकार जैसे इतिहासविद्, जो साहित्य को संस्कृति का अंतः साक्ष्य मानते हैं, ने भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के पुनर्लेखन में, संस्कृत भाषा के आधुनिक साहित्य को समुचित स्थान नहीं दिया है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की स्वर्णिम वर्षगांठ पर प्रो. के. एम. जार्ज ने ''मास्टर पीसेज आफ इंडियन लिटरेचर'' नामक पुस्तक तीन भागों में संपादित की है। इसके दूसरे भाग में भारतीय साहित्य के विभिन्न लेखकों ने अपने आधुनिक साहित्य को ही उजागर करने का प्रयास किया है लेकिन न जाने क्यों प्रो. के. कृष्णमूर्ति ने संस्कृत भाषा की किसी आधुनिक रचना को प्रकाश में लाने से बेहतर कालिदास के विख्यात नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल' का ही चयन किया है। सी. के. के. राजा ने इस ग्रंथ के तीसरे भाग में कुछ गिने-चुने संस्कृत भाषा के आधुनिक लेखकों यथा वी. राघवन तथा सुंदर राजा जी के नामों का विवरण दिया है। लेकिन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को लेकर लिखे गए एक उत्कृट राष्ट्रवादी नाटक - गांधिविजय' तथा इसके रचनाकार के विषय में कहीं कोई चर्चा तक नहीं की गई है। साहित्य अकादमी से संपादित अपनी पुस्तक 'माडॅर्न इंडियन लिटरेचर : एन ऐंथौलोजी' भाग I में भी एक दो पंक्तियों से अधिक जानकारी जुटा नहीं सके है। इसी अकादमी से प्रकाशित अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक "हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर-1911-1956 : स्ट्रगल फॉर फ्रीडमः ट्रुथ एंड ट्रेजडी" में प्रो. शिशिर कुमार दास ने महात्मा गांधी के चरित्र गाथा से संबंधित भारतीय साहित्य का विभिन्न भाषाओं की रचनाओं का विवरण दिया है। लेकिन गांधिविजय 'नाटक उनकी भी रचनाओं से ओझल हो गया है।

मुझे इस जिज्ञासा का भी कहीं से कोई समाधान नहीं मिलता कि डॉ. सत्यव्रत ने अपनी पुस्तक में दीक्षित जी के कुछ रूपकों की चर्चा की है लेकिन गांधिविजय नाटक को सर्वथा उपेक्षित क्यों किया है। जबकि मुझे इसकी छाया प्रतिलिपि जालंधर तथा मूलपाठ वाराणसी से भी प्राप्त हुआ है। डॉ. रीता चट्टोपाध्याय

द्वारा इस नाटक की चर्चा नहीं किया जाना उनकी अनभिज्ञता को बताता है। प्रो. हीरा लाल शुक्ल ने अपनी श्रम साध्य पुस्तक - 'संस्कृत का समाजशास्त्र (स्वतंत्रता संग्राम और संस्कृत साहित्य)' में भी यही चूक की है। डॉ. किरण टंडन ने भी सर्वेक्षणात्मक दृष्टि से गांधिविजय से संबंधित प्रो. हरिनारायण दीक्षित की जानकारी को रीसाइकिल करने की कोशिश की है। लेकिन डॉ. रामस्वरूप बेहल की सामग्री कुछ अधिक पुख्ता लगती है। फिर भी इसमें नाट्यशास्त्रीय चिंतन का अभाव अवश्य खटकता है। 'समकालीन भारतीय साहित्य' नामक पत्रिका के वर्ष 1996 के पैसठवें अंक में श्री जयशंकर त्रिपाठी के लेख - ''संस्कृत भाषा का आधुनिक नाट्य साहित्य'' में भी गांधिविजय नाटक बिल्कुल हाशिए पर है। गौरतलब है कि पठित - चर्चित कवि - समीक्षक आचार्य राधाबल्लभ त्रिपाठी की इस लेख से जुड़ी प्रतिक्रिया रीज्वायनेडर बेहद ही पुख्ता मानी जा सकती है। संस्कृत भाषा का एक अतीव महत्वपूर्ण नाट्य साहित्य जो इतिहास तथा साहित्य के रिश्तों के नजरिए से काफी मायने रखता है उसके गांधीवादी दर्शन - चिंतन की थोड़ी तहक़ीक़ात की जा सकती है।

शायद किसी को इस बात का भान भी नहीं हुआ होगा, कि दक्षिण अफ्रीका की रेलयात्रा में काले होने के आरोप में अपमानित एक अदना-सा इंसान गोरी हुकूमत के तख्त को ही पलट कर रख देगा। लेकिन इस रोचकपूर्ण कहानी को लेकर लिखा गांधिविजय नाटक आज समालोचकों की नजरों से ओझल हैं। प्रस्तुत नाटक के रचनाकार मथुरा प्रसाद दीक्षित उत्तरप्रदेश के हरदोई जिले के भगवंतपुरा गाँव के रहने वाले थे जिनका जन्म 1878 ई. में हुआ था इन्होंने लोकमान्य तिलक की मराठा पत्रिका के राष्ट्रवादी प्रभाव में आकर लाहौर के एचिसन कॉलेज के लगभग ग्यारह वर्षो के प्राध्यापक के पद को छोड़ दिया इसके बाद उन्होंने शिमला के सोलन स्थित नरेश श्री दुर्गा सिंह के संपर्क में आने के बाद अनेक राष्ट्रभक्तिपूर्ण संस्कृत रचनाएँ लिखी। चंदवरदायी कृत पृथ्वीराजरासो पर खोजपूर्ण लेखन के कारण इन्हें सन् 1936 में 'महामहोपाध्याय' का भी सम्मान दिया गया। फिर भी इनकी आवाज औपनिवेशिक सत्ता तथा उसके शोषण के विरुद्ध थम न सकी।

'गांधिविजय' नाटक भरतनाट्य परंपरा के प्रतिकूल मात्र दो अंकों में ही समाप्त होता है। इसमें महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय, सुभाष चंद्र बोस, राजेंद्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू, जिन्ना, डायर, क्रिप्स तथा माउंटवेटन आदि प्रमुख पुरुष पात्र हैं। भारतमाता भी महत्वपूर्ण स्त्री पात्र है। नायक, नायिका तथा प्रतिनायक पात्रों के शास्त्रीय साँचे में काफी लचीलापन है। नाटक के पहले अंक में महात्मा गांधी को अफ्रीका के नेटाल क्षेत्र में प्रवासी भारतीयों के लिए संघर्ष करते दिखाया गया है तथा दूसरे में बिहार के चंपारण स्थित निलहों पर औपनिवेशिक शोषण और अत्याचार को चित्रित करते हुए गांधी जी के नेतृत्व में भारत को अंग्रेजी हुकूमत के चंगुल से मुक्त होते हुए चित्रित किया गया है।

राष्ट्रवादी नाटक होने के कारण इसमें कुछ स्थलों पर राष्ट्रगीतों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए संगीत तत्वों को जुटाया गया है। अवधी भाषा के गीत तथा प्राकृत या अपभ्रंश की जगह हिंदी भाषा में संवाद लेखक का भाषा वैज्ञानिक चिंतन है। आचार्य भरत द्वारा उल्लिखित कुछ आपत्तिजनक दृश्यों से बचने के लिए जालियाँवाला बाग़ कांड को - 'अर्थोपक्षेपक' के रूप में मंचित किया गया है। तिलक, राजेंद्र प्रसाद तथा नेहरू आदि के आगमन से स्वतंत्रता मिलने की प्रबल आशा 'विष्कम्भक' पर्दे के पीछे संगीत उत्सव में आज़ादी की संभावना प्रतिध्वनित होना 'चूलिका' मालूम पड़ता है।

सूत्रधार ने महात्मा गांधी को शांतिप्रियता, सत्यता तथा जनमानस का प्रबल समर्थक माना है-

''सत्या शांता शुभा दांता सर्वलोकहितैषिणी।
सतां महात्मनां वाणी जयतात्सर्वतोमुखी ।।

भारतीय कर्मकारों के अंगूठों को काटे जाने की घटना गोरी हुकूमत के घोर अत्याचार का पर्दाफाश करती है। हिंदुस्तान - पाकिस्तान बँटवारे के मामले में जिन्ना अधिक उतावले मालूम पड़ते हैं। भूलाभाई ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बहुत अधिक बल दिया है। भारतीय कृषक समाज द्वारा गांधी जी को अंग्रेजों का पक्षधर मानना यथार्थ नहीं लगता लेकिन इसमें कृषक आंदोलन के बीज अवश्य झलकते हैं। कल्लू का वाक्य - ''एक दिन के लिए भी न रहें (पृ. 8) में भी कृषक आक्रोश तथा औपनिवेशिक अत्याचार की पुष्टि मिलती है। तिलक द्वारा अंग्रेज का एक ही थप्पड़ में जान ले लेने की धमकी में गरम दल का रुख दिखता है। मालवीय स्वदेशी राष्ट्रीयता की तलाश में हैं-

''मातः। वयं स्वदेशीयमात्रवस्तुग्रहणोन विदेशीय सकलवस्तु - बहिएकारेणा च एतदीय त्यापारिभ्यों विरोध्य समूलमिमान निष्कासयिष्यामः।(पृ. 4)

महात्मा गांधी को दक्षिण अफ्रीका में उपहार स्वरूप प्राप्त संपत्ति को उनके पुत्र मोहन द्वारा उसे राष्ट्र के विकास में दान के रूप में दिया जाना एक प्रबल आर्थिक राष्ट्रवाद को प्रस्तुत करता है। पंडित जी नामक पात्र को इस बात की घोर चिंता है कि ब्रिटिश सत्ता के दबाव में भारतीय शिक्षण संस्थाओं पर ताले लटकाएँ जा रहे हैं। इस आशंका की झलक कार्ले की पंगुवादी शिक्षा नीति में भी देखी जा सकती है। अब्दुल्ला कर चोरी करने के आरोप में हवालात की सज़ा से काफ़ी परेशान मालूम पड़ता है। डायर द्वारा किया गया जालियाँवाला बाग़ का काला कारनामा देता उसका जीना हराम कर देता है -

''भवणोदतटं यांति, पश्यैतान्नाशये क्षणत्'' (पृ.22) इरविन अपना उल्लू सीधा करने के लिए गांधी जी पर छल-छद्म मित्रता का डोरा डालना चाहता है। जर्मन युद्ध के मसले पर नेहरू द्वारा क्रिप्स के वादों पर यकीन न करना उनकी दूरदर्शिता है। यूरोपीय नामक पात्र इस बात से काफ़ी परेशान है कि भारतीय जनमानस के ऊपर से एक कर समाप्त होते ही सारे करों को भी समाप्त करने का सिलसिला शुरू हो जाएगा। अंग्रेज न्यायाधीश की पक्की नींद हिंदू - मुस्लिम एकता तथा आपसी भाईचारे के कारण उड़ गई है-

''किं करिष्याम:, भेदतीते: अपि स्वराज्यग्रहणो सर्वेडप्येकमतय एव। ..... अन्यथा सर्वे वयं हन्यामहे अतो लंदन गत्वा सर्वां स्थिति वक्ष्याम:''। (पृ. 27)

राष्ट्रवादी लेखक मथुरा प्रसाद दीक्षित ने देश को एकता ओर अखंडता की भावनात्मक कड़ी से जोड़ने के लिए भारतमाता नामक काल्पनिक चरित्र का भी सृजन किया है जो एक संपूर्ण भारतीयता की प्रतीक है। लेकिन महात्मा गांधी परक संस्कृत साहित्य की तहकीकात से यह तस्दीक होता है कि इस काल खंड में अधिसंख्य रचनाएँ गांधी जी के विराट व्यक्तित्व को पद्य शैली में अलंकृत करती नजर आती हैं। अत: इस नजरिए से भी से भी संस्कृत की यह नाटय अपना मायने रखती है। यद्यपि जाने - माने संस्कृत रचनाकार - समीक्षक आचार्य राधाबल्लभ त्रिपाठी ने भी अपनी चर्चित किताब ''सस्कृत साहित्य : बीसवीं शताब्दी'' में प्रस्तुत रूपक गांधिविजय नाटक के प्रसंग से सर्वथा ओझल दिखते हैं। लेकिन आचार्य त्रिपाठी ने गांधीवाद के संस्कृत वाड्.मय को लेकर पुख्ता सामग्री पाठक को दी है। फिर भी इस तथ्य का भी अन्वेषण सर्वथा जायज लगता है। कि सनातनी तथा आर्य समाजी गुटबाजी की लेखनी का शिकार आखिर क्यों गांधी जी को होना पड़ा? प्रस्तुत नाटक के पहले अंक में नेटाल (दक्षिण अफ्रीका) तथा भारत पर हो रहे गोरी हुकूमत के अत्याचार, शोषण तथा उत्पीड़न को दिखाकार, पुन: फिरंगी सरकार पर महात्मा गांधी की नैतिक जीत दिखायी गई है। नाटक का अंत हिंदुस्तान - पाकिस्तान के दु:खांत बँटवारे के साथ होता है। यही कारण है कि नाटककार मथुरा प्रसाद दीक्षित ने इसे राष्ट्रीय भावना से ओत - प्रोत माना है। गौरतलब है कि नाटक में ''जैसे को तैसा'' का तत: 'शंठे शास्यं समाचरेत्' (गांधिविजय, पृ. 3) का हिंदीनुमा लच्छेदार प्रयोग जहाँ संस्कृत - हिंदी भाषाओं के भाषा वैज्ञानिक महत्व को इंगित करता है। वहीं गांधीवादी चिंतन को गांधी जी के नरमवादी रूख को भी नए फलक से आंकने का मार्ग प्रशस्त्र करता है क्योंकि मथुरा प्रसाद दीक्षित के दूसरे नाटक 'भारतविजय - रूपक में जिसमें नाटककार द्वारा हिंदुस्तान की आज़ादी के दस साल पहले ही (सन् 1937) में भविष्यवाणी की थी कि अंग्रेज भारतवर्ष की बागडोर महात्मा गांधी के हाथों में सौंपकर इग्लैंड चले जाएँगे और सन् 1947 में यही हुआ। इसके कारण इस नाटक की पांडुलिपि वघाट नरेश को (सोलन, शिमला) द्वारा जब्त कर लिया था, और इस नाटक में भी गांधी जी अपने प्राणों की बाजी लगाकर खतरनाक नियम 'रॉलेक्ट कानून' को तोड़ना चाहते हैं। अत: इसमें कोई संदेह नहीं कि नाटककार दीक्षित ने गांधी जी के नरमवादी रूख़ को नए ढंग से सोचने का एक अभिनव मार्ग प्रदान किया है और संस्कृत, जिसे पारंपरिक तथा पोंगापथी का वाड्.मय माना जाता रहा है, यह साहित्य गांधीवादी दर्शन के चिंतन को एक नवाचार का फलसफा देता है। इसका मतलब यह कदापि नहीं कि गांधी जी की विचारधारा गरमपंथी थी बल्कि काफी व्यावहारिक तथा फूल से भी कोमल तथा जायज माँग के लिए पत्थर से भी कठोर। गांधी के इस परिप्रेक्ष में अशोक महान की उस चेतावनी को नहीं भूला जाना चाहिए जिसमें वह कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध होने पर अहिंसा को तो अपना लेता है। लेकिन कलिग के शिलालेख में यह उत्कीर्ण करवा कर अपने विरोधियों को अच्छी तरह समझा भी देता है कि यदि वे राजा का विरोध करेंगे तो उसे तलवार उठाने में तनिक भी देर नहीं होगी। भारतीय जनमानस की आवाज़ को कुचले जाने पर गांधी जी द्वारा सत्याग्रह पर बैठा जाना जिसके फलस्वरूप न्यायाधीश के द्वारा गांधी जी

के पास संधि पत्र भेजा जाना जहाँ गांधी जी द्वारा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अहिंसा को प्रभावी शस्त्र माना जाना चाहिए वहीं गांधी जी द्वारा उस न्यायाधीश से एकांत में बात करने के मुद्दे को ठुकराया जाना भी गांधी जी की ईमानदारी, निष्ठावान, निर्भीक तथा जननायक होने के तथ्य की पुष्टि करता है। ध्यान रहे गांधी जी मनुष्य मात्र की राजनैतिक स्वतंत्रता के अलावा उसके आर्थिक तथा मानसिक सबलता के भी परम हितैषी हैं। तभी तो खेतिहर तथा मज़दूर द्वारा कर न चुकाए जाने पर अंग्रेजों द्वारा उनके अंगूठे को बलात काटे जाने की दुर्घटना का वह जमकर विरोध करते हैं। गांधी जी द्वारा श्रम शोषण - दोहन का खुलकर प्रतिकार करना भी इस नाट्य में बड़े ही प्रभावी ढंग से रूपायित हुआ है। तभी तो इनके इस आर्थिक तथा मानव संसाधन परक प्रखर राष्ट्रवादी चिंतन के कारण पंडित जी नामक एक सामान्य पात्र इन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अवतार मानते हैं। तभी तो अंग्रेजी हुकूमत द्वारा गांधी जी के नेतृत्व में इस स्वतंत्रता संग्राम के सैलाब को रोकने के लिए जब उन्हें जेल में डालने की साजिश रची जा रही है तो देश का जनमानस साफतौर पर यह ऐलान करता है कि गांधी जी गुनहगार नहीं है। हमलोग बागी हैं। अत: हम सभी उनके साथ जेल की हवा खाना चाहते हैं। यहाँ इसका भी ध्यान रहे कि आम किसानों के बीच जो गांधी जी को लेकर भेदभाव करने वाला दुष्प्रचार किया जाता है इस गलतफहमी को इसी पंडित जी द्वारा खुलकर विरोध भी किया जाता है। इससे इतना तो साफ़ है कि किसान समाज कहीं न कहीं एकजूट हो रहा था और पंडितजी द्वारा इस किसानी प्रतिरोध का विरोध करते हुए गांधी जी को राजा राम जी का अवतरण माना जाना - संस्कृत की दुनिया के सनातनी - आर्यसमाजी दो हिस्सों में गांधी जी के जीवन - दर्शन पर भी बहस के एक नये मुद्दे को आगाज़ करता नजर आता है। अत: गांधीवादी तथा पीजेंट्री इतिहास के जाने माने विशेषज्ञ प्रो. सरकार द्वारा इतिहास के इस साहित्यिक अंत:साक्ष्य पर गौर फरमाने की युगीन मांग हो सकती है। उसी प्रकार नाटककार द्वारा गांधी जी की अहिंसा को सत्य का दर्जा दिलवाया जाना भी गांधीवादी दर्शन का एक बड़ा ही मानीखेज नवोन्मेषशालिनी आयाम माना जाना चाहिए। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि जो कुछ गांधीवादी इतिहासकारों का मानना है कि गांधी जी ने अपने दर्शन में अहिंसा की अवधारणा रूसी दार्शनिक-रचनाकार टॉलस्टाय से ग्रहण की थी, उस 'अहिंसा-दर्शन' को संस्कृत नाट्ककारों ने अपने अलौकिक काव्य सृजन-चिंतन को भारतीय सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक कैनवास पर प्रतिबिंबित किया है और यहीं पर गांधी दर्शन को समझने-समझाने में इसका फलक वैश्विक होकर रूसी-दर्शन-चिंतन के बॉर्डर को सर्वथा लाँघ-सा जाता है। अहिंसा के इस सत्यवादी डिस्कोर्स की आज पूरी दुनिया को न केवल राजनैतिक आतंकवाद अपितु ह्वाईट टेररिज्म की सख्त युगीन जरूरत है।

गांधी जी जहाँ जमीनी हकीकत के लोकनायक हैं वहीं उसमें दूरदर्शिता तथा एक सफल राजनयिक होने के कई गुण भरे पड़े हैं। इसी प्रकार उनके द्वारा शांति की स्थापना के लिए जवाहर लाल नेहरू तथा अन्य अहिंसावादी नेताओं को जेल से सजा मुक्त करवा कर तथा नमक कानून को तोड़कर अपने इन राजनयिक कूटनीतिक गुणों का परिचय देते हैं और जैसाकि खेतिहर समाज के इतिहासकार सुमित सरकार का मानना कि ''गांधी जी आजीवन जिस हिंदू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता और संभावना को मानते रहे, उसका सूत्र निश्चय ही दक्षिण अफ्रीका के उन आंदोलनों में था जिनमें मुसलमान व्यापारी अत्यधिक सक्रिय रहते थे'' (आधुनिक भारत 1885-1947, पृ. 211) ऐसे तथ्यों को और अधिक स्पेस शायद इसलिए नहीं मिल सका है कि इसकी रचना काया थोड़ा लघु है। यही कारण है कि इसमें दक्षिण अफ्रीका के उस तथ्य को भी नहीं समेटा गया जिसमें वहाँ के गवर्नर जनरल लार्ड एलगीन ने भारतीय जनसमुदाय पर लगे पच्चीस पौंड टॉल टैक्स को अन्यायपूर्ण मानते हुए उस टैक्स को तीन पौंड कर दिया। (''सत्याग्रह इन साऊथ अफ्रीका'', एम. के. गांधी पृ. 26)। महात्मा गांधी अपने इसी चर्चित किताब में दक्षिण अफ्रीका के खेतिहर मज़दूरों तथा क़ाश्तकारों पर जो जुल्म के सितम ढाये जा रहे थे उसका वर्णन इस गांधिविजय नाटक में काफी मेल खाता है जिसकी पुष्टि का उदाहरण गांधी जी अपने इस किताब में लिखते हैं। (वही, पृ. 20)

इस आलेख में ऊपर 'दक्षिण अफ्रीका' की भागीदारी की बात इतिहासकार सुमित सरकार ने जो उठायी है, उसे नकारा नहीं जा सकता है। लेकिन इस यथार्थ को भी नहीं नकारा जा सकता है कि नाटककार दीक्षित ने इस नाटक में अंग्रेजी हुकूमत की कुनीति ''फूट डालो और शासन करो'' के गांधीवादी दर्शन के नजरिए से जो रूपायित किया उसमें प्रजातंत्र सर्वोपरि है। इनकी भाषा सरल, ललित तथा मनोरम होकर अपने

मुहावरेनुमा रूझान के सबब से चूर्णक (छोटे - छोटे सरल वाक्य) शैली के साथ हिंदी के सुभाषितों और लोकोक्तियों में रचती-बसती प्रतीत होती है। ध्यातव्य है कि रूपक की संवाद योजना इसी वजह से मनभावन है। लेकिन आचार्य भरत के फलसफा के आधार पर इसका कारण साफ नहीं दिखता कि इस नाटक में गांधी जी की धर्मपत्नी जहाँ हिंदी में संवाद करती हैं वहीं दीक्षित जी के अन्य नाटक में उसी दर्जे का पात्र संस्कृत भाषा में बात करता है। उसी प्रकार'' निकलो इति चाप्यन्ये सर्वे ब्रूमः सुसंगताः (गांधिविजय पृ. 12) के एक ही वाक्य में हिंदी-संस्कृत का एक साथ प्रयोग, उस के भाषा वैज्ञानिक कारणों को अन्वेषित किए जाने की जरूरत दर्शाता है। ''तदेव धनलोभेन क्षणात्शयामीकृत मया । धन के लालच में अपने चरित्र पर काला धब्बा लगा लिया, गांधिविजय,पृ. 6),'' न हि मूषिकास्त्रेणपि मार्जारो बध्यते'' (चूहेदानी से बिलार को पकड़ने की नाकाम कोशिश) गांधिविजय', पृ. 21),'' नाहम् अकर्मण्योडस्मि'' (मैं कोई कामचोर नहीं हूँ गांधिविजय, पृ. 13) जैसे अनेक लच्छेदार संस्कृत वाक्य हिंदी भाषा तथा इसके लोक प्रयोगजन्य रिश्ते को बड़ा ही तरोताजा बना देते हैं।

संस्कृत-हिंदी भाषा के वैश्विक विद्वान आचार्य राधाबल्लभ त्रिपाठी ने बड़ा ही ज़ायज लिखा है कि ''बीसवीं शती के पूर्वार्ध में राष्ट्रियता की भावना का अभूतपूर्व उन्मेष हुआ, विशेषतः महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन तथा उनके जीवन दर्शन ने सारे देश को प्रेरणा के सूत्र में बाँध दिया। इस काल का संस्कृत साहित्य इस युगनिर्माता महापुरुष के चरित्र और संदेश से अत्यधिक प्रभावित हुआ। (''संस्कृत साहित्यः बीसवीं शताब्दी'', पृ. 21)। लेकिन आगे वे गांधीवादी खंडकाव्यों तथा मुक्तकाव्यों पर अपना विशेष गौर फरमाते हैं। इससे भी यह तस्दीक होता है कि गांधीवादी नाटयधर्मी विधा अभी अधिक प्रकाश में नहीं आ सकी है। अतः इस अदना से आलेख के जरिए एक ओझल गांधीवादी संस्कृत नाट्य साहित्य को उन्मीलित करने का भरसक प्रयास किया गया है।

- फ्लैट संख्या 2/802, ईस्ट एंड अपार्टमेंट, मयूर विहार फेज-I एक्सटेंशन, नई दिल्ली, पिन- 110096

❑❑❑

गांधी जी का अर्थशास्त्रीय चिंतन

डॉ. विनीता कुमारी

महात्मा गांधी बहुआयामी व्यक्तित्व से संपन्न विश्व की महानतम विभूतियों में से एक हैं। मानवीय जीवन से जुड़ा हुआ कोई ऐसा पहलू नहीं है जिस पर गांधी जी ने चिंतन न किया हो। लोकतंत्र से लेकर ग्राम - स्वराज्य, नशामुक्ति, शिक्षा, बेरोजगारी, अराजकता, आर्थिक, सामाजिक वैषम्य जैसे प्रत्येक पहलू पर गहन अध्ययन और चिंतन करके व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किए। वे एक समाज सुधारक, दार्शनिक, विचारक, अर्थशास्त्री थे। उन्होंने अर्थशास्त्र से संबंधित एक आधारभूत सिद्धांत दिया कि ''सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी उच्चतम नैतिक मापदंड के विरुद्ध नहीं जा सकता। अर्थशास्त्र को न्याय भावना से पूर्ण होना चाहिए, यदि वह न्याय भावना से पूर्ण है और उसे श्रेष्ठ अर्थशास्त्र के नैतिक आधार पर प्रतिष्ठित कर दिया तो आधुनिक युग की अनेक समस्याओं एंव दोषों को दूर किया जा सकता है।" गांधी जी अपने आर्थिक विचारों में जॉन रस्किन से अधिक प्रभावित थे। उन्होंने रस्किन की पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' का 'सर्वोदय' के नाम से अनुवाद किया और यही पुस्तक उनके आर्थिक सिद्धांत की आधारशिला है।

गांधी जी के अर्थशास्त्रीय विचारों को समझने से पूर्व हम अर्थशास्त्र का अभिप्राय समझते हैं। लियोन रॉबिंस के अनुसार "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो उद्देश्यों और विकल्पत: उपयोगी विरल साधनों के पारस्परिक संबंध के संदर्भ में मानव - व्यवहार का अध्ययन करता है।" भौतिक पदार्थों के उत्पादन, उपयोग, विनिमय तथा वितरण आदि के लिए किए गए प्रयासों एवं क्रियाओं को आर्थिक प्रयास कहा जाता है। इन आर्थिक प्रयासों के कार्यान्वयन के लिए विभिन्न प्रकार के नियम एवं सिद्धांत हैं। इन नियमों अथवा सिद्धातों का विवेचन करने वाले शास्त्र को अर्थशास्त्र कहा जाता है।

भारत और पश्चिमी देशों की अर्थनीतिक संरचना एवं उद्देश्य में अतंर है। पश्चिमी देशों की अर्थनीतिक सरंचना का लक्ष्य है - आवश्यकताओं की वृद्धि। इनके अनुसार जितनी अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग हम करते हैं, हमारे जीवन - निर्वाह का स्तर उतना ही ऊँचा होता है और भौतिक दृष्टि से हम उतने ही सभ्य और सुखी होते हैं। पश्चिमी समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद का स्वरूप यही है। उन देशों का जीवनादर्श 'अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाओं और दुनिया पर छा जाओ' रहता है। उनकी वृत्ति परिग्रह की रही है, इसके विपरीत भारत ने भौतिक विकास की ओर ध्यान न देकर जीवन - यापन हेतु आर्थिक प्रयासों के मूल में आध्यात्मिकता को विशेष महत्व प्रदान किया। गांधी जी की दृष्टि में समस्त आर्थिक विषमताओं की जड़ है आधुनिक सभ्यता की सदा बढ़ती जाने वाली 'और आगे ..... और आगे' की प्रवृत्ति। गांधी जी के जीवन का आदर्श है 'सरल जीवन और उच्च विचार'। वे गैर जरुरी आवश्यकताओं की वृद्धि के विरुद्ध हैं। उनका कथन है, जिस क्षण मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं में वृद्धि करना चाहता है, उसी क्षण वह अपनी कामनाओं का दास बन जाता है। सभी संतों ने उच्च स्वर में घोषित किया है कि मनुष्य अपना निकृष्टतम शत्रु भी बन सकता है और उत्कृष्टतम मित्र भी। स्वतंत्र रहना या दास बन जाना उसकी अपनी मुट्ठी में है।

गांधी जी ईशावास्योपनिषद् की उक्ति 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृध: कस्यस्विद् धनम्' पर विश्वास करते हैं।' उनका कहना है कि मानव शरीर का एकमात्र

भाषा ISSN 0523-1418

उद्देश्य सेवा है, भोग कदापि नहीं। सुखी जीवन का रहस्य त्याग में है। त्याग ही जीवन है। भोग का अर्थ तो मृत्यु है।[3] जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा करना मनुष्य का कर्तव्य है, परंतु भौतिक आवश्यकताओं की वृद्धि करते जाना और उन्हें प्राप्त करने में समाज के अन्य प्राणियों का अहित करना, यह कदापि नहीं होना चाहिए। 'समाज का अधिकतम कल्याण' यह ध्यान में रखते हुए भौतिक आवश्यकताओं की वृद्धि पर अंकुश लगाना चाहिए। देशभक्तों के सामने गरीबों की तरह रहने का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए एवं 1921 के अपने निश्चय के अनुसार एक वर्ष के भीतर स्वराज्य प्राप्त न कर सकने का शोक मनाने के लिए गांधी जी ने आधी धोती पहनना प्रारंभ कर दिया था। उनके शब्दों में 'अपने उत्तरदायित्व के पूरे बोध के साथ में यह सलाह देता हूँ अतएव उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए कम - से - कम 31 अक्तूबर तक मैं अपने टोपी - कुर्ता आदि का त्याग कर रहा हूँ और केवल आधी धोती तथा जब शरीर की रक्षा के लिए आवश्यक हो तो चादर का उपयोग कर रहा हूँ। चूँकि जिसको करने के लिए मैं स्वयं तैयार नहीं हूँ दूसरों को उसकी सलाह देने में मुझे सदा संकोच होता रहा है और चूँकि मैं उनका पथ - प्रदर्शन कर उनका रास्ता सुगम बनाने के लिए उत्सुक हूँ जो विदेशी वस्त्रों के त्याग के बाद विकल्प का निश्चय नहीं कर पा रहे हैं 'मैं यह साफ - साफ कह देना चाहता हूँ कि मेरी अपने सहयोगियों से यह अपेक्षा नहीं है कि वे टोपी - कुर्ते आदि का परित्याग कर दें, हाँ यदि वे अपने काम के लिए इसे आवश्यक समझते हों तो ऐसा कर सकते हैं।' इस प्रकार गांधी जी का मत है कि अमीर अपना अनावश्यक परिग्रह छोड़े तो गरीब को अपनी आवश्यक चीज आसानी से मिल जाए और दोनों संतोष का सबक सीखें। सही सुधार और अच्छी सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नहीं, वरन् सोच - समझकर स्वेच्छा से उसे कम करना है। जैसे - जैसे हम परिग्रह कम करते हैं, वैसे ही सच्चा सुख - संतोष बढ़ता है, सेवा की शक्ति बढ़ती है। उपयोगितावाद के सिद्धांत को नकारते हुए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि समाज में वास्तविक खुशी तभी हासिल की जा सकती है, जब पंक्ति में बैठे आखिरी व्यक्ति का भी कल्याण हो सके। सर्वोदय अर्थात् सबका उदय, सबका उत्कर्ष, सबका विकास हो। गांधी जी का सर्वोदय का विचार मानव सभ्यता के लिए प्रकाश स्तंभ है।

आर्थिक समानता, उत्पादन एवं वितरण का विकेंद्रीकरण - गांधी जी न केवल आर्थिक जीवन का महत्व स्वीकार कर उसे उचित स्थान देते हैं अपितु वे यह भी मानते हैं कि महत्वपूर्ण पदार्थों के उत्पादन एवं वितरण की पद्धतियों का नैतिक, राजनैतिक एवं सामाजिक संस्थाओं पर प्रबल प्रभाव पड़ता है।

इसलिए उन्होंने ऐसी आर्थिक व्यवस्था का विस्तृत प्रतिपादन किया जो उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति को समाप्त कर सकती है। वे कहते है कि उत्पादन के उपकरण सबको उसी प्रकार सुलभ होने चाहिए जिस प्रकार वायु या जल सबको सुलभ हैं या होने चाहिए। उनका कथन है ''राष्ट्र की सारी संपत्ति पर राष्ट्र का हक है और उसी के हितार्थ उसका उपयोग होना आवश्यक है ..... मैं यह चाहता हूँ कि वे जमींदार और राजा - महाराजा अपने लाभ और संपत्ति के बावजूद उन लोगों के समकक्ष बन जाएँ, जो मेहनत करके रोटी कमाते हैं। मजदूरों को भी महसूस कराना होगा कि मजदूर का काम करने की शक्ति पर जितना अधिकार है, मालदार आदमी का अपनी संपत्ति पर उससे भी कम है।''

आर्थिक समानता अहिंसापूर्ण स्वराज्य की मुख्य चाबी है। ''आर्थिक समानता का अर्थ है सबके पास समान संपत्ति का होना, यानि सबके पास इतनी संपत्ति होना, जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताएँ पूरी कर सकें।'' आर्थिक समानता के लिए काम करने का अर्थ है - पूंजी और मजदूरी के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओर जिन मुट्ठी भर पैसे वाले लोगों के हाथ में राष्ट्र की संपत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है उनकी संपत्ति को कम करना और दूसरी ओर से जो करोड़ों लोग आधे भूखे और नंगे रहते हैं, उनकी संपत्ति में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेहद अंतर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राज्य - व्यवस्था नहीं हो सकती।

गांधी जी ऐसी अर्थनीति चाहते हैं जिसमें कार्य का समान अवसर प्रदत्त होने के कारण जनता में उत्पादन का न्यायोचित वितरण हो, जिसमें व्यक्ति एवं परिवार अपनी जीविका पर समुचित नियंत्रण रख सके। जो मानव व्यक्तित्व के विकास के अनुकूल स्थिति की सृष्टि करे। इसी सिद्धांत पर गांधी जी का न्यासधारिता

का सिद्धांत आधारित है। न्यासधारिता के सिद्धांत के अनुसार संपत्ति का वास्तविक स्वामी समाज है, कोई व्यक्ति विशेष नहीं, क्योंकि सामाजिक व्यवस्था बने रहने से तथा संपूर्ण समाज के क्रियाकलापों से ही संपत्ति उत्पन्न होती है और उसमें वृद्धि होती है। अत: भूमिपति और पूंजीपति क्रमश: भूमि और पूंजी के वास्तविक स्वामी नहीं हैं। उन्हें स्वयं को संपत्ति का स्वामी न समझकर उसका केवल न्यासधारी समझना चाहिए। संपत्ति से उत्पन्न होने वाले धन का उतना ही भाग उन्हें ग्रहण करना चाहिए जितना उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त हो, शेष सभी धन उन्हें परिश्रम करने वाल किसानों, मजदूरों एवं कामगारों के लिए उपलब्ध करा देना चाहिए। यदि संपत्ति - स्वामी आवश्यकता से अधिक धन अपने लिए रखते हैं तो वे ठीक वैसा ही अपराध करते हैं जैसा कि न्यासधारी न्यास की संपत्ति हड़पने पर करते हैं। गांधी जी द्वारा प्रतिपादित न्यासधारिता का सिद्धांत कार्ल मार्क्स के वर्ग - संघर्ष के सिद्धांत से बिल्कुल भिन्न है। गांधी जी के अनुसार समाज को शोषक और शोषित दो वर्गों में विभक्त करना अनुचित है, क्योंकि संपूर्ण समाज के हित एक से ही होते हैं। अत: समस्त समाज के हितों की सिद्धि के लिए उसके सभी वर्गों में सहयोग होना वांछनीय है। समाज के विभिन्न वर्गों में सहयोग का आधार न्यासधारिता का सिद्धांत ही हो सकता है।

यंत्र की अपेक्षा श्रम को महत्व - पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होता है अधिक से अधिक उत्पादन तथा अधिक से अधिक लाभांश, अतिरिक्त मूल्य को हड़पना। पूंजीवाद में यंत्रीकरण तथा केंद्रीकरण के द्वारा उत्पादन किया जाता है। यंत्रों की सहायता से उत्पादन कुछ पूंजीपतियों के हाथ में केंद्रित हो जाता है। जो उत्पादन सहस्त्रों मनुष्यों को काम दे सकता था, उन्हें लाभ पहुँचा सकता था, उसके लाभांश का अधिकारी एक वर्ग विशेष बन जाता है, जिसके पास सारी पूंजी एकत्र हो जाती है और सहस्त्रों मनुष्य बेरोजगार हो जाते हैं। यह हिंसा है। जो लोग यंत्रों के संचालन का कार्य करते हैं उन्हें भी निश्चित वेतन नहीं दिया जाता है, फलत: उनको भी उनके श्रम का पूरा पारितोषिक नहीं दिया जाता, उनका भी शोषण किया जाता है। उत्पन्न सामग्री की खपत हेतु बिक्री केंद्रों और बाजारों की खोज की जाती है। इसके लिए शक्ति बल और पशुबल का प्रयोग किया जाता है और निर्बल देशों को परास्त करके, उन पर शासन करने की युक्ति थोपी जाती है। इस प्रकार धन और सत्ता को कुछ मुट्ठी भर मनुष्य हथिया कर बैठ जाते हैं, यह शोषण है, अन्याय है और है सामाजिक अधर्म।

यंत्रीकरण बेकारी को बढ़ावा देता है। यंत्रों पर काम करने वाले श्रमिकों का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। एक ही स्थान पर एक सा काम करते-करते वे आत्मविश्वास खो बैठते हैं बहुत से नैतिक एवं वीरोचित गुणों से हाथ धोना पड़ता है। 'हिंद स्वराज' में यंत्रों के विषय में उनका स्पष्ट कथन है कि ''यंत्र बिल के समान हैं, जिसमें एक से लेकर सैंकड़ों साँप रह सकते हैं। जहाँ यंत्र हैं वहीं बड़े-बड़े नगर हैं, ट्राम और रेलें हैं, बिजली की रोशनी है।'' वे आगे कहते हैं, ''ईमानदार चिकित्सक यह बतायेगा कि जहाँ यातायात के कृत्रिम साधन बढ़े हैं वहाँ जनता का स्वास्थ्य गिरा है। यंत्रों के संबंध में मैं एक भी अच्छी बात नहीं बता सकता, जबकि उनकी बुराइयों को प्रदर्शित करने के लिए किताबें लिखी जा सकती हैं।[5] यंत्रीकरण का दुष्परिणाम यह होता है कि अधिक उत्पादन होने से उनकी बिक्री हेतु अन्य देशों को व्यापारिक केंद्र बनाकर उन्हें पराधीन बना लिया जाता है। वस्तुओं की बिक्री की प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ जाती है कि बृहद् उद्योग वाले देशों में भयंकर युद्ध छिड़ जाते हैं जिनसे जन - धन की अपार क्षति होती है। जो यंत्रीकरण और केंद्रीकरण बेकारी, भुखमरी, अनैतिकता को प्रोत्साहन और युद्धों का सूत्रपात करें, पराधीनता दे, पूंजी को मुट्ठी भर लोगों के हाथों में सौंप दे और मानवीय मूल्यों का ह्रास करे, वह अत्यंत भयंकर है, विनाशकारी है। अंध मशीनीकरण के विरोध में उनकी मान्यता है ''मशीनें मनुष्य को गुलाम बना देती हैं, इससे दस्तकारों के हाथ का हुनर छिन जाता है और पूंजीपतियों के हाथों में ही पूरी अर्थव्यवस्था का नियंत्रण हो जाता है। राष्ट्रीय आय तो बढ़ी है, किंतु अमीरी एवं गरीबी के बीच की खाई निरंतर ही बढ़ती जा रही है।''

यंत्रों के दुष्परिणाम को देखते हुए गांधी जी श्रम को महत्व देते हैं। गांधी जी ने श्रम के महत्व का मूल सिद्धांत गीता से प्राप्त किया। गीता के तृतीय अध्याय में कहा गया कि जो बिना यज्ञ किए भोजन करता है वह चुराया हुआ अन्न खाता है -

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता:।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुड्.क्ते स्तेन एव स:।

गांधी जी का कहना है कि यहाँ यज्ञ का अर्थ

केवल जीविकार्थ श्रम ही हो सकता है। जब प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह सामंत हो, पूंजीपति हो, किसान हो या मजदूर, जीविकार्थ श्रम का दायित्व स्वीकार कर लेगा तब वर्गो का विद्वेषजन्य विभेद नष्ट हो जाएगा। गांधी जी का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं का संयमन करना चाहिए, ताकि उसके द्वारा अर्जित पदार्थ समाज के अन्य व्यक्तियों को भी दिए जा सकें। अतएव वह शारीरिक श्रम करना आवश्यक बताते हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति स्वावलंबी होकर अपना एवं समाज का हित कर सकता है।

विकेंद्रीकरण और चरखा - औद्योगीकरण के चलते पूंजीपति वर्ग द्वारा अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने के लिए यंत्रों के अधिकाधिक प्रयोग के कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ी। पूंजी एक वर्ग विशेष के पास केंद्रित हो गई, गांधी जी ने इस समस्या को समझा और समाधान रूप में चरखे पर आधारित समाज-व्यवस्था की अवधारणा की जो विकेंद्रीकृत आर्थिक संगठन का प्रतीक है, जो पूंजीवादी शोषण की समाप्ति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की संरक्षा एवं बेरोजगारी का उन्मूलन करने में समर्थ है। सन् 1940 में गांधी जी ने घोषणा की, ''यदि मैं अपने दृष्टिकोण से देश को सहमत कर सका तो भावी समाज - व्यवस्था मुख्यत: चरखे और उसके आनुषंगिक तत्वों पर आधारित होगी।'' 'चरखा पिछड़ेपन का प्रतीक है', इस गलतफहमी को दूर करने के लिए उन्होंने कहा, ''ग्रामों का कल्याण करने वाले समस्त तत्व इसके अंतर्गत होंगे, ... ग्रामीण हस्तशिल्पों के साथ ही साथ विद्युत, पोतनिर्माण, लौह उद्योग, यंत्र निर्माण आदि की अवस्थिति की भी मैं कल्पना करता हूँ। किंतु निर्भरता का क्रम उलट दिया जायेगा। अब तक औद्योगीकरण की योजना ग्रामीण शिल्पों के विनाशार्थ की गयी है, भावी राज्यों में ये ग्रामों एवं उनके शिल्पों के उपकारक होंगे।[8]

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं - भोजन, वस्त्र एवं मकान गांधी जी की इच्छा थी कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनता अधिक से अधिक आत्मनिर्भर हो, यद्यपि स्वदेशी की चेतना का उद्भव विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के परिणामस्वरूप हुआ और इसी के मूर्त रूप में चरखे का देशव्यापी प्रचार किया गया तथापि बाद में चरखा गांधी जी के समस्त कार्यक्रमों का केंद्र एवं उनके समग्र दर्शन का प्रतीक बन गया।

ग्रामीण लघु कुटीर उद्योगों पर बल - गांधी जी जान गए थे कि विदेशी यंत्रों के आक्रमण के कारण कुटीर उद्योग का विनाश ही भारतीयों की गरीबी का सबसे बड़ा कारण है। उन्होंने 'हिंद स्वराज' में लिखा है ''जब मैंने श्रीदत्त की इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया पढ़ी, मैं रोया था और अब भी जब मैं उसको याद करता हूँ, मेरा दिल दुखी हो जाता है। यंत्रों ने ही भारत को गरीब बना दिया। मैनचेस्टर ने हमारी कितनी क्षति की है, इसका अनुमान कर पाना कठिन है। मैनचेस्टर के कारण ही भारतीय हस्तशिल्प विलुप्तप्राय हो गया।''[9] गांधी जी का विचार था कि आर्थिक गुलामी और पिछड़ेपन से मुक्ति तभी मिल सकती है जब गांवों में रहने वाले लाखों लोगों का आर्थिक पुनरूत्थान हो। इस नीति के तहत उन्होंने ग्रामीण लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर बल दिया ताकि गाँवों के सीधे-सादे लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके।

गांधी जी आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में विकेंद्रीकरण के समर्थक रहे। वे ग्राम स्वराज द्वारा गामीण विकास के स्वप्न को साकार करना चाहते हैं। भारत की अस्सी प्रतिशत ग्रामीण जनता कृषि आधारित जीवन व्यतीत करती है इसलिए उन्होंने 'गाँवों की ओर लौटो' का नारा दिया। गांधी जी का हर कार्य और उपाय भारत की गरीबी हटाने तथा हर आँख का आँसू पोंछने पर केंद्रित रहा। उनका कथन है'' "असली स्वराज कुछ लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त करने से नहीं आएगा, बल्कि यह सभी के द्वारा इसकी क्षमता हासिल कर लेने से ही आएगा।" गांधी जी की दृष्टि में वास्तविक भारत गांवों में बसता है। गांवों में रह रहे करोड़ों लोगों का जीवन - स्तर सुधारने के उद्देश्य से ही उन्होंने स्वराज्य - प्राप्ति का बीड़ा उठाया। 26 मार्च, 1931 को 'यंग इंडिया' में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं ''मैं स्वराज्य की प्राप्ति के लिए कार्य कर रहा हूँ, उन करोड़ों बेरोजगार और मेहनतकश लोगों के लिए, जिन्हें दो जून का खाना भी नसीब नहीं हो पा रहा और थोड़े से नमक के साथ रोटी खाकर गुजारा कर रहे हैं।" ''गांधी जी ने खेतों में काम करने वाले कृषि मजदूरों, कारीगरों तथा उपेक्षित गाँव वासियों की दशा सुधारने के लिए विभिन्न कुटीर उद्योगों तथा आर्थिक कार्यक्रमों को बढ़ावा देने की बात कही। गांधी जी का आर्थिक उत्थान पर आधारित चिंतन उनके शब्दों में ''स्वतंत्रता नीचे से प्रारंभ होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक गाँव का एक गणराज्य अथवा पंचायत का राज्य होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसके लिए प्रत्येक गाँव को

आत्मनिर्भर होना होगा। अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी करनी होंगी, ताकि वह अपना पूरा प्रबंध स्वयं कर सके। स्वदेशी और ग्रामोद्योग गांधी जी की आर्थिक क्रांति के ध्वज थे। उनका कथन है ''आर्थिक विकास के लिए प्रकृति में निहित जीवन के नियमों का पालन करना चाहिए। यह पृथ्वी प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है, लेकिन मनुष्य के लोभ को नहीं।''

वे गांवों को आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं। ग्राम इकाई को भी वह सर्वांगरुपेण स्वावलंबी बनाना चाहते हैं। सभी ग्रामवासी घरेलू धंधों, कुटीर उद्योगों द्वारा तथा विकेंद्रित उद्योगों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन कर सकें और स्वावलंबी जीवन यापन करें। वह व्यक्ति और ग्राम को संयोजित कर देते हैं। इस प्रकार गांधी जी का अर्थव्यवस्था संबंधी चिंतन व्यक्ति से समाज, समाज से गाँव, गाँव से नगर, नगर से देश तक को स्वावलंबन, शारीरिक श्रम तथा एकता के सूत्र में जोड़ देता है।

संदर्भ

1. हरिजन, 1 फरवरी, 1942
2. ईशावास्योपनिषद्, 1
3. हरिजन, 24 फरवरी, 1946
4. यंग इंडिया, 29 सितंबर, 1921
5. हिंद स्वराज, पृष्ठ 153 - 154
6. श्रीमद् भगवद्गीता, अध्याय 3, श्लोक 12
7. फॉम यरवदा मंदिर, पृष्ठ 54
8. हरिजन, 27 जनवरी, 1940
9. हिंद स्वराज, पृष्ठ 148

एसोसिएट प्रोफेसर, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

युग - युग की संजीवनी हैं गांधी

मृगांक मलासी

छोटा कद, दुबला शरीर, नंगे पैर, माथे पर सफेद टोपी, देखने में हाड़ - माँस का पुतला लेकिन ये केवल शरीर है जिसे कितना भी कठोर या मजबूत बनाइए उसकी परिणति दो लकड़ी और एक माचिस की तीली भर से होने वाली राख से अधिक कुछ भी नहीं है। लेकिन रुकिए अभी आपने मात्र शारीरिक ढाँचे को एक पंक्ति में समा लिया है लेकिन विचार, संकल्प का वर्णन करना कई महाकाव्यों में भी संभव नहीं है। जी हाँ ये बात गुजरात के, नहीं - नहीं संपूर्ण भारत वर्ष के और थोड़ा टटोलिए तो तो समूचे विश्व में विद्यमान हर मजदूर, किसान, पीड़ित, शोषित जनों के, हर किसी के आदरास्पद और प्रेरणास्रोत महात्मा गांधी के विषय में हो रही है। उनके द्वारा किए गए कार्य या आंदोलन या समाज सुधार के कार्यों से किंचित पृथक् हटकर उनके जीवन दर्शन और उनके स्वप्न के भारत पर दृष्टिपात करते हैं। वे कैसा भारत चाहते थे? उनके लिए स्वराज्य के क्या मायने थे?

गांधी के लिए स्वराज्य के क्या मायने थे, इससे पूर्व स्वराज्य शब्द पर विचार करना उचित होगा। गांधी के अनुसार स्वराज्य एक पवित्र शब्द है, यह एक वैदिक शब्द है जिसका अर्थ आत्म - शासन और आत्म - संयम है। आंग्लभाषा में वर्णित 'इंडिपेंडेंस' अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी या स्वच्छंदता का द्योतक है जबकि स्वराज्य शब्द इस अर्थ को मान्यता नहीं देता।

गांधी जी कहते हैं कि स्वराज्य से मेरा आशय लोक- संम्मति के अनुसार होने वाला भारतवर्ष का शासन से है। इसी स्वराज्य शब्द को और व्यापकता देते हुए गांधी ने कहा 'मेरा स्वराज्य तो हमारी सभ्यता की आत्मा को अक्षुण्ण रखने से है। मैं बहुत सी नई चीजों को लिखना चाहता हूँ परंतु वे तमाम हिंदुस्तान की स्लेट पर लिखी जानी चाहिए। मैं पश्चिम से भी खुशी से उधार लूँगा, पर तभी जब कि मैं उसे अच्छे सूद के साथ वापस कर सकूँ।'

ऐसे बहुत से कारण है कि गांधी नाम सुनते ही भारतवर्ष ही नहीं वरन् समूचा विश्व अपना शीश आदरपूर्वक झुका लेता है। गांधी बौद्धिक नहीं थे, न ही कोई साधु-संत या ज्ञानी बनने की लालसा उनके अंदर थी। उनकी साधना गुण की थी ही नहीं, वे सदैव नितांत निर्गुण बने रहना चाहते थे। गांधी ने किसी नवीन संप्रदाय की नींव नहीं रखी, कोई साधना या दर्शन नहीं दिया अपितु सर्वांशत: स्वयं की ही आहुति दे दीं 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है' के उद्घोषक गांधी का जीवन ही उनका जीवन - दर्शन है। वहाँ अतीत के प्रति न तो अंध आसक्ति है और न ही अविवेकपूर्ण परित्यागभाव वरन् अतीत मे जो भी श्रेष्ठ है, हितकर है और इन्हीं कारणों से सत्य एवं सनातन है उसके आधार पर भविष्य का निर्माण।

गांधीवाद या उनके द्वारा स्वीकृत दर्शन पर बात करने से पूर्व यह जान लेना प्रासंगिक है कि दर्शन तत्वत: तत्वांवेषण है। दर्शन को कोई खगोल या भूगोल अपनी परिधि में बाँधकर नहीं रख सकता। जीवन और जगत् की बौद्धिक और कभी - कभी आत्मिक भी, खँगाल ही दर्शन है। यदि वेद की ऋचाएँ श्रुति परंपरा से प्राप्त प्रथम अभिव्यक्ति है तो शंकराचार्य और अभिनवगुप्त जैसे आचार्यों का आविर्भाव प्राचीन भारतीय दर्शन का

स्वर्णमयी पर्यवसान माना जाएगा। यद्यपि इसके पश्चात् कई महानुभावों ने समय - समय पर इस विरासत को स्वमेधा से पल्लवित किया। भक्ति से संलिप्त ये चिंतन धारा राजनैतिक पराजय से क्षुब्ध होकर वैराग्य की ओर भी अग्रसर हुई। वस्तुतः विज्ञान के इस उत्कर्ष युग में दर्शन की जो भयानक दुर्दशा हुई है वह दर्शन की उपयोगिता पर विराट् प्रश्न चिह्न है। गांधी का दर्शन इन सबसे अलग अपना वैशिष्ट्य रखता है।

गांधी द्वारा प्रयुक्त 'सर्वोदय' शब्द 'सर्वभूतहितेरताः' की भारतीय कल्पना, सुकरात की साहित्य साधना, बाइबिल से प्रभावित रस्किन की अंत्योदय की अवधारणा का समन्वित रूप है। प्राचीन वैदिक संस्कृत साहित्य में यद्यपि यह शब्द नहीं मिलता तथापि उसकी अवधारणा वहाँ व्याप्त है। विक्रम संवत् सातवीं शताब्दी के जैन दार्शनिक समंतभद्र ने 'युक्त्यानुशासन' की 61वीं कारिका में 'सर्वोदय तीर्थमिदं तवैव' का उल्लेख करते हुए महावीर के अनेकान्तात्मक प्रकथन को ही 'सर्वोदय तीर्थ' माना है। गांधी ने किसी पंथ संप्रदाय या वाद से स्वयं को पृथक् करते हुए कहा था कि गांधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है और मैं अपने पीछे कोई पंथ या संप्रदाय नहीं छोड़ना चाहता हूँ।' इस कथन से गांधी ने मत - मतांतर से बचने के लिए विनम्रतापूर्वक बुद्ध के मौनावलंबन की भाँति एक नई परंपरा बनायी लेकिन आज सर्वोदय एक समर्थ जीवन दर्शन ही नहीं अपितु ज्ञानमीमांसा, तत्वमीमांसा आदि की संभावनाओं से परिपूर्ण एक समग्र दर्शन के रूप में उपस्थित है। विचार जब किसी व्यक्ति की मर्यादा में कैद हो जाता है, तो वह 'वाद' बन जाता है और विचार जब किसी धार्मिक आग्रह पर सवार हो जाता है तो संप्रदाय बन जाता है। इस युग का यक्ष प्रश्न विचार की स्वतंत्रता है। यही कारण है कि गांधी के न चाहने पर भी उनके द्वारा स्वीकृत या बतलाई गई बातें आज गांधीवाद के रूप में सबके सम्मुख हैं।

सर्वविदित है कि गांधी अहिंसा के पक्षधर थे। उनका मानना था कि जिस प्रकार हिंसा का जन्म मानव मस्तिष्क में होता है, उसी प्रकार अहिंसा का भी जन्म मानव - मस्तिष्क में ही होगा। और अहिंसा को मनसा - वाचा - कर्मणा तीनों प्रकार से युक्त होना चाहिए।

वर्तमान राजनीति की बात की जाए तो कहना ही होगा कि यह शब्द आज अपनी आभा ही खो चुका है। समाज के बड़े भाग की दृष्टि में यह सिद्धांतों से अधिक अवसरवादिता का ही दूसरा नाम हो गया है। संभवतः राजनीति का अपकर्ष आज से शताब्दियों पहले हो चुका था तभी तो भर्तृहरि 'वारांगनेव नृप अनेक रूपा' कहकर गणिका से इसकी तुलना करने में नहीं हिचकते। राजनीति में धर्म तो नदारद है पर धर्म की राजनीति चारों ओर व्याप्त है। राजनीति की समस्या मूलतः एक नैतिक समस्या या मूल्यों की समस्या है जिसे ऑर्नल्ड ब्रेचट ने वैज्ञानिक मूल्यात्मक सापेक्षवाद (Scientific value Relativism) कहा है। इन सबसे विपरीत गांधी की राजनीति का मुख्य आकर्षण सत्य और अहिंसा रहा है जिसने समस्त विश्व को प्रभावित किया। चार्ल्स बाउल्स जैसे कूटनीतिज्ञ मानते हैं कि सत्य - अहिंसा के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। जापान के प्रसिद्ध विद्वान यू. सूकी शुरूमी गंभीर से गंभीर परिस्थिति में गांधी की राजनैतिक सूझ-बूझ एवं सटीक निर्णय से काफी प्रभावित रहे। जनरल स्मट्स जैसे राजनेता ने भी यह स्वीकारा है कि गांधी की राजनैतिक व्यूह रचना वहाँ भी सफल हो जाती थी जहाँ समझाने - बुझाने एवं तर्क आदि करने का सामान्य तरीका विफल हो जाता था। आज तो गांधी का विश्वव्यापी प्रभाव है और आज तो उनके उपदेशों की सार्थकता परमाणु शक्ति से संपन्न राज्यसत्ता के प्रति प्रतिकार एवं असहयोग करने में प्रकट हो रही है। धूर्तता और प्रवंचना पर आधारित राजनीति वास्तविकता में अधिकाधिक धूर्तता एवं प्रवंचना फैलाएगी। घृणा से घृणा और हिंसा से हिंसा का फैलना स्वाभाविक है। इसलिए राजनीति के आध्यात्मीकरण के अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरा उपाय नहीं है। अन्यथा जैसा अरस्तू ने कहा ही है कि राजनीति सचमुच राजनीति रह नहीं पाएगी। हमें तो अरस्तू से भी आगे जाकर यह कहना होगा कि यदि हम राजनैतिक क्रिया-कलापों को नियंत्रित करने के लिए किसी स्थाई नैतिक मूल्य की स्थापना नहीं करेंगे तो मानवता के संपूर्ण विनाश का ही खतरा उत्पन्न होगा। गांधी ने शायद इसी भावना से कहा था कि परमाणु युग में धर्मविहीन राजनीति की कल्पना ही भयावह है। धर्मविहीन राजनीति वस्तुतः मौत का एक फंदा है। वस्तुतः महात्मा ने धर्म को निर्जीव कर्मकांड न मानकर इसे व्यष्टि से लेकर समष्टि तक के जीवन की अनन्य जीवनीशक्ति के रूप में देखा था। यथार्थ धर्म वस्तुतः न्याय पर टिका हुआ है और सम्पूर्ण सामाजिक संबंधों में इसी न्याय के सिद्धांत को लागू करना धर्म का लक्ष्य भी है। गांधी के लिए राजनीति में ईश्वर लाने का अर्थ है - सत्य और अहिंसा का पालन करना।

गांधी की राजनीति किसी विशेष व्यक्ति या समुदाय के लिए नहीं थी अपितु उनका मानना था कि राजनीति तो सामाजिक शक्ति का विज्ञान है, किंतु शक्ति तो मानव की प्रगति रूपी साध्य की प्राप्ति के लिए साधन मात्र है। मानव ही परम पुरुषार्थ है इसलिए राजनीति को मानव के संदर्भ में ही राज्य का विज्ञान कहना अधिक समीचीन होगा। किंतु दुर्भाग्यवश आज मानव गौण और राज्य प्रधान हो गया है। प्रभुसत्ता तो राज्य में निहित है अत: व्यक्ति की कोई परवाह नहीं करता। प्रजातांत्रिक समाजवादी राज्य भी आज महादैत्य के सदृश दिखाई देते हैं। गांधी ने राज्य शक्ति की वृद्धि के प्रत्येक चरण को अत्यंत आशंका से देखा था, क्योंकि प्रकटत: तो सर्वकल्याणकारी राज्य लोकमंगल के नाम पर विषमता एवं शोषण मिटाने के लिए जितना प्रयत्न करता है उससे व्यक्ति के अस्तित्व का राज्य में लोप हो जाता है। किंतु यह ध्यान देने की बात है कि मंगलकारी या समाजवादी राज्य – व्यवस्था की यह आलोचना उनके अंतर्निहित शुभमूल्यों का तिरस्कार नहीं है, बल्कि आज उन मूल्यों को विकेंद्रीकरण एवं कर्तव्यपालन के व्यापक संदर्भ में फिर से व्याख्यायित करना है। राज्य के आकार एवं उसकी शक्ति में आधुनिक युग में जो भयानक वृद्धि हुई है उससे व्यक्ति नगण्य सा हो गया है।

आज हम देख सकते हैं कि संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को हम किसी भी हाल में छोड़ने को तैयार नहीं हैं। उदाहरणार्थ- आरक्षण को देखा जा सकता है कि आज आरक्षण से समृद्ध हुआ व्यक्ति उस आरक्षण का लाभ पीढ़ी दर पीढ़ी को पहुँचा रहा है परंतु उन लोगों के लिए छोड़ने को तैयार नहीं जिन्हें वास्तव में इसकी आवश्यकता है। राजनेता भी इसे हथियार बनाकर जरूरतमंद को इससे दूर रखते हैं। कई बार जनमानस भी बिना तथ्यों को जाने राजनीति का शिकार होकर देश की धरोहर को ही नुकसान पहुँचाते हैं। समय – समय पर अधिकारों में तो संशोधन होते रहे हैं परंतु कर्तव्यों की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। राष्ट्रगान पर 52 सेकेण्ड खड़े होना भी कुछ लोगों को अखर जाता है। राष्ट्रीयपर्व पर तिरंगे के स्थान पर धार्मिक झंडे फहराने पर कतिपय लोग अपनी शान समझते हैं। कई गणमान्य लोग ऐसे भी हैं जो देश के शीर्ष पदों में बैठकर भी तिरंगे के सम्मान में झुकना हेय समझते हैं। क्या यही है वो भारत जिसे गांधी ने संजोने का स्वप्न देखा था। गांधी अधिकारों के साथ कर्तव्यों पर भी जोर देने को कहते हैं इसी से समाज का स्थायित्व रह सकता है। गांधी के अनुसार कर्तव्यपालन ही अधिकार का मुख्य स्रोत है। इसलिए समाजवाद को भी स्वैच्छिक होना चाहिए। समाजवाद वस्तुत: सहजीवन की पद्धति पर आधारित जीवन पद्धति है। जितना ही सहजीवन अधिक होगा, समाज में तनाव, उत्पीड़न और शोषण उतना ही कम होगा और समाजवाद अधिक होगा।

सत्ता की राजनीति की अनेक समस्याएँ भी हैं। कि सत्ता प्राप्ति की यह भावना अच्छे से अच्छे लोगों को क्यों दूषित कर देती है? राजनीति के नाम पर यदि कोई सत्ता अपने हाथों में लेता है तो फिर वह दूसरों को उन्हीं अधिकारों से क्यों वंचित करना चाहता है। इससे यही प्रकट होता है कि सत्ता – अधिग्रहण ही राजनीति का मर्म बिंदु है। किंतु यह स्पष्ट है कि राज्य की सत्ता दंड और हिंसाशक्ति पर ही आधारित है। इसलिए राज्य को संगठित और केंद्रित हिंसा का प्रतीक मानना ठीक है। राज्य के अस्तित्व को सचमुच हिंसा से अलग किया ही नहीं जा सकता। किंतु यह समझना होगा कि हिंसाशक्ति पर किसी दलविशेष का एकाधिकार नहीं है। इसलिए सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष अनिवार्य है, जो कभी समाप्त नहीं होता। हिंसा प्रतिहिंसा को जन्म देती है और फिर हिंसा – प्रतिहिंसा का क्रम चलता रहता है। हिंसा के द्वारा एकाध रावण और कंस पैदा होते रहेंगे। इसीलिए पूंजीवादी को राज्य की हिंसा शक्ति से उन्मूलन के बदले स्वैच्छिक संरक्षण, रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा संयमित एवं नियंत्रित किया जा सकता है। रचनात्मक कार्यक्रमों को यदि हम व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह अहिंसक समाजवाद की कुंजी मालूम पड़ेगी। इसलिए अंतत: हमें राज्य सत्ता को न्याय और सत्य पर खड़ा करना ही होगा। राज्य शक्ति को नैतिकता का अधिष्ठान चाहिए तभी उसके दुरुपयोग की कम से कम संभावना होगी। कहा गया है- प्रभुता पाई काहू मद नाहीं। प्रभुता का दुरुपयोग स्वाभाविक है इसीलिए परम प्रभुता के हाथों परम दुरुपयोग होना भी स्वाभाविक होगा। इस दृष्टि से भी राज्यशक्ति नैतिक शक्ति से अनुशासित एवं नियंत्रित रहनी चाहिए। इस प्रकार राजनीति का नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से संबंध अहिंसक राजनीति या लोकनीति का आधार है। यह बात भी स्पष्ट होनी चाहिए कि कोई भी राज्य अहिंसक नहीं हो सकता, क्योंकि राज्य-सत्ता दंडशक्ति पर आधारित रहती है अत: अहिंसक राज्य व्यवस्था वस्तुत: शासनमुक्त समाज के रूप में होगी। इस तरह अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्गुण एवं सदाचार की चीज नहीं है, यह एक सामाजिक

एवं राष्ट्रीय सद्‌गुण है। मानव - समाज मूलत: अहिंसा पर ही आधारित है और अहिंसा से ही नियमित और संयमित होता है। बहुसंख्यक लोगों की वृत्ति भी अहिंसक ही है। किंतु इतिहास की यह विचित्र पहेली है कि यद्‌यपि मानव - मन की आकांक्षा शांति की है, फिर भी आयोजन युद्‌ध का है। अहिंसा मन में है, किंतु शासन - तंत्र हिंसा पर प्रतिष्ठित है। हिंसा हमारे मन में इतना बद्‌धमूल हो गई है कि यह जानते हुए कि हिंसा हजारों बार विफल हुई है, फिर भी हम हिंसा में विश्वास रखते हैं। हिंसा का उन्मूलन हमारे वश में नहीं, इसलिए आवश्यक यही है कि इस हिंसाशक्ति को संयमित और नियंत्रित कर इसे हम रचनात्मक दिशा प्रदान करें। हिंसा का विकल्प खोजना ही होगा और वह विकल्प हिंसाशक्ति के समान ही प्रभावशाली, सक्षम एवं समर्थ हो। इस प्रकार की वैकल्पिक शक्ति स्वाभाविक रूप से हिंसाशक्ति की विरोधी एवं दंडशक्ति से भिन्न होगी।

गांधी जी यथार्थ के प्रखर पुरोधा थे वे बिना किसी राग - लपेट के अपनी बात कहते थे। अहिंसक अर्थ व्यवस्था के संबंध में उनका विचार था कि - 'मैं कहना चाहता हूँ, जिसकी मुझे अपने किसी तात्कालिक उपयोग के लिए जरूरत नहीं है, तो मैं उसकी किसी दूसरे से चोरी ही करता हूँ। यह प्रकृति का एक निरपवाद बुनियादी नियम है कि वह रोज केवल उतना ही पैदा करती है जितनी हमें चाहिए। और यदि प्रत्येक व्यक्ति उतना ही ले जितना उसे चाहिए तो दुनिया में गरीबी न रहे, कोई आदमी भूखा न मरे। मैं समाजवादी नहीं हूँ और जिनके पास संपत्ति का संचय है मैं उसे छीनना नहीं चाहता, लेकिन मैं जरूर कहता हूँ कि हममें से जो लोग प्रकाश की खोज में प्रयत्नशील हैं, उन्हें व्यक्तिगत तौर पर इस नियम का पालन करना चाहिए। मैं किसी से उसकी संपत्ति छीनना नहीं चाहता, क्योंकि वैसा करूँ तो मैं अहिंसा के नियम से च्युत हो जाऊँगा। यदि किसी के पास मेरी अपेक्षा ज्यादा संपत्ति है तो भले ही रहे लेकिन यदि मुझे अपना जीवन नियम के अनुसार गढ़ना है तो मैं ऐसी कोई चीज नहीं रख सकता जिसकी मुझे जरूरत नहीं।'

गांधी कहते हैं कि, 'मुझे स्वीकार करना चाहिए मैं अर्थविद्‌या और नीतिविद्‌या में न सिर्फ कोई स्पष्ट भेद नहीं करता बल्कि भेद ही नहीं करता। जिस अर्थविद्‌या से व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि पहुँचती हो, उसे मैं अनीतिमय और इसलिए पापपूर्ण कहूँगा।' उदाहरण के लिए जो अर्थविद्‌या किसी देश को किसी दूसरे देश का शोषण करने की अनुमति देती है वह अनैतिक है। जो मजदूरों को उचित मेहनताना नहीं देते और उनके परिश्रम का शोषण करते हैं, उनसे वस्तुएं खरीदना या उन वस्तुओं का उपयोग करना पापपूर्ण है।

महात्मा गांधी ने आजीवन मजदूर, गरीब, शोषितों, वंचितों के हित की ही बात की। उनके सपनों के भारत में रामराज्य की कल्पना है। जहाँ न कोई शोषित हो न वंचित हो। वे प्रजातंत्र के पक्षधर हैं उसमें भी समान नीति ही हर किसी के लिए चाहते हैं जहाँ मनसा वाचा कर्मणा किसी भी प्रकार से दुराचार न हो, हिंसा न हो। उनका प्रजातंत्र भारत से विस्तार पाकर समस्त विश्व को स्वयं में आत्मसात् कर लेता है। यही कारण है कि गांधी का दर्शन उनके न चाहने पर भी एक नूतन वाद, जिसे गांधीवाद के नाम से अभिहित किया जाता है, का रूप धारण कर लेता है।

गांधी का स्वराज्य आर्थिक स्वतंत्रता पर भी बल देता है। वे कहते हैं कि स्वराज की मेरी कल्पना के विषय में किसी को कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए उसका अर्थ विदेशी नियंत्रण से पूरी मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता है। इसके दो दूसरे उद्‌देश्य भी हैं; एक छोर पर है नैतिक और सामाजिक उद्‌देश्य और दूसरे छोर पर इसी कक्षा का दूसरा उद्‌देश्य है धर्म। यहाँ धर्म शब्द का सर्वोच्च अर्थ अभीष्ट है। उसमें सनातन धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म आदि सबका समावेश होता है, लेकिन वह इन सबसे ऊँचा है। ..... इसे हम स्वराज्य का समचतुर्भुज भी कह सकते हैं; यदि उसका एक भी कोण विषम हुआ तो उसका रूप विकृत हो जाएगा।

गांधी अपनी स्वराज्य विषयक अवधारणा के संबंध में कहते हैं कि मेरी कल्पना का स्वराज्य तभी आयेगा जब हमारे मन में यह बात अच्छी तरह से जम जाए कि हमें अपना स्वराज्य सत्य और अहिंसा के शुद्‌ध साधनों द्‌वारा ही हासिल करना है, उन्हीं के द्‌वारा हमें उसका संचालन करना है, उन्हीं के द्‌वारा हमें उसे कायम रखना है। सच्ची लोकसत्ता या जनता का स्वराज्य कभी भी असत्यमय और हिंसक साधनों से नहीं आ सकता। कारण स्पष्ट और सीधा है: यदि असत्यमय और हिंसक उपायों का प्रयोग किया गया तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि सारा विरोध या तो विरोधियों को दबाकर या उनका नाश करके खत्म कर दिया जाएगा। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा नहीं हो सकती। वैयक्तिक स्वतंत्रता को प्रकट होने का पूरा

अवकाश केवल विशुद्ध अहिंसा पर आधारित शासन में ही मिल सकता है।

गांधी एक ऐसा समाज चाहते थे जहाँ किसी प्रकार का भेद न हो। वे कहते हैं कि मैं ऐसी स्थिति लाना चाहता हूँ जिनमें सबका सामाजिक दरजा समान माना जाए। मजदूरी करने वाले वर्गों को सैकड़ों वर्षों से सभ्य समाज से अलग रखा गया है और उन्हें नीचा दरजा दिया गया है। उन्हें शूद्र कहा गया है और इस शब्द का यह अर्थ किया गया है कि वे दूसरे वर्गों से नीचे हैं। मैं बुनकर, किसान और शिक्षक के लड़कों में कोई भेद नहीं होने दे सकता।

यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है तो उसे बहुत सी चीजों का विकेंद्रीकरण करना पड़ेगा। केंद्रीकरण किया जाय तो फिर उसे कायम रखने के लिए और उसकी रक्षा के लिए हिंसाबल अनिवार्य है। जिनमें चोरी करने या लूटने के लिए कुछ है ही नहीं ऐसे सादे घरों की रक्षा के लिए पुलिस की जरूरत नहीं होती लेकिन धनवानों के महलों के लिए अवश्य बलवान पहरेदार चाहिए जो डाकूओं से उनकी रक्षा करें। यही बात बड़े - बड़े कारखानों की है। गांवों को मुख्य मानकर जिस भारत का निर्माण होगा वही भारत शहर - प्रधान भारत की अपेक्षा अधिक समृद्धशाली होगा, जल, स्थल और वायुसेनाओं से सुसज्जित होगा जिससे विदेशी आक्रमणकारियों का खतरा कम होगा।

राजनीति में शुचिता के प्रबल पुरोधा गांधी के नाम पर ही आज राजनीति करते हुए इस देश के महनीय दलों को देखा जा सकता है। पर उनके आचरण को कोई अपनाने को तैयार नहीं। गांधी की साधारणता के कई उदाहरण हैं। गांधी ने 1915 में भारत लौटाने के पश्चात् कभी भी पहले दर्जे में रेल यात्रा नहीं की। तीसरे दर्जे को हथियार बनाकर रेलवे का जितना राजनैतिक उपयोग गांधी ने किया उतना किसी अन्य ने नहीं। जनमानस के बीच में जाकर उन्होंने उस समस्त रिक्तस्थान को पूरा किया जो तत्कालीन समाज में उच्च और निम्न वर्ग के मध्य बन हुआ था।

भले ही किसी वर्ग - विशेष या विचारधारा वाले लोग गांधी की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करें पर इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि 21वीं शताब्दी में गांधी के विचार गांधीवाद के रूप में समूचे जगत् में एक कनिष्ठिकाधिष्ठित दर्शन के रूप में स्थापित हो चुका है, जिसकी क्रोड में विदेशों में भी शान्ति और सद्भाव व एकात्मकता का अन्वेषण किया जा रहा है। जापान की काओरी कुरिहारा नामक महिला, जिन्होंने लगभग सात से आठ वर्ष भारत में व्यतीत कर गांधी को समझा उनके विषय में पढ़ा, वे कहती हैं कि मेरे प्रधानमंत्री शिंजो आबे जब अहमदाबाद में बुलेट ट्रेन परियोजना का शिलान्यास करने तथा जापानी तकनीक देने भारत गए थे तो मेरी इच्छा थी कि वो जापानी नागरिकों के लाभ के लिए भारत से बदले में केवल गांधीवादी मूल्य और दर्शन ले आएँ।

महात्मा गांधी न केवल भारत के लिए अपितु संपूर्ण विश्व के लिए आज भी उतने प्रासंगिक हैं जितने अपने समय में थे। बस हमें ध्यान रखना होगा कि गांधी एक आंदोलनकारी, क्रांतिकारी, स्वतंत्रता सेनानी से भिन्न एक विचारधारा भी है, वह स्वयं में पूर्ण दर्शन है तो एक दर्पण भी, और वह दर्पण ऐसा है जो स्वयं के दाग अर्थात् गलतियाँ भी स्पष्ट रूप से दिखाता है और आत्ममंथन द्वारा उन्हें परिमार्जित करता है तत्पश्चात् दूसरों को भी सही मार्ग की ओर उन्मुख करता है। गांधी शाश्वत है जो सदैव प्रासंगिक रहेंगे वे अपने विचारों की सरणि से सबके मानस में सदैव जीवित रहेंगे। आध्यात्मिक समाजवाद के पक्षधर गांधी ने इतिहास को आध्यात्मिक नजरों से देखा है जिसके दर्शन करने से प्रतीत होता है कि यह उतना ही पुराना है जितना मानव की चेतना में व्यक्ति बनकर धर्म का अभ्युदय।

वस्तुतः गांधी के वक्तव्यों या आचरण में इस देश के हर वर्ग, हर व्यक्ति के लिए एक अभिभावक की चिंता प्रदर्शित होती है साथ ही उनमें जीवन - मूल्यों की शिक्षा भी छिपी हुई है। तमाम दार्शनिक फलक पर बात करते हुए भी इस सत्य की ओर से आँख नहीं मूँदा जा सकता कि आज इस देश ने गांधी जी को मात्र 2 अक्टूबर को नाममात्र के लिए याद करने की औपचारिकता तक सीमित कर लिया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय की बातें मात्र भाषणों तक सीमित रह गई हैं। राजघाट पर सोए गांधी पर पुष्पाजंलि अर्पित कर कर्तव्यों की इतिश्री कर ली जाती है। आज भी ये देश ये भारतवर्ष वहीं खड़ा है जहाँ यह लाठी वाला बाबा ऐनक लगाए छोड़ गया था। गांधी जी का व्यक्तित्व, उनकी शिक्षा, अहिंसा का मार्ग आदि हमारे जीवन के लिए अनुकरणीय आदर्श हैं पर क्या वास्तव में केवल इस पर कह देने मात्र से ये संभव है क्योंकि उनके आदर्शों को तो हम भूल ही चुके हैं। गांधी की जन्मभूमि गुजरात के ही आधुनिक संस्कृत कवि हर्षदेव माधव ने इस स्थिति पर सटीक टिप्पणी करते हुए कहा है -

गांधि टोपी र्गता गांधिर्यष्टिर्गता गान्धिचारित्र्यधारापि नष्टं गता

जम्बुकैर्गृद्धकैर्ताबकैर्लोलुपै – र्गान्धि नाम्ना कृतं दाम्भिकं भारतम्।।

आज जहाँ हर कोई अपनी भौगोलिक सीमा को बढ़ाने के लिए परमाणु युद्ध के लिए स्वयं को तैयार कर रहा है ऐसे समय में प्रत्येक देश का सामान्य जनमानस इस युद्ध की विभीषिका से बचने के लिए भारत की ओर आशा भरी दृष्टि से टकटकी लगाए देख रहा है। ऐसे समय में हमारे पास महात्मा का दिया हुआ सत्य और अहिंसारूपी वह ब्रह्मास्त्र है जो इस खतरे को समाप्त कर सकता है। यही कारण है कि गांधी इस युग की आवश्यकता है और गांधी सत्य और अहिंसा जैसे शाश्वत् मूल्यों के आधार पर जीवन और जगत् का व्याख्यान करते हैं तो गांधी शाश्वत् हैं और उनकी आवश्यकता भी शाश्वत् है। विचार – मूर्च्छित इस समाज के लिए और संपूर्ण मानवता हेतु गांधी सदा संजीवनी के रूप में उपलब्ध हैं बशर्ते आप उन्हें आत्मसात् कर सकें। आज का जनमानस और राजनेता गांधी के दिखाए गए मार्ग या दर्शन का लेशमात्र भी अनुसरण कर लें तो सचमुच यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी क्योंकि महाकाल पुनः गांधी को कब गढ़े या न गढ़े।

– सहायक अध्यापक, राजकीय प्रतिभा विकास विद्यालय, सिविल लाईस, दिल्ली

❑❑❑

महात्मा गांधी एवं भीमराव अंबेडकर का सामाजिक न्याय चिंतन

डॉ. ममता कुशवाहा सिंह

लगभग 20 वर्ष दक्षिण अफ्रीका में बिताने के पश्चात बापू सन् 1915 में भारत वापस आए। उनके स्वदेश लौटने के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास में जिस युग का सूत्रपात हुआ उसे गांधी युग के नाम से जाना जाता है। सन् 1920 तक कांग्रेस एवं राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व की बागडोर पूरी तरह गांधी जी के हाथों में आ गई थी, उनके पास नेतृत्व की क्षमता तो थी ही, सशक्त चिंतन भी था, साथ में अन्याय के विरुद्ध निरंतर संघर्ष करने की अपराजेय शक्ति और त्याग, तपस्या व समाज सेवा की विशिष्ट कार्यशैली भी थी, जिसकी वजह से वह न केवल भारतीय राजनीति वरन् भारतीय जनमानस के पर्याय बन गए। भीमराव रामजी अंबेडकर अमरीका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम. ए और पी एच. डी की शिक्षा पूरी कर स्वदेश वापस आए। वह बाबासाहब अंबेडकर के नाम से लोकप्रिय भारतीय बहुज्ञ, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, राजनैतिज्ञ और समाज सुधारक थे। उन्होंने दलित बौद्ध आंदोलन को प्रेरित किया और राजपूतों के खिलाफ सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। जब सन् 1923 में वह लंदन से भारत वापस लौटे तो उनके सार्वजनिक व राजनैतिक जीवन का शुभारंभ हुआ तथा दलितों और शोषितों के सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष का इतिहास भी प्रारंभ हुआ।

सहमति एवं असहमति की स्थितियां : गांधी जी एवं अंबेडकर तकरीबन समकालीन थे। दोनों के दूरगामी लक्ष्य बहुत कुछ समान थे। दोनों ही भारतीय समाज की सर्वांगीण उन्नति चाहते थे और अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहे। उन्होंने सदैव कर्म में विश्वास रखा और दोनों के लक्ष्य एवं कार्यों में पूर्ण सामंजस्य था। बापू एवं अंबेडकर दोनों ही मौलिक विचार रखते थे और उनके विचारों में सदैव स्पष्टता रही। दोनों के शब्दों का चयन बड़ा ही सुंदर था और लेखन की अद्भुत क्षमता दोनों में विद्यमान थी यद्यपि दोनों में ही विचारों की दृढ़ता देखी जा सकती है तथापि समय, परिस्थिति एवं अनुभव के आधार पर दोनों ने अपने विचारों में समयानुसार आवश्यक परिवर्तन किए। उनमें एक विशेष बात दिखाई देती है कि अपने विचारों में परिवर्तन को स्वीकार करने में उन्होंने कभी भी कोई संकोच नहीं दिखाया। दोनों ही पेशे से वकील रहे और उनका कार्यक्षेत्र राजनीति, समाज सुधार, समाज सेवा, मानव कल्याण और धर्म उन्नति से जुड़ा रहा। उन्होंने नारियों एवं दलितों के उत्थान के लिए ना भुलाए जाने वाले अनेक कार्य किए। दोनों ही मूलत: धार्मिक प्रवृत्ति के रहे और निजी तथा सार्वजनिक जीवन में उन्होंने सदैव धर्म को बहुत महत्व दिया। भले ही गांधी एवं अंबेडकर में अनेक समानताएँ दिखाई देती हैं फिर भी दोनों के विचारों में, पद्धतियों में और प्राथमिकताओं में मौलिक अंतर था। दोनों ही भारतीय समाज का पुनरुद्धार चाहते थे लेकिन दोनों के नजरिए अलग-अलग थे जहां एक ओर बापू का नजरिया कमोबेश परंपरावादी था वहीं दूसरी ओर अंबेडकर आधुनिकता के पक्षधर रहे। गांधी अस्पृश्यता को हिंदू समाज की बहुत बड़ी बुराई मानते थे और उनका कहना था कि- 'अस्पृश्यता हिंदू धर्म का कलंक है जिसे मिटाना जरूरी है। यदि अस्पृश्यता रहती है तो अच्छा है कि हिंदू धर्म नष्ट हो जाए, आगे उन्होंने कहा है कि 'मैं अछूत जन्मा तो नहीं लेकिन अपने को अछूत मानता हूँ और चाहता हूँ कि

अगले जन्म में मैं अछूत पैदा होऊँ' (हरिजन 1.12. 1936)। वस्तुतः गांधी छूत और अछूत में भेद नहीं मानते थे उन्होंने एक अछूत कन्या को गोद लिया, उनके आश्रम में सवर्ण के साथ अछूत भी रहते थे, दोनों के बीच कोई भेदभाव नहीं था। जहाँ तक जीविका के लिए अपनी जाति और व्यवसाय को अपनाने, अपनी जाति के लोगों में शादी विवाह करने, उनके साथ खान-पान और उठने-बैठने का सवाल है तो गांधी को इसमें कोई भी बुराई नहीं दिखाई देती थी किंतु जाति के आधार पर ऊँच-नीच के बर्ताव को वह बुरा मानते थे। गांधी की दृष्टि में वर्ण, जाति की तुलना में लचीला और प्रगतिशील है। उनका मानना था कि वर्ण व्यवस्था दोषपूर्ण नहीं है। कालांतर में वर्ण व्यवस्था में कठोरता, विभिन्न वर्णों के बीच जो ऊँच-नीच और द्वेष का भाव उत्पन्न हुआ वह दोषपूर्ण है। गांधी जी की दृष्टि में हिंदू धर्म के मूल सिद्धांतों में छुआछूत, ऊँच-नीच के भेदभाव अथवा नारी की दासता का कोई स्थान नहीं है। धर्म ग्रंथों में जो भी अंश इस प्रकार के हैं वह मूल हिंदू सिद्धांतों के विपरीत हैं; ऐसे अंशों को अस्वीकार करने अथवा धर्म ग्रंथों से हटाने में गांधी को कोई एतराज नहीं था। उनका कहना था कि किसी धर्म का मूल्यांकन उसकी अच्छाइयों से होना चाहिए ना कि बुराइयों से। अच्छाई और बुराई कमोबेश सभी धर्मों में होती है। कालांतर में हिंदू धर्म में जो बुराइयाँ आ गई हैं उनको स्वीकार करने और उनका परित्याग करने में गांधी जी को कोई परहेज नहीं था। गांधी हिंदू समाज का पुनर्गठन वर्ण सिद्धांत के आधार पर करना चाहते थे। वह हिंदू धर्म की इस मूल मान्यता के समर्थक थे कि सभी मानव ईश्वर के अंश हैं और इसलिए सब समान हैं। इस दृष्टि से वे इस बात के हिमायती थे कि शिक्षा और आत्मविश्वास का अवसर सभी को मिलना चाहिए, जितना यह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के लिए जरूरी है, उतना ही शूद्र और अंत्यज के लिए भी जरूरी है। वर्ण का इससे कोई विरोध नहीं होना चाहिए और यदि है तो उसे अस्वीकार किया जाना चाहिए। वर्ण सिद्धांत की मूल मान्यता यह है कि व्यक्ति अपनी आजीविका वर्णगत या परंपरागत व्यवसाय से कमाए। इससे समाज में आर्थिक कुशलता में वृद्धि होती है और प्रतिस्पर्धा तथा अनिश्चितता समाप्त होती है। आजीविका के रूप में नाई का काम और पुरोहित का काम समान है; इसमें कोई अच्छा या बुरा नहीं है। भंगी का काम भी उतना ही सम्मानजनक और महत्वपूर्ण है जितना कि पुरोहित का इसलिए भंगी का काम करने से कोई नीचा और पुरोहित का काम करने से कोई ऊँचा नहीं होता। आदमी अच्छा तो सद्गुणों और सद्कर्मों से तथा बुरा दुर्गुणों और दुष्कर्मों से होता है' (गांधी, 1962;127-28)

डॉ. अम्बेडकर समाज व्यवस्था में संशोधन नहीं अपितु मौलिक परिवर्तन चाहते थे। वह न केवल अस्पृश्यता का अंत और जाति व्यवस्था का उन्मूलन चाहते थे बल्कि वर्ण सहित संरचना के समस्त परंपरागत तत्वों को समाज से सदा-सर्वदा के लिए मिटा देना चाहते थे। उनके अनुसार वर्ण एवं जाति भिन्न नहीं हैं, वर्ण से ही जाति उत्पन्न हुई है जिसकी चरम विकृति अस्पृश्यता है। वह एक ऐसा समाज चाहते थे जिसकी रचना स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के सिद्धांतों पर की गई हो। वर्ण, जाति, जजमानी तथा पुरोहिताई व्यवस्थाएं उपर्युक्त सिद्धांतों का निषेध करती हैं, इसीलिए अंबेडकर इन्हें स्वीकार करने के लिए कतई तैयार नहीं थे। इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि गांधी के संरचनात्मक प्रारूप का नियामक तत्व वर्ण था जबकि अंबेडकरवादी संरचना का आधारभूत तत्व वर्ग था। गांधी वर्ण व्यवस्था को संपोषित करने वाले कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धांत पर आधारित हिंदू वैचारिकी के समर्थक थे। अंबेडकर समाज में व्यक्ति को स्वतंत्रता एवं समानता प्रदान करने और उसकी गरिमा की रक्षा के प्रति समर्पित बौद्ध वैचारिकी के अनुशंसित थे यद्यपि गांधी ने महिलाओं एवं हरिजनों की स्थिति में सुधार पर जोर दिया और उनके उत्थान के लिए बहुत से कार्य भी किए तथापि उनका उद्देश्य किसी वर्ग विशेष के लिए कार्य करना नहीं बल्कि सर्वोदय समाज की स्थापना था। वह रस्किन की पुस्तक 'अन टू द लास्ट' से बहुत प्रभावित थे। वह एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें सभी के हितों की रक्षा हो और सभी सुखी हों (धर्माधिकारी, 1985, धवन 1951)। गांधी जी का कहना था कि समाज में जिनके पास अपार धन और संपत्ति है वह उसके स्वामी नहीं संरक्षक हैं। उनका मानना था कि जिनके पास अधिक धन व संपत्ति है वह उनकी नहीं समाज की है। वह तो केवल इसके संरक्षक हैं और इस रूप में उनका यह दायित्व है कि वह इस संपत्ति का अपव्यय ना करें बल्कि उसे आर्थिक क्रियाओं में इस प्रकार प्रयोग करें जिससे कि निर्धन व गरीबों के आर्थिक हितों की रक्षा हो सके। अंबेडकर यद्यपि समाज के सभी वर्गों की उन्नति चाहते थे तथापि दलितों को परंपरागत सामाजिक दासता से मुक्ति दिलाना और उनके हितों की रक्षा करना उनके

जीवन का प्रधान लक्ष्य बन गया था वे मानते थे कि दलित समाज जिसमें वे जन्मे उसे सदियों की दासता से मुक्त करना उनका कर्तव्य है वह दलितों के हितों को राष्ट्र एवं स्वयं के हित से बड़ा मानते थे। उनका कहना था कि यदि उनके हित और राष्ट्र के हित में कभी टकराव हुआ तो वे अपना हित त्याग देंगे।

हम सभी जानते हैं कि व्यवस्था में परिवर्तन गांधी और अंबेडकर दोनों ही चाहते थे किंतु परिवर्तन के लिए पहल कहाँ से आरंभ की जाए इस बात पर दोनों के मत भिन्न थे। गांधी व्यक्ति को आदर्शों एवं मूल्यों का निर्माता तथा वाहक मानते थे और समाज की रचना में व्यक्ति की भूमिका को बड़ा महत्व देते थे, उनका मानना था कि जब तक व्यक्ति अच्छा नहीं होगा समाज अच्छा नहीं हो सकता दूसरे शब्दों में गांधी की मान्यता थी कि यदि हम समाज को बदलना चाहते हैं तो हमें पहले व्यक्ति को बदलना होगा किंतु इसके साथ गांधी यह भी मानते थे कि जोर जबरदस्ती से व्यक्ति में सुधार नहीं किया जा सकता और यह होता भी है तो टिकाऊ नहीं होगा, इसीलिए वह व्यक्ति में शिक्षा और नैतिक समझदारी के द्वारा सुधार लाने के पक्ष में थे। अंबेडकर यद्यपि व्यक्ति को महत्व देते थे किंतु व्यक्ति में परिवर्तन के माध्यम से व्यवस्था में परिवर्तन लाने के विचार से कभी भी सहमत नहीं थे। वह गांधी जी की इस बात से भी सहमत नहीं थे कि व्यक्ति को नैतिक समझ देकर समाज में मौलिक परिवर्तन लाया जा सकता है। उनका मानना था कि अतीत में अनेक महात्मा आए और उन्होंने धर्म व नीति की ऊँची-ऊँची शिक्षाएँ दी किंतु समाज का मूल ढाँचा जस का तस रहा, उसमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया। नैतिक शिक्षा के द्वारा दुनिया में कहीं भी पूंजीपतियों के हृदय में परिवर्तन नहीं आया जिससे कि वह अपने को अपनी संपत्ति का स्वामी ना समझकर संरक्षक समझें और ना ही निहित स्वार्थों से ऊपर उठकर उन्होंने अपनी परिसंपत्ति को सार्वजनिक हितों की वृद्धि में लगाया। इस मसले पर अंबेडकर गांधी की भांति आदर्शवादी नहीं बल्कि भौतिकवादी और यथार्थवादी थे। अंबेडकर का मानना था कि नई व्यवस्था के निर्माण के लिए नए व्यक्ति का निर्माण करना जरूरी नहीं है, जरूरी है पुरानी व्यवस्था पर आघात करना। समाज बदलेगा तो व्यक्ति अपने आप बदल जाएगा। समाज के बदलने से अंबेडकर का अभिप्राय उन नियमों को बदलना था जो सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ढाँचे की रचना करते हैं। उनका मानना था कि जब तक सामाजिक ढाँचे की रचना करने वाले आधारभूत नियमों में परिवर्तन नहीं होता तब तक सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन के साथ व्यक्ति को समायोजन करना ही पड़ता है क्योंकि समाज से बाहर जीवन दूभर होता है और समाज में रहने के लिए उसका समाज के साथ सार्थक तादात्म्य स्थापित करना जरूरी होता है।

गांधी जी यह मानते थे कि कमजोर वर्गों के उत्थान के बिना स्वतंत्रता की प्राप्ति सार्थक नहीं हो सकती किंतु देश को स्वाधीन बनाना उनका प्रधान लक्ष्य था। अंबेडकर दलितों के लिए स्वराज्य की तुलना में अंग्रेजी राज को बेहतर मानते थे। उनका कहना था कि सवर्ण, दलितों के प्रति द्वेष भाव रखते हैं जबकि अंग्रेज तटस्थ हैं। उनकी दृष्टि में स्वराज का अर्थ है सवर्णों का शासन और दलितों की दासता। अतीत के इतिहास पर दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अंबेडकर की आशंका निर्मूल नहीं थी किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अंबेडकर का अंतर्मन देश के प्रति समर्पित नहीं था। उनकी निष्ठा स्वतंत्र भारत के लिए थी ना कि अंग्रेजी राज के प्रति। वह स्वतंत्रता के पक्षधर तो थे किंतु उनका मानना था कि सवर्णों की दासता से मुक्ति पाना दलितों के लिए उतना ही जरूरी है जितना कि किसानों के लिए अंग्रेजों की गुलामी से आजाद होना। उनका कहना था कि यदि बाल गंगाधर तिलक ब्राह्मण की जगह अछूत जाति में पैदा हुए होते तो वह यह नहीं कहते कि 'स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा, वे यह कहते कि अस्पृश्यता उन्मूलन मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसका उन्मूलन करके रहूँगा।' (अंबेडकर संत ऋषि, 1989:113) गांधी अछूतों को हिंदू समाज का अभिन्न अंग मानते थे और कहते थे कि अस्पृश्यता व उनकी अन्य समस्याएँ उनकी नहीं बल्कि हिंदू समाज की समस्यायें हैं हिंदू समाज को यदि जीवित रहना और आगे बढ़ना है तो उसे अछूतों की समस्याओं का निराकरण करना होगा। अछूतों को गांधी हरिजन कहते थे। अछूत हिंदू समाज में सबसे कमजोर थे इसीलिए बापू को वह विशेष प्रिय थे। सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में मंदिरों की भूमिका के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए गांधी जी ने हरिजनों के मंदिर प्रवेश आंदोलन का समर्थन किया और सरकार से 'रंगा अय्यर अस्पृश्यता निवारण बिल' के क्रियान्वयन की सिफारिश की। गांधी अस्पृश्यों की समस्याओं को यद्यपि शांतिपूर्वक तरीके से हल करने के पक्ष में थे तथापि वह यह जानते थे कि अस्पृश्यता उन्मूलन और हरिजनों के उत्थान के

गुरुतर कार्य को पूरा करने के लिए केवल वैधानिक तरीकों पर ही निर्भर रहना पर्याप्त नहीं होगा, इसके लिए वे राष्ट्रव्यापी जन-जागरण पैदा करना आवश्यक समझते थे। उनकी पहल पर देश में 27 सितंबर से 2 अक्टूबर (1932) तक अस्पृश्यता निवारण सप्ताह मनाया गया। इसी समय गांधी जी ने 'हरिजन' नामक एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया और इसके माध्यम से उन्होंने समाज में अस्पृश्यता तथा हरिजनों के प्रति भेदभाव पूर्ण व्यवहार के विरुद्ध जनमत जगाने का प्रयास किया। किंतु अंबेडकर की मान्यता इसके विपरीत रही। अंबेडकर दलित समस्याओं को हिंदू समाज का अंग मानने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि 'यदि दलित हिंदू समाज के अंग होते तो हिंदू उनके साथ अमानवीय व्यवहार नहीं करते।' दुनिया का कोई समाज अपने किसी भाग को अछूत नहीं मानता और ना ही उन्हें अपने से अलग करने के लिए बाध्य करता है। लंदन में हुए द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दलित हिंदू समाज का भाग नहीं है या जनसंख्या का प्रथम तत्व है, इसीलिए इसे पृथक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में अंबेडकर ने दलित समस्याओं का निदान हिंदू समाज के दायरे में किए जाने के लिए प्रयास किए किंतु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली अंततः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सुधारात्मक प्रयासों से इस समस्या को जड़ से मिटाना संभव नहीं है। अंबेडकर का कहना था कि हिंदू और जाति एक दूसरे के पर्याय हैं; जाति की जड़े हिंदू धर्म में हैं इसलिए हिंदू समाज से जाति का उन्मूलन संभव नहीं है। सन 1935 में येवला में दलितों की एक सभा में उन्होंने घोषणा की- 'दुर्भाग्य से मैं हिंदू धर्म में पैदा हुआ, यह मेरे बस की बात नहीं है किंतु हिंदू धर्म की अपमानजनक एवं शर्मनाक स्थिति में रहने से इनकार करना मेरी शक्ति सीमा में है, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हिंदू के रूप में नहीं मरूँगा (अंबेडकर, भगवानदास अंक1080)। मृत्यु के थोड़े दिन पूर्व 14 अक्टूबर 1956 में अंबेडकर हिंदू धर्म छोड़ कर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए।

गांधी जी की दृष्टि में भारत की खुशहाली गाँवों की खुशहाली पर निर्भर करती है। वह गाँवों को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध और आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। वे मशीनीकरण और बड़े उद्योगों को बढ़ावा देने के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि भारत में प्रचुर जनशक्ति है जो गाँवों में रहती है, मानव जनशक्ति के बेहतर उपयोग के लिए ग्रामीण क्षेत्रें में लघु व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, इससे एक तो बेकारी की समस्या रुकेगी दूसरे शहरों में जनाधिक्य और उससे उत्पन्न होने वाली बुराइयाँ नहीं फैलेंगी। दूसरी ओर अंबेडकर औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण और नगरीकरण के पक्ष में थे। वह गांवों को प्रगति विरोधी, अंधविश्वास और पिछड़ेपन का दुर्ग मानते थे। उनका कहना था कि गांव कितनी ही प्रगति क्यों ना कर ले वह परंपरा से मुक्त नहीं होते, उनके मत में आज का गांव अपने प्रति ही मोही, अज्ञानी, संकीर्णता और सांप्रदायिकता की गुफा है; गाँव में जात-पात, ऊँच-नीच, छुआछूत का भेद स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वह आर्थिक ही नहीं बल्कि न्यायिक और प्रशासनिक दृष्टि से भी गाँव को अधिकाधिक आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। वह सत्ता के विकेंद्रीकरण के पक्षधर रहे और गाँवों को स्वायत्तशासी इकाई के रूप में विकसित करना चाहते थे, उनका विश्वास था कि ऐसा होने से लोग अपनी समस्याओं को बहुत कुछ अपने स्तर पर हल कर सकेंगे। उन्हें न्याय के लिए, जो दिनों-दिन समय साध्य होता जा रहा है, शहरों में नहीं जाना पड़ेगा, परिणामस्वरूप गाँवों में मुकदमेबाजी और आपसी रंजिश कम होगी। तात्पर्य है कि गांधी व उनके अनुयायी गाँवों में स्वायत्तशासी इकाई के रूप में विकसित करने की दृष्टि से ग्राम पंचायत को पुनर्जीवित करने के पक्ष में थे। मसौदा संविधान में डॉक्टर अंबेडकर ने ग्राम पंचायत का कोई उल्लेख नहीं किया। श्रीमन्नारायण व अन्य गांधीवादियों ने इसका भारी विरोध किया जिसे देखते हुए उन्हें संविधान में अंततः इस बात का प्रावधान करना पड़ा कि राज्य सरकारें राज्य में ग्राम पंचायतों के गठन हेतु आवश्यक पहल कर सकती हैं। अंबेडकर का ग्राम गणराज्य और पंचायत जैसी संस्थाओं में लेशमात्र भी विश्वास नहीं था। वह इनके विरुद्ध थे इसी वजह से मसौदा संविधान में उन्होंने ग्राम पंचायतों की अनदेखी की, उनका मानना था कि एक औसत हिंदू ग्राम संगठन की प्रशंसा करते नहीं थकता, वह इसे दुनिया में सामाजिक संगठन का आदर्श रूप समझता है, वह गांव की कल्पना अपने आप में बहुत कुछ स्वतंत्र गणराज्य के रूप में करता है, जिसमें मुखिया, गांव, पंचायत और जाति पंचायतें सदियों से ग्राम स्वशासन का कार्य संपन्न करती आ रही हैं। ग्राम संगठन के संबंध में उपर्युक्त प्रशंसात्मक विचार अंबेडकर की दृष्टि में आत्म प्रवंचना एवं पूरी भ्रांति हैं। वह कहते हैं कि- "भारतीय ग्राम गणराज्य में लोकतंत्र के लिए कोई आशा नहीं है। समानता के लिए

कोई जगह नहीं है, स्वतंत्रता के लिए कोई स्थान नहीं और भ्रातृत्व के लिए कोई जगह नहीं है। भारतीय ग्राम, गणराज्य को पूर्ण रूप से नकारता है, यह गणराज्य वास्तव में अछूतों पर हिंदुओं का साम्राज्य है (1989:26)।"

सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन और दलित समस्याओं का निराकरण दो पृथक मुद्दे हैं, इन मुद्दों पर गांधी जी का दृष्टिकोण सकारात्मक था। वह व्यवस्था में परिवर्तन, शांतिपूर्ण एवं अहिंसात्मक प्रयत्नों के द्वारा लाना चाहते थे। नई समाज व्यवस्था की रचना का गांधीवादी प्रारूप विभिन्न वर्गों के बीच परस्पर सौहार्द्र-सामंजस्य पर आधारित था। जबकि सवर्णों एवं पूंजीपतियों के हृदय परिवर्तन संबंधी गांधी जी की योजना से अंबेडकर सहमत नहीं थे। उनका सोचना था कि दलित समस्या के निवारण एवं व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए संघर्ष जरूरी है और यह संघर्ष तभी सफल होगा जब इसका नेतृत्व उस वर्ग के हाथों में होगा जिनका हित परंपरात्मक व्यवस्था में सुरक्षित नहीं है, यही वजह थी जिसके कारण अंबेडकर ने दलितों और शोषितों को क्रांतिकारी संघर्ष के लिए एकजुट होने का आह्वान किया। अंबेडकर का मानना था कि लोकतांत्रिक प्रणाली में दलित संवैधानिक दायरे के भीतर राजनैतिक शक्ति हासिल करके अपनी समस्याओं का निदान कर सकते हैं। दलितों और शोषितों के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा श्रम संबंधी हितों की रक्षा एवं अधिकारों की प्राप्ति के लिए अनेक अवसरों पर अंबेडकर ने दलितों को संघर्ष के लिए एकजुट किया तथा दलितों द्वारा चलाए गए आंदोलनों को दिशा व नेतृत्व प्रदान किया। इस प्रकार नई समाज व्यवस्था की रचना का अंबेडकरवादी प्रारूप शक्तिशाली और कमजोर वर्गों के बीच सहमति और सामंजस्य पर नहीं बल्कि असहमति एवं संघर्ष पर आधारित था। उनकी पद्धति गांधी जी की भाँति नैतिक समझ अथवा हृदय परिवर्तन पर आधारित नहीं थी बल्कि दलितों और शोषितों के हितों के रक्षार्थ आवश्यक संवैधानिक प्रावधान किए जाने के लिए सीधी कार्यवाही पर जोर देती थी।

परस्पर सहयोग: यदि हम गांधी जी और अंबेडकर के सामाजिक चिंतन पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि दोनों के बीच अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर व्यापक असहमति थी। उनके विचार, दृष्टिकोण एवं पद्धतियों में अंतर को देखते हुए यदि यह कहा जाए कि दोनों दो विपरीत ध्रुवों का प्रतिनिधित्व करते थे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। गांधी जी के सशक्त चिंतन एवं गरिमामय व्यक्तित्व के सम्मुख खड़े होने और उनका विरोध करने का साहस गिने चुने लोगों में था। डॉ. अंबेडकर ऐसे गिने-चुने लोगों में से थे जिन्होंने कई मुद्दों पर गांधी जी से असहमति व्यक्त की और अनेक अवसरों पर उनका मुखर विरोध किया। गांधी जी के जीवन काल में उन पर जितना तीखा प्रहार डॉक्टर अंबेडकर ने किया, उतना ना तो सुभाष चंद्र बोस अथवा जिन्ना या किसी अन्य ने किया। भविष्य में गांधी का कोई इतना मुखर आलोचक होगा इसकी भी संभावना कम ही है। बापू ने डॉ अंबेडकर के विरुद्ध शायद ही कभी कोई तीखी या प्रतिकूल टिप्पणी की। दलित नेतृत्व विषय पर दोनों ने एक दूसरे के प्रति सहयोग और सदाशयता का परिचय दिया। इतिहास में इसकी मिसाल दुर्लभ है। गोलमेज संमेलन में गांधी जी के विरोध के बावजूद अंबेडकर की पहल पर ब्रिटिश सरकार ने मैकडोनाल्ड अवार्ड घोषित किया, जिसके तहत दलित जाति के लोगों को पृथक निर्वाचन का अधिकार प्रदान किया गया। सितंबर 1932 में गांधी जी ने इसके विरोध में आमरण अनशन प्रारंभ किया, गांधी जी के गिरते हुए स्वास्थ्य को लेकर राष्ट्रव्यापी चिंता हुई जिसे दृष्टिगत रखते हुए अंबेडकर पुणे की यरवदा जेल में गांधी और कांग्रेस के प्रतिनिधियों से मिले। उन्होंने गांधी जी की बात मान ली और दलितों के लिए पृथक निर्वाचन संबंधी अपनी मांग त्याग दी, बदले में गांधी और उनके प्रतिनिधियों ने दलितों के लिए आरक्षण प्रदान किया जाना स्वीकार किया इस प्रकार दोनों की सूझबूझ एवं सहयोग से 'पूना पैक्ट' संभव हुआ और एक बड़ा राष्ट्रीय संकट टल गया। राष्ट्रीय हित में गांधी जी के साथ अंबेडकर की सहमति और सहयोग का दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र धर्म परिवर्तन से संबंधित है। गांधी जी चाहते थे कि अंबेडकर हिंदू धर्म का परित्याग ना करें अपितु हिंदू धर्म में रहकर ही दलितों की समस्याओं के समाधन का मार्ग ढूंढें। गांधी जी की मृत्यु के उपरांत डॉक्टर अंबेडकर ने हिंदू धर्म का परित्याग तो किया किंतु बौद्ध धर्म अपनाकर भारतीय संस्कृति का परित्याग नहीं किया। इस प्रकार उन्होंने यदि पूर्णत: नहीं तो अंशत: गांधी की इच्छा का पालन किया।

जाति एवं वर्ण संबंधी महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों पर गांधी जी के विचारों में जो परिवर्तन आया उसमें निस्संदेह बहुत बड़ा योगदान डॉक्टर अंबेडकर का था। सन् 1920 के आसपास 'यंग इंडिया' में समाज व्यवस्था

पर गांधी जी ने जो कुछ लिखा उससे स्पष्ट होता है कि उस दौरान गांधी जी को जाति एवं वर्ण व्यवस्थाओं, कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धांत, खानपान और विवाह संबंधी प्राथमिकताओं एवं प्रतिबंधों तथा रक्त शुद्धता एवं आनुवंशिकता के सिद्धांतों से कोई परहेज नहीं था आगे चलकर डॉक्टर अंबेडकर द्वारा पंजाब के 'जात पात तोड़क मंडल' के तत्वाधन में आयोजित सभा के लिए तैयार किए गए अध्यक्षीय भाषण के प्रतिरूप जो 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' के रूप में प्रकाशित हुआ, उस पर अपने मत व्यक्त करते हुए गांधी जी ने कहा कि शास्त्रों में अस्पृश्यता की स्वीकृति नहीं है और यदि कहीं ऐसे अंश हैं तो वह प्रक्षिप्त हैं, उन्होंने यह भी कहा कि शास्त्रों की जो बातें उनके विचारों से मेल नहीं खाती उन्हें वह अप्रमाणित मानते हैं और अस्वीकार करते हैं। उनका मानना था कि ऐसे अंशों को शास्त्रों से निकाल दिया जाना चाहिए। बापू जाति व्यवस्था को हिंदू समाज के रक्षक के रूप में देखते थे किंतु बाद में उन्होंने इसका विरोध किया। सन् 1945 के आसपास 'यंग इंडिया' में उन्होंने स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार किया कि वर्ण एवं जाति के संबंध में उनके विचारों में मौलिक परिवर्तन आया है। उन्होंने माना कि विचारों में परिवर्तन चिंतन प्रक्रिया का स्वाभाविक पहलू है। आगे चलकर गांधी जी ने ना केवल अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया वरन् विशेष रूप से उच्च जाति एवं अस्पृश्य जातियों के बीच होने वाले अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किए जाने पर जोर दिया। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जब सरदार पटेल ने अंबेडकर को एक ब्राह्मण महिला के साथ पुनर्विवाह करने के उपलक्ष में बधाई देते हुए पत्र लिखा यदि गांधी आज जीवित होते तो वह इस विवाह से अति प्रसन्न होते और उन्हें आशीर्वाद देते तो इस पर डॉ अंबेडकर ने अपनी सहमति जताई। बापू सदैव अस्पृश्यता निवारण के प्रति कृतसंकल्पित रहे तथा अछूतों की दशा में सुधार करते रहे। वह विधानमंडलों में अछूतों के प्रतिनिधित्व के पक्षधर थे किंतु वे उनके लिए पृथक निर्वाचन, पृथक प्रतिनिधित्व तथा स्थानों के आरक्षण के विरुद्ध थे। वह ऐसा मानते थे कि आरक्षण से घटकवाद और पृथकता को बढ़ावा मिलेगा, जिससे हिंदू समाज कमजोर होगा किंतु दलितों के पक्ष में डॉक्टर अंबेडकर द्वारा किए गए तर्कों एवं उनके द्वारा किए गए संघर्षों से प्रभावित होकर अंतत: गांधी जी ने न केवल स्थानों का आरक्षण स्वीकार किया वरन् उनके लिए पूर्व निर्धारित आरक्षित स्थानों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि भी की। यह जानने के बावजूद कि अंबेडकर उनके अत्यधिक मुखर आलोचक हैं, जो उन्हें ढोंगी कहते हैं और जो उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों को पाखंड निरूपित करते हैं, गांधी जी ने विरले ही उनके विरुद्ध कोई टिप्पणी की। अंबेडकर के विरुद्ध गांधी की शिकायत मुख्यत: यह थी कि मात्र दूसरों की आलोचना करके कोई बड़ा नहीं बनता, केवल दूसरों की आलोचना करके नेतृत्व भी हासिल नहीं किया जा सकता। नेतृत्व के लिए रचनात्मक कार्य जरूरी हैं जो लंबी साधना और कठिन तपस्या से ही संभव है। एक अवसर पर गांधी जी ने अंबेडकर की ओर लक्ष्य करते हुए कहा कि वे चाहे कोई भी बिल्ला लगा लें अपने को विस्मृत नहीं होने देंगे। गांधी की टिप्पणी से अंबेडकर को बहुत दुख पहुँचा था। भले ही गांधी जी अंबेडकर की किसी भी बात से सहमत नहीं थे और अनेक अवसरों पर उन्होंने उनके आचरण की आलोचना भी की फिर भी वह अंबेडकर की प्रतिभा और कार्य क्षमता से परिचित थे, उनका सम्मान करते थे तथा राष्ट्रीय हित में उनका अधिकतम उपयोग करना जानते थे। बापू ने सदैव अंबेडकर को भारत के प्रधानमंत्री के रूप में देखना चाहा। 2 अप्रैल 1930 को अंबेडकर ने कहा था- "मैं भगवद्गीता के अलावा किसी भी पुस्तक को आदरणीय या प्रमाणिक नहीं मानता हालांकि मैं वेदों को प्रमाण नहीं मानता, लेकिन मैं अपने को सनातनी हिंदू मानता हूँ"। एक लंबे दौर में दोनों के ही अनुयायियों ने इन दोनों के बीच इतनी दूरियाँ पैदा कर दीं कि हमें इन सहज और मानवीय तथ्यों को जानकर भी आश्चर्य होता है। अंबेडकर ने अपनी आशंकाओं के उलट क्या पाया था कि गांधी के विचार खुद उनसे बहुत मेल खाते थे, इससे अंबेडकर को बड़ा आश्चर्य हुआ था और उन्होंने तत्काल ही गांधी जी से कहा था- "यदि आप अपने आप को केवल दलितों के कल्याण के लिए समर्पित कर दें तो आप हमारे हीरो बन जाएंगे" बहुत ही ऐसी बातें हैं जो एक दूसरे को अलग करती हैं जैसे दोनों ने ही गुलामी की जंजीरों को तोड़ने की पुरजोर वकालत की। आजाद भारत की परिकल्पना की आजादी के लगभग 7 दशक बाद भी दोनों की प्रासंगिकता वैसी ही बनी हुई है। एक ओर गांधी थे जिन्होंने माना था कि यदि जाति व्यवस्था से छुआछूत जैसे अभिशाप को बाहर कर दिया जाए तो पूरी व्यवस्था समाज के हित में काम कर सकती है। दूसरी ओर अंबेडकर ने जाति व्यवस्था को पूरी तरह से नष्ट करने का मंत्र सामने रखा उनके

अनुसार जब तक समाज में जाति व्यवस्था मौजूद रहेगी। छुआछूत जैसे अभिशाप नए-नए रूपों में समाज में पनपते रहेंगे। गांधी जी ने पूर्ण विकास के लिए लोगों को गाँवों का रुख करने की वकालत की, जबकि अंबेडकर ने लोगों से गाँव छोड़कर शहरों की ओर रुख करने की अपील की, जहाँ गांधी जी ने सत्याग्रह पर भरोसा किया वहीं अंबेडकर ने इसे पूरी तरह से निराधार माना। सामाजिक न्याय को देखते हुए यदि हम महात्मा गांधी और भीमराव अंबेडकर के चिंतन को देखें तो यहाँ यह स्पष्ट दिखाई देता है कि कुछ मुद्दों पर वह एकमत हैं और कुछ मुद्दों पर उनकी सहमति नहीं बन पाई फिर भी दोनों सदैव ही सामाजिक न्याय के लिए अपने -अपने तरीकों से लड़ते रहे।

– डी 64/47, मॉ राजेश्वरी नगर, पद्मिनी होटल के पीछे, सिगरा, वाराणसी-221010

❑❑❑

गांधी: शिक्षाशास्त्री के रूप में

डॉ. शालिनी राजवंशी

गांधी के पूर्व हम पराई विद्या के बैल और पराई भाषा के गुलाम थे। समस्त भारत व्यथित हृदय, थकित मन दिमागी गुलामी का शिकार था। तब भारत की राजनीति में एक शक्तिशाली आँधी का प्रवेश हुआ जिसने अपने वेग से पुराने विचारों के झाड़ - झंकारों को उखाड़कर फेंक दिया। उस बवंडर ने इस महादेश की सोई हुई आत्मा को ठोकर देकर जगाया। यह आंधी महात्मा गांधी थी जिन्होंने अपने दुर्बल शरीर लेकिन अपूर्व आत्मविश्वास से अपने चरखे और करघे के माध्यम से इस शिल्प प्रधान देश में उत्साह भरा।

भारत की राजनीति को समझने से पहले गांधी जी ने समस्त भारत का भ्रमण किया। यहाँ के लोगों की गरीबी, अशिक्षा, भाषा और व्यवहार को समझा और यह जाना कि हम अंग्रेजों के शारीरिक गुलाम ही नहीं अपितु मन से भी उनके गुलाम हैं। उन्होंने ठान लिया कि भारतीयों की मानसिक मुक्ति के लिए एक वास्तविक भारतीय शिक्षा पद्धति की नींव डालनी होगी। वर्तमान शिक्षा के दोषों को दूर करने के लिए गांधी जी ने शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन सुझाए।

गांधी जी प्रचलित शिक्षण पद्धति को दोषपूर्ण समझते थे। पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाए। गांधी जी ने जिस नवीन शिक्षा योजना का विचार जनता के समक्ष रखा उसमें शिक्षा - विधि नितांत नवीन है। प्रचलित शिक्षण विधि में अध्यापक एवं छात्र मे कोई संपर्क नहीं रहता। अध्यापक व्याख्यान देकर चला जाता है और छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठे रहते है। इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षण पद्धति के विपरीत गांधी जी एक ऐसी शिक्षण प्रक्रिया को लाना चाहते थे जिसमें छात्र और शिक्षक के बीच की खाई कम हो और छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में न होकर सक्रिय अनुसंधानकर्ता, और प्रयोगकर्ता के रूप में भाग लें।

गांधी जी ग्रामीण भारत की नाड़ी पहचान गए थे। भारत गांवों में बसा है और किसी भी शिक्षा पद्धति की सफलता ग्रामीण शिक्षा के परिणामों पर ही निर्भर है। उन्होंने भारतीय समाज के लिए बेसिक शिक्षा को सर्वोत्तम कहा है। वह बच्चों को मिलने वाली साधारण अक्षरज्ञान की शिक्षा को शिक्षा नहीं मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे बच्चा अपनी इंद्रियों का बुद्धिपूर्वक उपयोग करना सीखे। शिक्षा से न केवल बालक के शरीर और मस्तिष्क का विकास हो अपितु आत्मा भी जागृत होनी चाहिए। 31.7.1937 के हरिजन में उन्होंने लिखा - "मैं तो बच्चे की शिक्षा का प्रारंभ इस तरह करूँगा कि उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाई जाए और जिस क्षण से वह अपनी तालीम शुरू करे उसी क्षण उसे उत्पादन का काम करने योग्य बना दिया जाए। इस तरह की शिक्षा पद्धति में मस्तिष्क और आत्मा का उच्चतम विकास संभव है।"

गांधी जी शिल्पकारी एवं दस्तकारी जैसे ग्रामोद्योगों के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा देने की पक्षपाती थे जिसके अत्यंत दूरगामी परिणाम होने वाले थे। इससे नगर और गांवों का स्वास्थ्यप्रद नैतिक विकास होगा और समाज की मौजूदा व्यवस्था की बड़ी से बड़ी बुराइयों को दूर करने में सहायता मिलेगी। और सबसे बड़ी बात तो हमारे देहातो का दिन - दिन बढ़ने वाले ह्रास रुक जाएगा और एक ऐसी न्यायपूर्ण व्यवस्था की बुनियाद पड़ेगी जिसमें अमीर - गरीब का अप्राकृतिक भेद कम

होगा और हर एक के गुजारे लायक कमाई स्वतंत्रता के अधिकार का आश्वासन होगा।

शिक्षा विधि में गांधी जी महत्वपूर्ण परिवर्तन चाहते थे। इस परिवर्तन की दिशा में पहली बात वह यह चाहते थे कि शिक्षण का माध्यम मातृभाषा हो। दूसरी महत्वपूर्ण बात शिक्षा पुस्तकीय न होकर शिल्प आधारित हो और तीसरा शिक्षा चरित्र निर्माण का साधन होना चाहिए। गांधी जी के विचार में पाठ्यक्रम ऐसा नहीं होना चाहिए जिसमें केवल बौद्धिक विकास हो वरन् किसी क्राफ्ट को केंद्र मे रखकर शिक्षा दी जाए जिससे बालक का सर्वांगीण विकास हो। गांधी जी के शिक्षा दर्शन में क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम को महत्व दिया गया है। क्राफ्ट कोई भी हो सकता है - कृषि, कताई-बुनाई, गत्ते का कार्य, लकड़ी का कार्य आदि। इन सभी क्रिया प्रधान कार्यों से मौजूदा सामाजिक कटुता की बुराइयों को काफी हद तक दूर करने में सहायता मिलेगी।

गांधी जी प्रचलित शिक्षा पद्धति को दोषपूर्ण समझते थे जिसमें केवल मस्तिष्क को शिक्षित करने का प्रयत्न है और शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास की उपेक्षा की गई है। उनके अनुसार शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो बालकों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाए। क्रियाप्रधान शिक्षण विधि को पाठ्यक्रम के केंद्र में रखकर शिक्षा दी जानी चाहिए। उन्होंने अनुभव द्वारा सीखने को प्रोत्साहन दिया।

उद्देश्य विहीन शिक्षा कोई अर्थ नहीं रखती। अत: शिक्षा का एक निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। कुछ शिक्षाशास्त्रियों के मतानुसार शिक्षा का लक्ष्य व्यापारिक है जबकि कुछ लोगों ने इसे ज्ञान संबंधी तथा संस्कृति संबंधी होना निर्धारित किया है तो कुछ ने शिक्षा का उद्देश्य नैतिक और कुछ ने सामाजिक माना है। जनसाधारण का विचार है कि शिक्षा जीविका निर्वाह में सहायता करे अर्थात् शिक्षा का उद्देश्य व्यापारिक होना चाहिए जो जीविकोपार्जन में सहायक हो।

महात्मा गांधी शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य मानव जीवन का सर्वतोमुखी विकास मानते थे। उन्होने शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित करते हुए लिखा था ''शिक्षा से मेरा तात्पर्य है - शिशु एवं मानव शरीर के मन एवं आत्मा में निहित सर्वश्रेष्ठ तत्वों का विकास।'' बड़े स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा है कि, ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है - बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास।''

महात्मा जी भारतीय जनता को सब तरह से खुशहाल बनाना चाहते थे। वे भारत को राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दासता के बंधन से सर्वथा मुक्त करना चाहते थे। अत: शिक्षा की औषधि को उन्होने सार्वभौमिक रूप से प्रसारित करना चाहा। वे चाहते थे कि भारतीय पूर्ण मनुष्य एवं उपयोगी नागरिक बने। भारत का प्रत्येक व्यक्ति साक्षर नहीं, अपितु शिक्षित हो। उनका कहना था कि, साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न प्रारंभ। यह केवल एक साधन है, जिसके द्वारा पुरुष एवं स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।

महात्मा गांधी ऐसा मानते थे कि सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों की आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों को विकसित एवं उत्तेजित करती है। वे चाहते थे कि शिक्षा द्वारा मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क, हृदय तथा आत्मा की सारी शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हो। जीवन के सभी पक्षों से संबंध रखने के कारण गांधी जी की शिक्षा के पाँच प्रमुख उद्देश्य है। पहला उद्देश्य जीविकोपार्जन का है जिसका अर्थ है कि शिक्षा बालक के बड़े होने पर उसे जीविकोपार्जन के योग्य बनाए। यदि शिक्षा यह कार्य नहीं करती है, तो वह व्यर्थ है। यदि वह व्यक्ति की भोजन, वस्त्र और मकान की मूल आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करती है तो वह निरर्थक है। गांधी जी ने आत्मनिर्भर बनाने वाली शिक्षा पर बल दिया। उनका कहना था कि शिक्षा द्वारा बालकों को बेरोजगारी के विरुद्ध एक प्रकार की सुरक्षा देनी चाहिए। 7 वर्ष का कोर्स समाप्त करने के बाद 14 वर्ष की आयु मे बालक को कमाने वाले व्यक्ति के रूप में विद्यालय से बाहर भेजा जाना चाहिए।

गांधी जी की शिक्षा का दूसरा उद्देश्य सांस्कृतिक है। गांधी जी ने संस्कृति और शिक्षा के सांस्कृतिक उद्देश्य को बताते हुए 1946 में "कस्तूरबा बालिका आश्रम", नई दिल्ली की बालिकाओं से कहा, मैं शिक्षा के साहित्यिक पक्ष के बजाय सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूँ। बालिकाओं को अपने बोलने, बैठने, चलने, कपड़े पहनने और छोटे से छोटे कार्य एवं व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करना चाहिए। गांधी जी की शिक्षा का तीसरा उद्देश्य बालकों का सामंजस्यपूर्ण विकास है अर्थात् बालक की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को इस प्रकार विकसित किया जाए कि उसका सामंजस्य पूर्ण विकास हो। उनका कहना था कि सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों को आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों

को व्यक्त करने के लिए प्रेरित करती है। गांधी जी की शिक्षा का चतुर्थ उद्देश्य नैतिक या चारित्रिक विकास है। उन्होने अपनी 'आत्मकथा' में स्पष्ट लिखा है, "मैंने हृदय की संस्कृति या चरित्र के निर्माण को सदैव प्रथम स्थान दिया है।" गांधी जी का यह दृढ़ विश्वास था कि बिना शिक्षा और पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ है।

गांधी जी की शिक्षा का पाँचवां उद्देश्य व्यक्ति की मुक्ति है। 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् शिक्षा या विद्या वही है जो मुक्त करती है। गांधी जी के अनुसार मुक्ति का अर्थ है वर्तमान जीवन में भी सब प्रकार की परतंत्रता व दासता से मुक्त होना। अत: शिक्षा का उद्देश्य है मनुष्य को सभी प्रकार की दासता से मुक्त करना।

गांधी जी की उपर्युक्त विचारधारा के आधार पर सन् 1937 मे शिक्षाशास्त्रियों एवं विद्वानों की एक समिति बनी जिसने वर्धा में, गांधी जी के सभापतित्व में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए:

1. बालकों की सात वर्ष की अनिवार्य एवं नि: शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

2. शिक्षा का माध्यम बालकों की मातृभाषा हो।

3. शिक्षा स्वावलंबी हो अर्थात् किसी न किसी उद्योग पर आधारित हो।

4. इन तरीकों से अध्यापकों का खर्च भी निकाला जाए।

महात्मा गांधी के बेसिक शिक्षा के अंतर्गत शैक्षणिक विचार वास्तव में भारत की आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक परिस्थितियों के अनुकूल और सच्ची शिक्षा की ज्योति का अक्षय प्रकाश फैलाने वाले हैं। इन प्रयोगों के परिणामस्वरूप भारत में शिक्षा की दशा में सुधार संभव हो सका। उन्होंने हमें पाखंडी और धूर्त शिक्षा के घेरे से बाहर निकाला और हमारे सामने नई रोशनी का प्रकाश बिखेरा।

बी - 603, प्रिंस अपार्टमेंट, आई. पी. एक्सटेंशन, दिल्ली - 92

❑❑❑

मानवता का अमर पुजारी - महात्मा गांधी

डॉ. उमाकांत खुबालकर

कुछ दिनों पूर्व फेसबुक की मेरी पोस्ट पर विश्व शांति पुरस्कार से सम्मानित दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति स्व. नेल्सन मंडेला के जन्म दिन पर सैकड़ों मित्रों की श्रद्धांजली एवं विनम्र अभिवादन के संदेश प्राप्त हुए थे। इस संदर्भ में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि स्वयं मंडेला भी महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन एवं शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धांतों में गहरी आस्था रखते थे। इस बात का जीता-जागता प्रमाण यह था कि जिस साम्राज्यवादी अंग्रेजी शासन ने उन्हें लंबे समय तक कारागार में बंदी बनाए रखा कारावास से मुक्त होने के पश्चात भी उन्होने अंग्रेज सरकार के त्रासदपूर्ण शोषण के खिलाफ अपने देश के लोगों से कुछ नहीं कहा। दूसरे शब्दों में उन्होने शत्रुवत् एवं विद्वेषपूर्ण व्यवहार करनेवाले अंग्रेजों को क्षमा कर दिया था। यह उनके मानवीय चरित्र की उदात्तता है। गांधी जी कहा करते थे ''पाप से घृणा करो पापी से नहीं"

उनके मन में सभी धर्मो एवं पंथों के प्रति आदर एवं श्रद्धाभाव रहा है। वस्तुतः वकालत की कानूनी पुस्तकों के अलावा उन्होंने कुरान, बाइबिल, गीता, जैन धर्म संबंधित ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था।

बचपन में उन्होंने 'राजा हरिश्चंद्र एवं तारामती' नाटक देखा तथा राजा हरिश्चंद्र की तरह सत्य एवं न्याय के पथरीले मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प लिया था। यही नहीं सत्य को आजीवन मन वचन और कर्म से अक्षरशः पालन किया। अपने दैनिक जीवन में भी ईश्वर का नियमित ध्यान, प्रार्थना एवं नाम संकीर्तन को महत्व दिया था। उनका प्रिय भजन था।

वैष्णव जन तो तेणे कहिए
जे पीर पराई जाणे रे।

ईश्वर का सच्चा भक्त तो वही हो सकता है जो दूसरों की पीड़ा, दुःख - दर्द या संवेदना को भली-भांति समझ सकता है, महसूस कर सकता है।

वे वकालत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए द. अफ्रीका गए थे। वहाँ काले-गोरे का नस्ल भेद चरम पर था। अंग्रेज गुलाम जनता को मनसा-वाचा-कर्मणा हर स्तर पर प्रताड़ित किया करते थे। गांधी जी दूसरों की पीड़ा देखकर आहत हो उठते थे। उस दुर्दांत पीड़ा, यंत्रणा से मुक्ति का मार्ग क्या हो सकता है? गौतम बुद्ध भी अपना परिवार त्यागकर जीवन में सत्य की खोज में निकले थे। तब उन्हें अहिंसा परमो धर्मः का सूत्र मिला था। यह जीवन केवल अपने लिए जीने का क्या अर्थ हो सकता है? भगवान राम ने केवल अपने पिता के वचनों का पालन करने के लिए राजपाट, सुख - समृद्धि, वैभव का जीवन त्यागकर चौदह वर्ष के वनवास को सहर्ष स्वीकार किया था। विदा होते वक्त कटु वचन बोलनेवाली माँ कैकेयी का आशीर्वाद भी लिया था। तब उन्हें राज्य की जनता का वास्तविक दुःख, कष्ट, त्रासदियों का साक्षात्कार हुआ था। अपने कर्तव्य पालन की आंतरिक शक्ति का साक्षात्कार हुआ था। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं।

जितने ही कष्ट कंटकों में
जिसका जीवन सुमन खिला।
उतना ही गौरव आनंद उसे
यत्र - तत्र सर्वत्र मिला।

इसी मानसिक ऊहापोह और द्वंद्व के बीच गांधी जी को डरबन के प्रवास में ऐसा कटु अनुभव मिला कि वे अंदर से हिल गए।

ट्रेन की प्रथम श्रेणी की यात्रा करते समय अंग्रेजों ने काला आदमी मानकर उनका सामान डिब्बे से फेंक दिया तथा धक्के मारकर ट्रेन से उतार दिया था। तब वे आत्मग्लानि से संतप्त हो उठे थे। कहते हैं कि इंसान ठोकरों से ही संभलता है।

इस अप्रत्याशित घटना से गांधी जी को इस बात का तीव्रता से एहसास हुआ कि वे सचमुच गुलाम हैं, गोरे अंग्रेजों के दास हैं। दासता की मजबूत बेड़ियों को तोड़ना ही होगा। दासता से मुक्ति का मार्ग ढूंढना होगा। यह कार्य इतना आसान भी नहीं है। गांधी को जीने का मकसद मिल गया। विदेश में बसे प्रवासी भारतीयों को परस्पर जोड़ने का अभियान तेजी से शुरू हो गया। इधर मातृभूमि की माटी उन्हें पुकारने लगी।

गांधी जी गुजराती भाषी थे, परंतु देश के लोगों से संपर्क करने, अपनी बात समझाने के लिए हिंदी सीखी। उस जमाने में हिंदी का स्वरूप आज जैसा परिनिष्ठित नहीं था। इसमें उर्दू, फारसी अरबी, मराठी, गुजराती एवं अन्य भारतीय भाषाओं के चलताउ, शब्द थे। अपनी बात को गुलामी का अभिशाप झेलनेवाले भारतीयों तक पहुचाने के लिए 'स्वराज्य' नामक अखबार हिंदी में प्रकाशित किया। दरअसल, सदियों से विदेशी आक्रांताओं के पावों तले दासता का लज्जापूर्ण जीवन जी रहे लोगों में यह एहसास ही नहीं हुआ कि अपनी ही मातृभूमि में बंदियों जैसा जीवन जीने के लिए विवश है। आखिर क्यों?

यह सवाल उनके जेहन में कभी नहीं आया था? इसे नियति मान लेना बहुत बड़ी भूल था। इसका पुरजोर प्रतिकार करना चाहिए था। बंगाल के सुभाष चंद्र बोस और महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक ने मराठी में नारा दिया 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' और इसे हमसे कोई छीन नहीं सकता है भगत सिंह चंद्रशेखर आजाद, वीर सावरकर ने सशस्त्र क्रांति का आह्वान करके अंग्रेजी शासकों की नींव हिला दी। कई क्रांतिकारी नेताओं ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' की मुहिम छेड़ दी। गांधी जी ने जनजागरण के लिए कई नारे दिए। असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, नमक सत्याग्रह (दांडी मार्च), आमरण अनशन। इस तरह के नारे अहिंसक एवं शांतिपूर्ण प्रदर्शन के जरिए अंग्रेजों के मुख्यालय के समक्ष लगाए जाते रहे। ये सभी प्रदर्शन पराधीनता की बेड़ी तोड़ने के लिए किए जाते थे। गांधी अपने गिने चुने समर्थकों के साथ देश के कोने कोने में निरंतर पदयात्राएँ करते रहे। पीड़ित जनता के घर-घर पहुँचकर स्वतंत्रता एवं देशाभिमान का अर्थ समझाते थे। इन आंदोलनों के प्रभाव से भारतीय जनता जाग उठी। चूंकि महाकवि तुलसीदास ने मुगलकाल में रचित 'रामचरितमानस' आत्मविह्वल होकर लिखा था। ''पराधीन सपनेहु सुख नाही''

भारतीय जनमानस को अपने मूलभूत अधिकारों एवं कर्तव्य का आत्मबोध हुआ। किंतु गांधी ने कभी हिंसा या उग्रवाद पर बल नहीं दिया। चूंकि वे भली भांति जानते थे कि अंग्रेजों के पास सत्ता है, हथियार है, सैन्य बल है। उन्हें पराजित करना या झुकाना असंभव तो नहीं मुश्किल जरूर है। स्वतंत्रता संग्राम में अपनी पकड़ मजबूत रखने के लिए देश के गाँव-गाँव पहुँचकर निरक्षर, निरीह जनता से प्रत्यक्ष भेंट की। उनसे संवाद स्थापित किया। अशिक्षा के कारण छुआछूत की समस्या विकराल रूप में थी। निम्न जाति के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने, पूजा - पाठ के लिए मंदिर प्रवेश की मनाही थी। ऊँची जाति के लोग उन पर अत्याचार करते थे। इन सभी समस्याओं से जूझने के लिए पद्यात्राओं के माध्यम से गाँव-गाँव पहुँचते थे। ग्रामवासियों से मिलकर अपने परिवेश की स्वच्छता, स्वास्थ्य, पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा की। इतने बडे व्यक्ति होकर भी लोगों के शौचालय साफ करने में नहीं हिचकते थे, यह सब प्रचार या प्रसिद्धि के लिए नहीं था। 'अछूतोद्धार' कार्यक्रम को प्रभावी किया। उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए जान की बाजी लगा दी। अछूत या अस्पृश्य वर्ग को 'हरिजन' की संज्ञा देकर सवर्णो के साथ मंदिर प्रवेश की मुहिम चलायी। उनका मानना था कि सामाजिक एवं आर्थिक समानता का अधिकार समाज के सभी दबे-कुचले वर्ग को मिलना चाहिए वर्ना आजादी का क्या अर्थ रह जाएगा। शिक्षा का मूलभूत अधिकार भी उन्हें प्राप्त होना चाहिए।

तभी वे सर उठाकर जी सकेंगे गांधी का अर्थशास्त्र भी यही कहता है। देश की सभी योजनाएँ, मूलभूत विकास कार्यक्रम गाँव से शुरू किए जाए। वास्तविक भारत गांव में ही बसता है। कृषि हमारा राष्ट्रीय व्यवसाय एवं उद्योग है। जब गाँव संपन्न होंगे, तो देश संपन्न होगा कृषि मजदूर बेकार नहीं होंगे। वे स्वराज्य नहीं सुराज चाहते थे। वर्तमान प्रधानमंत्री, मोदी जी भी सुशासन व्यवस्था पर विश्वास रखते हैं।

स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल फूंकने के साथ - साथ गांधी जी रेल के तृतीय श्रेणी के कंपार्टमेंट में सफर करते हुए देश के असली जनता जनार्दन से संवाद करते

रहे। आज भी पढ़े - लिखे लोग 'थर्ड क्लास' को गांधी डिवीजन का फिकरा कसते पाए जाते हैं। इससे गांधी की महत्ता कम नहीं होती।

लेकिन वे इन सभी उपाधियों से ऊंचे स्थान पर विराजमान रहे। उनका प्रमुख ध्येय था हर स्थिति में मनुष्यता बचाना। अपने आप को असहिष्णु बनने से रोकना। जीवन में कभी किसी उच्च पद की महत्वाकांक्षा नहीं रही। हमेशा ही 'सादा जीवन उच्च विचार' को प्रश्रय देते रहे।

विदेशी वस्त्रों का परित्याग करके चरखे से सूत कातकर धोती पहननेवाले वे पहले महानायक थे। उनका मानना था कि हम देश में अपनी जरूरत का सामान स्वयं तैयार करेंगे तथा उसका इस्तेमाल भी करेंगे तभी हम सच्चे अर्थो में स्वदेशी कहलाएंगे।

देश के जन जन से जुड़ने, संपर्क करने के अभियान में दक्षिण भारत की ओर पद यात्रा कर रहे थे। रास्ते में एक अत्यंत विपन्न महिला को नदी के किनारे नहाते हुए देखा। उसके पास एक ही मैली कुचैली साड़ी रही होगी, अत: उसने अपनी साड़ी का आधा हिस्सा धोकर सुखाया फिर सूखे भाग को किसी तरह शरीर पर ओढकर शेष हिस्सा धोने में मग्न थी। गांधी यह दृश्य देखकर करुणा से भर उठे।

तब उसी क्षण से उन्होने आजीवन यह प्रण लिया कि जब तक देश की गरीब जनता अपने तन पर पूरे वस्त्र नहीं पहनेगी तब तक वे भी आधी धोती ओढ़कर काम चलाएंगे। इस पवित्र एवं दृढ संकल्प के साथ उन्होने अपनी धोती का ऊपरी हिस्सा निकालकर उस गरीब महिला की ओर बढ़ा दिया था। क्या ऐसा त्यागपूर्ण नि:स्वार्थ उदाहरण कहीं और मिल सकता है?

1983 - 84 के दरमियान ब्रिटेन के सर रिचर्ड एटनबरो ने 'दी गांधी' शीर्षक की अंग्रेजी फिल्म बनायी थी। इससे पूर्व भारत में किसी ने गांधी पर फीचर फिल्म बनाने का साहस नहीं किया होगा। विश्व भर में चर्चित इस फिल्म को लाखों तो क्या करोड़ों दर्शकों ने देखा होगा। उस फिल्म का मार्मिक दृश्य मेरे स्मृति पटल पर तेजी से अंकित हो गया था। इस फिल्म का वयोवृद्ध नायक शाम के समय अरब सागर के तट पर अपने समवयस्क मित्र के साथ टहल रहा था। विराट समुद्र की अगाध जलराशि में सूर्य देवता अपनी सुनहरी रश्मियों के साथ डूबने का प्रयास कर रहे थे। शांत और सौम्य प्रकृति के सान्निध्य में गांधी का मित्र गांधी की ओर देखता हुआ धीरे धीरे मुस्कराता है। कोई अज्ञात उत्सुकता या प्रश्न उसके अंदर से छलक रहा था। तब गांधी ने अपनी चिरपरिचित दिलफेंक मुस्कराहट के साथ कहा ''मित्र, पूरे जीवन में जिस सत्य की खोज में निकला था। उसका थोड़ा-थोड़ा अर्थ अब समझ में आ रहा है।''

विश्व वंदनीय महामानव गांधी को जितना मैने समझा है, लिखने का क्षुद्र प्रयास किया है उन्हें अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

33/11, नोवा अशोक रोड, क्षिप्रा सन सिटी, इंदिरापुरम, गाज़ियाबाद (उ. प्र.) - 201014

❑❑❑

महात्मा गांधी का महात्मापन

डॉ. वी. जयलक्ष्मी

गांधी जी का जीवन लोगों के लिए था। उन्होंने मानवता के लिए अपना बलिदान दे दिया था। गांधी जी ने अपने दम पर विश्व को यह दिखला दिया कि प्रेम, सत्य और अहिंसा का मार्ग ही श्रेष्ठ मार्ग है। इसी का प्रयोग करके उन्होंने देश को आजादी दिलाई। समाज के गरीब, असहाय और अछूतों के उद्धार के लिए किए गए उनके कार्यों को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। स्वराज, सत्याग्रह, प्रार्थना, सत्य, प्रेम, अहिंसा, स्वतंत्रता के संबंध में उनके सिद्धांत बड़े बेशकीमती हैं। वह 'कथनी-करनी' में एकनिष्ठ रहने वाले थे। सबसे बुद्धिमान, संवेदनशील, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, सिद्धांतवादी थे।

बचपन में ही सत्यवादी: बचपन में एक बार गांधी जी जब विद्यालय में पढ़ते थे तब विद्यालय में एक घटना घटी जिसमें यह संकेत मिल गया था कि वे भविष्य में महान बनेंगे। हुआ यूँ कि उनके विद्यालय में विद्यालय निरीक्षक निरीक्षण के लिए आये हुए थे। छात्र शब्दों की 'स्पेलिंग' कैसे लिखते हैं यह जानने के लिए उन्होंने कक्षा में छात्रों की 'स्पेलिंग टेस्ट' लेना शुरू किया। गांधी जी शब्द की स्पेलिंग गलत लिख रहे थे, इसे देख, कक्षा के अध्यापक ने गांधी जी को संकेत दिया की वे अपने पड़ोसी छात्र से नकल करते हुए सही स्पेलिंग लिखें। परंतु गांधी जी ने इंकार कर दिया था। वे आज्ञाकारी थे परंतु उनकी दृष्टि में जो गलत था, वे उसे उचित नहीं मानते थे।

सत्य और अहिंसा पर अमल: गांधी जी अपने आप को कभी भी महात्मा नहीं मानते थे। उनके लिए सत्य 'महात्मापन' से अधिक प्रिय था। वे अपने आप को एक विनम्र सत्यशोधक मानते थे। वे जीवन भर सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते रहे। उन्होंने सत्य, प्रेम, अहिंसा के मार्ग पर चलकर यह संदेश दिया कि आदर्श जीवन ही व्यक्ति को महान बनाता है। गांधी जी का एक सपना था कि हर किसी को सत्य और अहिंसा को व्यक्तिगत आचरण की ही नहीं बल्कि समूहों, समुदायों और राष्ट्रों के आचरण की वस्तु बनाना होगा। इसी प्राप्ति का प्रयास करते हुए ही वे जी रहे थे और मरते दम तक उनका यही प्रयास था। उनका संपूर्ण जीवन एक साधना थी, तपस्या थी। सत्य की शक्ति द्वारा उन्होंने सारी बाधाओं पर विजय प्राप्त की।

गरीबों से प्रेम: गांधी जी ने जीवन भर निर्धनों से प्रेम किया था और भरपूर मात्रा में किया था। यह उनका स्वभाव था और वे उनको सदा अपने सगे-संबंधी ही मानते थे। उन्होंने गरीब और अपने बीच कोई फर्क महसूस नहीं किया था।

सभी से नातेदारी: गांधी जी कभी भी किसी व्यक्ति विशेष से नाराज नहीं हुए अर्थात् दोषी व्यक्ति को वे कभी भी चोट नहीं पहुँचाते थे क्योंकि उन्हें हमेशा ऐसे ही लगता था कि वे खुद भी एक समय ऐसे ही थे। वे सच्चे हृदय से कहते थे कि वे अपने साथियों के दोष ढूँढने में बड़े शिथिल हैं और उनको यह भी लगता था कि स्वयं उनमें ही इतने सारे दोष हैं कि उन्हें उन साथियों की उदारता की जरूरत थी। इस प्रकार दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति के साथ वे अपनी नातेदारी, अपनी बंधुता बनाए रखते थे। उनके अनुसार प्रेम की आंच में तो कठोर से कठोर पत्थर तक को पिघलाने की ताकत होती है।

आत्म त्याग: गांधी जी आत्मत्याग के अलावा और किसी सिद्धांत का अनुसरण करने की जरूरत नहीं

समझते थे। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को त्याग और अनुशासन की अग्निपरीक्षा से गुजरना ही होगा। उनका सत्याग्रह एक अचूक हथियार सिद्ध होता था।

हर किसी का सम्मान चाहे वो विरोधी ही क्यों न हो: गांधी जी हर किसी का सम्मान करते थे। उनकी नजर में सब एक समान है चाहे वो गरीब हो या अमीर, चाहे मित्र हो या विरोधी। उन्होंने सदा यह प्रयास किया था कि जिनका उनसे मतभेद था, उनसे भी वे अपने स्वजनों और प्रियजनों जैसा प्रेमपूर्ण व्यवहार करें। यह भी अनुभव किया कि उन्होंने जिनके सिद्धांतों और नीतियों का विरोध किया था, वे भी प्राय: उनके प्रति अपना प्रेम और विश्वास यथावत बनाए रखते थे। दक्षिण अफ्रीकियों ने भी व्यक्तिगत स्तर पर उन्हें अपना विश्वास और मित्रता दी थी। उनके अनुसार ब्रिटिश नीति और प्रणाली की भर्त्सना करने के बावजूद उनके हजारों अंग्रेज स्त्री-पुरुषों का स्नेह प्राप्त था और आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता की पूरी तरह निंदा करने पर भी उनके यूरोपीय और अमरीकी मित्रों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। उनके अनुरूप यह अहिंसा की ही विजय थी। इतना ही नहीं, उन्होंने जान-बूझकर किसी भी प्राणी को चोट नहीं पहुँचाया था, साथी मानवों को तो और भी नहीं, भले ही वे उनके साथ कितनी ही बुराई से पेश क्यों न हो। उन्हें यह भी लगता था कि उनका धर्म उन्हें किसी को भी अपना शत्रु मानने की आज्ञा नहीं देता और वे किसी प्राणी के प्रति दुर्भावना नहीं रख सकते।

अहंकार का त्याग: व्यक्ति की क्षमता की सीमाएँ हैं, और जैसे ही वह यह समझने लगता है कि वह सब कुछ करने में समर्थ है, ईश्वर उसके गर्व को चूर कर देता है। गांधी जी का कहना था 'यदि हम धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि से 'मैं' और 'मेरा' निकाल सकें तो शीघ्र ही स्वतंत्र हो जाएँगे, और पृथ्वी पर स्वर्ग उतार सकेंगे। अत: अहंकार का त्याग, गांधी जी खुद तो करते ही थे, औरों को भी उसे त्यागने के लिए सलाह देते थे जिससे उनका पतन न हो।

क्रोध पर नियंत्रण: गांधी जी के अनुसार जिस प्रकार ऊष्मा को परिरक्षित करके उर्जा में बदला जाता है उसी प्रकार क्रोध को नियंत्रित करके एक ऐसी शक्ति में रूपांतरित किया जा सकता है जो सारी दुनिया को हिला सकती है। उन्होंने यह भी व्यक्त किया है कि वे भी क्रोधित होते हैं परंतु उसे व्यक्त नहीं करते और नियंत्रण में रख पाते हैं। इस प्रकार के निरंतर अभ्यास से उन्होंने क्रोध पर नियंत्रण रखने हेतु सफलता प्राप्त कर लिया था। वे अदम्य आशावादी थे क्योंकि वे अपने पर विश्वास रखते थे।

परिश्रमी : महात्मा गांधी परिश्रमपूर्ण जीवन जीने के पक्षधर थे। इन्होंने जीवन में सादगी और संयम को अत्यधिक महत्व दिया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि दृढ़ निश्चय, सच्ची लगन और अथक प्रयास से असंभव को भी संभव बनाया जा सकता है।

किसी धर्म विशेष से न बंधना: सर्वधर्म समभाव गांधी जी की देन है। देश की एकता को हमेशा बनाए रखने के लिए सब कुछ करते थे।

विश्वबंधुत्व: गांधी जी का लक्ष्य केवल भारतवासियों से बंधुत्व की स्थापना करना ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व के साथ संबंध स्थापित करने का लक्ष्य था। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन और समय भारत की आजादी के लिए लगा दिया था। अत: भारत की आजादी के जरिए, वे विश्वबंधुत्व के लक्ष्य को भी प्राप्त करना चाहते थे। उनका आंदोलन विश्व के सभी लोगों को एक सूत्र में पिरोने के लिए था जो एक-दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि समष्टि के अंग माने जाते थे।

ईश्वर में आस्था : गांधी जी के अनुसार जो ईश्वर में आस्था न रखता हो वो अहिंसा में भी आस्था नहीं रख सकता। उस परम बल के सहारे के बिना अहिंसा का भी कोई मूल्य नहीं है। अहिंसक व्यक्ति ईश्वर की शक्ति एवं अनुग्रह के बिना कुछ भी नहीं कर सकता। ईश्वर में आस्था जरूरी है। ईश्वर सबके हृदयों में विराजमान है। वह ज्ञात और अज्ञात, सभी बलों में श्रेष्ठ बल है।

परमात्मा का आशय: 'सत्य' ही ईश्वर है -

ईश्वर के हजार नाम हैं, यूँ कहा जा सकता है कि वह अनाम है। कोई उसे राम कहते हैं, कोई रहमान, कोई गॉड या कृष्ण। मनुष्य द्वारा इस अदृश्य शक्ति- जो शक्तियों में सबसे बड़ी है - को कोई नाम देने का प्रयास ही व्यर्थ हैं। सब एक ही ईश्वर की पूजा है, पर जिस प्रकार सारे आहार सभी लोगों को माफिक नहीं आते उसी प्रकार सारे नाम सभी को प्रिय नहीं लगते। प्रत्येक व्यक्ति अपने साहचर्य के अनुसार नाम का चयन करता है और अंतर्यामी, सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ होने के नाते वह हमारी अंतरतम की भावनाओं को समझता है और हमारी पात्रता के अनुसार हमें प्रत्युत्तर देता है।

गांधी जी के अनुसार, हम ईश्वर को किसी अन्य नाम से भी पुकार सकते हैं, बर्शते कि उस नाम का

अर्थ हो। जीवन का जीवंत नियम-दूसरे शब्दों में, नियम और नियम-निर्माता एक साथ। वे ईश्वर को साकार नहीं मानते। उनकी दृष्टि से सत्य ही ईश्वर है। गांधी जी उस महान शक्ति को 'अल्लाह' या 'खुदा' या 'ईश्वर' के नाम से नहीं बल्कि सत्य के नाम से पुकारते हैं। पूर्ण सत्य केवल उसी महान शक्ति अर्थात् सत्य के हृदय में विराजमान है।

आदर्श समाज का चित्र तथा ग्राम स्वराज्य : गांधी जी एक आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत करते हुए कल्पना करते थे कि 'एक ऐसा आदर्श समाज हो जिसमें न कोई गरीब होगा, न भिखारी, न कोई ऊँचा होगा, ना नीचा। सब अपने आप खुशी से और गर्व से अपनी रोटी कमाने के लिए मेहनत करेंगे। ऐसी दुनिया हों जिसमें सांप्रदायिकता अथवा जातिवाद के लिए कोई स्थान न हो और सभी धर्मों के प्रति समान आदर रखा जाए'। 'ग्राम स्वराज्य' के संबंध में भी उनका कहना था 'हर एक गाँव को अपने पाँव पर खड़ा होना होगा - अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगीं, ताकि वह अपना सारा कारोबार स्वयं चला सके। यहाँ तक कि वह सारी दुनिया से अपनी रक्षा स्वयं कर सके। मनुष्य को सहयोग से रहना चाहिए और सबकी भलाई के लिए काम करना चाहिए। आगे यह भी समझाते हैं कि सहकारिता की पद्धति किसानों के लिए ही ज्यादा जरूरी है और सहकारिता का आधार पूर्ण अहिंसा पर होगा।

विनोबा भावे के अनुसार "मैं बापू से मिला और उन पर मुग्ध हो गया, तो उनकी अंतर्बाह्य एकता की अवस्था के कारण। गीता के कर्मयोग का प्रत्यक्ष आचरण मैंने बापू में देखा। महापुरुष तो गाय की तरह वत्सल होते हैं। वे खुद घास आदि खाकर बालकों को मधुर दूध पिलाते हैं। उनके आश्रय में बालक पोसते हैं, बढ़ते हैं। महात्मा गांधी का यह अनुभव सब लोगों को आया, जिन्होंने उनका आश्रय लिया। उनके आश्रय में जो भी आए, वे अगर बुरे भी थे तो अच्छे बने। छोटे थे तो बड़े बने, कायर थे तो निर्भय बने। उन्होंने हजारों का महत्व बढ़ाया और उस पर भी अपने को सबसे छोटा समझते थे।"

राष्ट्रपिता और राष्ट्रभाषा : गांधी जी ने जब हिंदी की बात उठाई थी तो निश्चित ही उनके मन में राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ हिंदी द्वारा ही राष्ट्रीयता का संदर्भ भी सामने रहा होगा। उनके अनुसार - "हिंदी भाषी लोगों को दक्षिण की भाषा सीखने की जितनी जरूरत है, उसकी अपेक्षा दक्षिण वालों को हिंदी सीखने की आवश्यकता अवश्य ही अधिक है। सारे हिन्दुस्तान में हिंदी बोलने और समझने वालों की संख्या दक्षिण की भाषाएँ बोलने वालों से दुगुनी है। प्रांतीय भाषा या भाषाओं के बदले में नहीं, बल्कि उनके अलावा एक प्रांत से दूसरे प्रांत का संबंध जोड़ने के लिए एक सर्वमान्य भाषा की आवश्यकता है। ऐसी भाषा तो एकमात्र हिंदी या हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।

हिंदी साहित्य पर गांधी जी का प्रभाव : गांधी जी के विराट् व्यक्तित्व से प्रेरित होकर भारतीय भाषाओं में विशेषकर हिंदी में काफी काव्य-रचना हुई। उनके व्यक्तित्व में कठोर इंद्रिय-निग्रह द्वारा अर्जित आत्मिक शक्ति, त्याग एवं अपरिग्रह, सत्य-निष्ठा, आत्म-बलिदान, अहं का समाजीकरण, राग का उन्नयन आदि अनेक तप:पूत गुण थे, जिनका देश के अधिकांश प्रबुद्ध कवियों की चेतना पर अनिवार्य प्रभाव पड़ा। मैथिलीशरण गुप्त, पंत, महादेवी, सियारामशरण गुप्त, नवीन, बच्चन, दिनकर, नरेंद्र, अंचल, भवानीप्रसाद मिश्र आदि अनेक कवि पूरे दो दशकों तक उनकी व्यक्ति-गरिमा का शत-शत कविताओं में स्तवन कर अपनी वाणी को पवित्र करते रहे, जिनमें से अनेक कृतियाँ कलात्मक दृष्टि से निश्चय ही मूल्यवान हैं। कुछ महाकाव्यों और खंडकाव्यों की भी रचना हुई जैसे - पं गोकुलचंद शर्मा का 'गांधी-गौरव', सोहनलाल द्विवेदी का 'सेवा ग्राम', रघुवीरशरण जी का 'जन नायक' आदि। सुमित्रनंदन पंत के विशाल ग्रंथ 'लोकायतन' में गांधी जी एक जीवंत पात्र के रूप में अवतरित होते हैं।

महात्मा गांधी समस्त मानव जाति के लिए मिशाल हैं। उन्होंने हर परिस्थिति में अहिंसा और सत्य का पालन किया और लोगों से भी इनका पालन करने के लिए कहा। उन्होंने अपना जीवन सदाचार में गुजारा। वह सदैव भारतीय पोशाक धोती व सूत से बनी शाल पहनते थे। सदैव शाकाहारी भोजन ग्रहण करने वाले इस महापुरुष ने आत्मशुद्धि के लिए कई बार लंबे उपवास भी रखे। उनके योगदान के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए देशवासियों ने उन्हें 'राष्ट्रपिता' की उपाधि दी।

ऐसे महापुरुष बार-बार जन्म नहीं लेते। गांधी जी के विचारों पर चलकर देश की वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी सुनहरे भारत का सुनहरा इतिहास लिख सकती है। 'हे बापूजी आप जैसे महापुरुष को नमन'...

संदर्भ ग्रंथसूची-

1.'भारत के महान स्वतंत्रता सेनानी' - सत्येंद्र प्रताप सिंह (आदि बुक्स, दिल्ली)

2.'ग्राम स्वराज्य' - महात्मा गांधी (प्रभात प्रकाशन, दिल्ली)

3.'बापू जीवन और दर्शन' - रोमिला चावला (सं) (राज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली)

4.'भारत के निर्माता-3'- संगीता वर्मा (सं) (वर्तिका पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली)

5.'महान व्यक्तित्व' - राहुल सिंह (अद्वित पब्लिकेशन, नई दिल्ली)

6.'महात्मा गांधी के विचार' - महात्मा गाधी, के. सी. पंत (सं) (नव प्रभात साहित्य, दिल्ली)

7.'महात्मा गांधी' : साहित्यकारों की दृष्टि में' - डॉ. आरसु (सं) सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली)

– विभागाध्यक्षा, भाषा विज्ञान विभाग, मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज (शिफ्ट-II) तांबरम, चेन्नै - 600059

❑❑❑

भारत की भाषा समस्या और गांधी जी

डॉ. श्रावणी भट्टाचार्य

डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने 'राधाकृष्ण शिक्षा आयोग' की रिपोर्ट में इंगित किया था कि भारत के शिक्षाविदों में अगर किसी मद्दे को लेकर सबसे अधिक विवाद है तो वह है हमारी भाषा की समस्या। यह मुद्दा हमारे अंतर्मन और भावों को इतना उद्वेलित करता है कि वस्तुनिष्ठ तरीके से इस समस्या का समाधान निकालना दुष्कर कार्य साबित हो रहा है। भारत की भाषाई समस्या दूसरे देशों से अलग है। हाल ही में किए गए एक भाषाई सर्वेक्षण में बताया गया है कि हमारे देश में 180 जीवंत भाषाएँ हैं और 544 बोलियाँ हैं। इनमें से 22 भाषाएँ संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाएँ हैं और सारी भाषाएँ साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध भाषाएँ हैं, जिनके द्वारा शिक्षा, संस्कृति और प्रशासन का कार्य आराम से चलाया जा सकता है। प्रश्न यह उठता है कि हमारी राष्ट्रभाषा क्या होनी चाहिए? शताब्दी के शुरू में ही शिक्षित भारतीयों ने मान लिया था कि भविष्य में भी अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम बनी रहेगी और भारत की राजभाषा भी अंग्रेजी ही रहेगी। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति ने हमारे देश में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा की जड़ें एकदम मजबूत कर दी थी। गांधी जी भारत के गिने चुने नेताओं में से थे जो इस विदेशी भाषा के प्रताप के दुष्परिणामों को जान गए थे, इसलिए 1909 के आरंभ से ही उन्होंने भारतीय भाषाओं के महत्व पर जोर देना आरंभ कर दिया था और अंग्रेजी भाषा को दिए जा रहे महत्व का कड़ा विरोध किया था। भारत की भाषा समस्या के दो पक्ष हैं पहली बार इतनी सारी सम्मिलित भाषाओं में से किस भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए? दूसरी बात स्कूली बच्चों की शिक्षा का माध्यम क्या हो? वास्तविकता यह थी कि अंग्रेजों के वर्चस्व के कारण अंग्रेजी ने संपर्क भाषा, राजभाषा और शिक्षा के माध्यम की भाषा के रूप में अपनी पैठ अच्छी तरह जमा ली थी। उसकी जगह कौन सी भाषा ले सकती है यह प्रश्न विचारणीय था। इस संबंध में गांधी जी ने बहुत दूर की सोची थी। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने इस संबंध में अपना सिद्धांत बना लिया था। 1917 में उन्होंने कहा था कि हिंदी और उर्दू से बनी हिंदुस्तानी को ही भारत की राजभाषा और राष्ट्रभाषा का स्थान मिलना चाहिए। अपने स्कूली जीवन में गांधी जी को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई करते वक्त मुश्किलों का सामना करना पड़ा था। तीसरी से चौथी कक्षा में पहुँचते ही उनका माध्यम अंग्रेजी बन गया था। उनको समायोजन स्थापित करने में बड़ी तकलीफ हुई। ज्यामिति में वैसे ही वह कमजोर थे उसके बाद उसे अंग्रेजी में पढ़ा। जिन कारण विषय उनके लिए और कठिन हो गया। संस्कृत भी उनके लिए तकलीफ देह साबित हुई। उन्हें बाद में एहसास हुआ कि वे अगर संस्कृत अच्छी तरह सीख लेते तो वे हमारी पुरानी शास्त्रीय पुस्तकों के ज्ञान से वंचित ना होते। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए गांधी जी ने कहा था जो भारतीय माता-पिता अपने बच्चों को सिर्फ अंग्रेजी में ही बात करना सिखा रहे हैं वह अपने देश के साथ गद्दारी कर रहे हैं; वह अपने बच्चों को अपने देश की आध्यात्मिक और सामाजिक धरोहर से वंचित कर रहे हैं। 1908 में गांधी जी अंग्रेजी के खिलाफ सबसे पहले खुलकर बोले थे। वह कहते हैं- 'भारतीय भाषाएँ दिखाकर करोड़ों लोगों को सिर्फ अंग्रेजी सिखाना उनको मानसिक रूप से अंग्रेजों का गुलाम बनाना है। लार्ड मैकाले ने पहले ही अपनी अंग्रेजी शिक्षा द्वारा इतने

सालों तक हमें बांध रखा था क्या यह दुखदायक नहीं है कि हम होमरूल पर भी टिप्पणी अंग्रेजी में करते हैं'। गांधी जी की खुद की मातृभाषा गुजराती थी। गुजराती भी एक समृद्ध साहित्यिक भाषा है फिर भी गांधी जी ने बहुत सोच-विचारकर राष्ट्रभाषा के लिए हिंदी अथवा हिंदी उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी को ही कारगर पाया। हिंदी के प्रति बापू का बड़ा गहरा प्रेम था। उनका भारतीय भाषा प्रेम और हिंदी अनुराग किसी से छिपा नहीं। वह मानते थे कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र की स्थिति एक गूंगे व्यक्ति के समान होती है। हृदय की अपनी कोई भाषा नहीं होती लेकिन हृदय-हृदय आपस में बातचीत करते हैं और हिंदी हृदय की भाषा है। उनका मानना था कि हिंदुस्तान के लिए देवनागरी लिपि का व्यवहार होना चाहिए क्योंकि रोमन लिपि का व्यवहार यहाँ हो ही नहीं सकता है। उन्होंने एक बहुत बड़ी बात कही कि हिंदी भाषा का प्रश्न स्वराज का प्रश्न है। अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता और समझता हो और मेरा मानना है हिंदी इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना और देश की उन्नति के लिए यह आवश्यक है। कई विद्वानों ने हिंदी भाषा को लेकर अपने-अपने विचार दिए हैं। डॉक्टर ग्रियर्सन का मानना है- 'हिंदी संस्कृत की बेटियों में सबसे अच्छी और शिरोमणि है'। इसी प्रकार फादर कामिल बुल्के मानते हैं कि- 'संस्कृत मां, हिंदी गृहणी और अंग्रेजी नौकरानी है'। डॉ राजेंद्र प्रसाद हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य को सर्वांग सुंदर बनाने को ही अपना कर्तव्य मानते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' कहकर हिंदी भाषा के महत्व पर बल दिया। बाबूराम सक्सेना ने हिंदी का काम देश का काम है समूचे राष्ट्र निर्माण का प्रश्न है ऐसा माना है। जस्टिस कृष्ण स्वामी अय्यर मानते हैं कि- समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक है तो वह देवनागरी ही हो सकती है'। शंकरराव काप्पीकेरी कहते हैं कि- 'हिंदी का पौधा दक्षिण वालों ने त्याग से सींचा है' और यह बात सही है। माखनलाल चतुर्वेदी- 'हिंदी हमारे देश और भाषा की प्रभावशाली विरासत है'। विभिन्न विद्वानों के हिंदी भाषा को लेकर दिए गए विचार इस बात की ओर संकेत करते हैं कि हिंदी एक ऐसी सशक्त भाषा है जो भारत जैसे राष्ट्र का पूरे विश्व में प्रतिनिधित्व कर सकती है इसमें कोई शंका नहीं है। गांधी की भाषा नीति सशक्त रही है। उन्होंने सदैव यह माना है कि अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है जो राष्ट्रभाषा का स्थान कभी नहीं ले सकती है। यह महत्व केवल हिंदी को ही मिलना चाहिए। बापू के सपनों के भारत में एक सपना राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित करने का भी था। हिंदी को राष्ट्रीय पहचान दिलाने में एक राजनैतिक शख्सियत के रूप में उनका बहुत बड़ा योगदान है। उन्हें अंग्रेजी भाषा का बड़ा अच्छा ज्ञान था और सभी भारतीय भाषाओं के प्रति उनके मन में विशिष्ट सम्मान था फिर भी उनकी हार्दिक इच्छा रही कि भारत के हर व्यक्ति को हिंदी भाषा अवश्य सीखनी चाहिए भले ही वह अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करें, जब प्रांतीयता के स्तर की बात होती है तो वह हमेशा यही मानते रहे कि वहां शिक्षा का माध्यम प्रांतीय भाषाओं को बनाना चाहिए किंतु हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के संदर्भ में उनका यही मानना था कि देश के सारे लोग हिंदी का इतना ज्ञान प्राप्त कर लें कि इस देश का राजकाज इसमें चलाया जा सके। भारतीय भाषाओं, राष्ट्रभाषा हिंदी और हिंदी-उर्दू की समस्या पर उन्होंने जितनी बातें कही हैं वे बड़ी ही मूल्यवान हैं। गांधी जी ने अपनी प्रार्थनाओं में भी भाषा के प्रति अपना प्रबल समर्थन और प्रेम दिखलाया है। सन् 1909 में उन्होंने हिंदी स्वराज और अपनी भाषा नीति की घोषणा इस प्रकार की थी- 'सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए' उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट होनी चाहिए, हिंदू मुसलमानों के संबंध ठीक रहें इसलिए हिंदुस्तानियों को इन दोनों लिपियों को जान लेना जरूरी है। ऐसा होने से हम आपस के व्यवहार में अंग्रेजी को निकाल सकेंगे। विभिन्न स्थानों पर दिए गए गांधी जी के भाषणों में हिंदी के प्रति सदैव ही अनुराग दिखाई देता है। बनारस, भागलपुर, कोलकाता आदि अनेक स्थानों पर उन्होंने जो भाषण दिए वहाँ पर उन्होंने सदैव हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का संदेश दिया। उत्तर भारत में हिंदी का जो विकास हो रहा था गांधी जी उससे अनजान नहीं थे इसीलिए उनका मानना था कि हिंदी को एक सागर की तरह व्यापक हो जाना है ना कि नदी की तरह संकुचित रह जाना है। उत्तरी प्रांत में उभरा हिंदी नवजागरण एक नदी की तरह था और उसे राष्ट्रव्यापी सागर में वर्णित करने का प्रयास गांधी जी द्वारा हुआ। इंदौर में साहित्य सम्मेलन में भी उन्होंने हिंदी को विशेष महत्व दिया। भारतीय राजनेताओं में गांधी जी ही पहले ऐसे नेता थे जिन्होंने ग्रामीण प्रदेश में

राष्ट्रीय एकता को शुद्ध करने के लिए हिंदी को विधिवत सिखाए जाने को आवश्यक समझा और अपनी एक योजना बनाई जिसके अंतर्गत पुरुषोत्तम, वेंकटेश नारायण तिवारी जैसे हिंदी सेवियों को लेकर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का गठन किया। गांधी जी के अनुसार भारत की राष्ट्रभाषा में इन पाँच विशेषताओं का होना आवश्यक है पहला भाषा राजकीय कार्यों के लिए सरल हो, दूसरा सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक संप्रेषण का माध्यम बनने लायक हो, तीसरा देश की आधी से ज्यादा जनता इसे बोल समझ सके तथा आम जनता इसे आसानी से ग्रहण कर सकें, पाँचवा स्थाई कामचलाऊ भाषा के रूप में प्रयुक्त ना हो। गांधी जी ने तर्कसंगत रूप से साबित कर दिया कि अंग्रेजी में यह सारे गुण नहीं हैं। हिंदी ही सिर्फ एक ऐसी भाषा है जो इन सभी शर्तों पर खरी उतरती है लेकिन उनका कदापि यह लक्ष्य नहीं था कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाकर अन्य भारतीय-क्षेत्रीय भाषाओं की अनदेखी कर दी जाए। वह भारतीय भाषाओं के विकास के प्रबल समर्थक थे

इसके अलावा हिंदी के लिए कौन सी नीति अपनाई जाए इसके लिए भी बहुत विवाद हुए किंतु गांधी जी शुरू से ही देवनागरी के पक्ष में थे। राधाकृष्ण आयोग के अध्यक्ष सर्वपल्ली राधाकृष्णन गांधी जी के इस दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत नहीं थे। उनके मतानुसार 'हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में तकनीकी और वैज्ञानिक साहित्य को वहन करने की पूरी शक्ति नहीं है, अत: राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को हम स्वीकार करेंगे तो अनेक जगहों और संसाधनों से शब्दों को लेकर अपने को सशक्त बनाना होगा। गांधी जी इस बात से सहमत थे और हिंदी को ही उन्होंने राजभाषा के लिए पूरी तरह योग्य पाया। गांधी जी को पता था कि दक्षिण की चारों भाषाएँ तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड अपने आप में शास्त्रीय और समृद्ध भाषाएँ हैं पर इनका प्रवाह भारत भर में नहीं है अत: इनकी जगह अगर हिंदी को राजभाषा का स्थान देना है तो इन जगहों पर हिंदी सिखाने की व्यवस्था करनी होगी। इसी उद्देश्य से उन्होंने इन दक्षिणी प्रांतों में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की नींव रखी। सन् 1918 में बापू द्वारा स्थापित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, सौ वर्षों से लगातार हिंदी का प्रचार-प्रसार बड़े पैमाने पर करती आ रही है। इसी दिशा में सन् 1964 में इसे राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित किया गया और इसके अंतर्गत उच्च शिक्षा और शोध संस्थान प्रारंभ हुआ। मद्रास के साथ-साथ केरल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में उच्च शिक्षा शोध संस्थान स्थापित है और बड़े पैमाने पर इन संस्थानों के द्वारा एम. ए. से लेकर डी. लिट् तक की पढ़ाई नियमित रूप से संचालित होती है। इसके अतिरिक्त प्रचारक, ट्रेनिंग कॉलेज और बी.एड कॉलेज भी हर एक प्रांत में बड़े पैमाने पर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास का अपना दूरस्थ शिक्षा निदेशालय भी है जहाँ पर बड़ी संख्या में बी.ए से लेकर एम.ए तक की पढ़ाई होती है। यहाँ पर पढ़ने वाले छात्र पीजी डिप्लोमा ट्रांसलेशन और पीजी डिप्लोमा जर्नलिज्म कर लेते हैं और बड़ी संख्या में सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों, बैंकों, इंडियन एयरलाइंस, रेलवे में कार्यरत हैं। अभी दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास अपने सौ वर्ष पूरे करने के उपलक्ष में शत्मानोत्सव मना रही है। अभी हाल ही में 18 से 20 अगस्त 2018 को मॉरीशस में आयोजित विश्व हिंदी साहित्य सम्मेलन में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास को विश्व हिंदी सम्मान दिया गया। यह भारत के लिए गौरव की बात है गांधी जी की हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के सपने को पूरा करने की ओर शायद यह हमारा पहला कदम हो। हिंदी को भी क्षेत्रीय भाषाओं को लेकर आगे बढ़ना होगा तभी सही मायने में हिंदी राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित हो पाएगी ।

– अध्यक्षा हिंदी विभाग, स्टेला मैरिस कॉलेज, 17 कैथेड्रल रोड, चेन्नै-86

❑❑❑

प्रवासी भारतीय साहित्यकार और गांधी विचार

डॉ. साताप्पा लहू चव्हाण

भारतीय उपन्यास साहित्य में शुरू से सामाजिक सुधार को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। बाबा पद्मन जी का मराठी उपन्यास 'यमुना पर्यटन', हरिनारयन आपटे का उषा:काल, सूर्योदय, वज्राघात, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय का बांगला उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी', नंदशंकर तुलजाशंकर मेहता का गुजराती उपन्यास 'करणघेलो',नजीर अहमद का उर्दू उपन्यास 'मिरातुल उरूस',के वेंकटरत्न पटुलु का तेलुगु उपन्यास 'महाश्वेता', समुअल वेदनाथ पिल्लई का तमिल उपन्यास 'प्रताप मुदलियर चित्रम्', श्रीनिवास दास का हिंदी उपन्यास 'परीक्षा गुरु', पद्मनाथ गोहात्री बरुआ का असमिया उपन्यास 'भानुमती', अप्पु नेडुंगडी का मलयालम उपन्यास 'कुंदलता' ,फकीरमोहन सेनापति का उडिया उपन्यास 'छ मान आठ गुंठ', मिर्जा क्लीच बेग का सिंधी उपन्यास 'जीनत', भाई वीरसिंह का पंजाबी उपन्यास 'सुंदरी', गुलवाडि वेंकट राव का कन्नड उपन्यास 'इंदिरा बाई', आदि भारतीय उपन्यासों में सुधारवादी आंदोलनों, अंधविश्वासों, समाजिक उथल। पुथल का लेखा प्रस्तुत हुआ है। 1857 से 1903 तक का भारतीय उपन्यासों के विकास क्रम में 1904 के बाद हिंदी में प्रेमचंद ने व्यापकता से सामाजिक विकास की बात अपने उपन्यास प्रतिज्ञा, वरदान, सेवासदन, कर्मभूमि, गोदान के माध्यम से की, इस बात से हमें सहमति दर्शानी होगी।

समाजवादी उपन्यासकारों में ताराशंकर वंद्योपाध्याय, यशपाल, नागार्जून ऐतिहसिक उपन्यासकारों में मुहमद अली तबीब, आर. बी. गुंजीकर, कन्हैयालाल मानकलाल मुंशी, रामन पिल्लई, वृंदावनलाल वर्मा आदि महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इन उपन्यासकरों में प्रेमचंद 'प्रेमाश्रम 'उपन्यास में गांधीवाद के रास्ते जा रहे थे... प्रेमचंद ने महात्मा गांधी के स्वाधीनता आंदोलन का अपने साहित्य में व्यापक चित्रण किया है. महात्मा गांधी ने स्वदेशी पर बल दिया तो प्रेमचंद ने चरखा, खादी, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार आदि का यथार्थपूर्ण चित्रण किया. 'रंगभूमि' का नायक अंधा सूरदास तो महात्मा गांधी का प्रतिरूप है जो सत्य, धर्म तथा अहिंसा से अंग्रेज तथा अंग्रेज भक्त भारतीयों से असहयोग करता हुआ औद्योगीकरण के विरुद्ध ग्रामीण संस्कृति को बचाने के लिए संघर्ष करता है."[1] कहना आवश्यक नहीं कि भारतीय उपन्यास सत्य का पुरस्कार करते नजर आते हैं।

'एक बीघा गोईंड', माटी की महक, मैला आँचल, ग्राम सेविका, पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ आदि उपन्यासों में गांधीवाद को प्रमुखता से चित्रित किया है. भारतीय उपन्यासकारों के साथ-साथ प्रवासी भारतीय उपन्यासकारों की रचनाओं में गांधीवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक समस्याओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाने वाले और गांधी विचारधारा से प्रभावित प्रवासी साहित्यकारों की लंबी सूची उपलब्ध है।" उनमें उषा प्रियंवदा, अचला शर्मा (ब्रिटेन), कृष्ण बलदेव वैद (अमरीका), टी.एन. सिंह, तेजेंद्र शर्मा (ब्रिटेन), अभिमन्यु अनत (मारीशस), कृष्ण बिहारी (अबूधाबी), पूर्णिमा बर्मन (अबूधाबी), कविता वाचक्नवी (ब्रिटेन), सुषम बेदी (अमरीका), अंजना संधीर (अमरीका), डॉ. सुरेंद्र गंभीर, (अमरीका), उषा राजे सक्सेना (ब्रिटेन), उषा वर्मा (ब्रिटेन), ओंकारनाथ श्रीवास्तव (ब्रिटेन), कीर्ति चौधरी (ब्रिटेन), डॉ. कृष्ण कुमार (ब्रिटेन), दिव्या माथुर (ब्रिटेन), पद्मेश गुप्त (ब्रिटेन), पुष्पा भार्गव (ब्रिटेन), मोहन राणा (ब्रिटेन), शैल अग्रवाल (ब्रिटेन),

सत्येंद्र श्रीवास्तव (ब्रिटेन), लक्ष्मीधर मालवीय (ब्रिटेन), स्नेह ठाकुर (कनाडा), जकिया जुबेरी, प्रेमलता वर्मा (अर्जेंटीना), प्रो. सुब्रह्मणियम (फिजी), अर्चना पेन्यूली (डेनमार्क), अमित जोशी (नार्वे), सुरेशचंद्र शुक्ल (नार्वे), रामेश्वर अशांत (अमरीका), डॉ. विजय कुमार मेहता (अमरीका), डॉ. वेदप्रकाश बटुक (अमरीका), विनोद तिवारी, (अमरीका), सचदेव गुप्ता (अमरीका), गौतम सचदेव (ब्रिटेन), डॉ. कमलकिशोर गोयनका (ब्रिटेन), धनराज शंभू (मारीशस), धर्मानंद (मारीशस), डॉ. ब्रिजेंद्रकुमार भगत 'मधुकर' (मारीशस), मुकेश जीबोध (मारीशस), मुनीश्वरलाल चिंतामणि (मारीशस), राज हीरामन (मॉरीशस), सूर्यदेव खिरत (मारीशस), अजामिल माताबदल (मारीशस), अजय मंग्रा (मारीशस), डॉ. उदयनारायण गंगू (मारीशस), नारायणपत देसाई (मारीशस), प्रहलाद रामशरण (मॉरीशस), हेमराज सुंदर (मारीशस), पूजाचंद नेमा (मारीशस), मार्टिन हरिदत्त लक्ष्मन (सूरीनाम), महादेव खुनखुन (सूरीनाम), सुरजन परोही (सूरीनाम), डॉ. पुष्पिता (सूरीनाम), बासुदेव पांडे (ट्रिनिडाड), डॉ. रामभजन सीताराम (दक्षिण अफ्रीका), उषा ठाकुर (नेपाल), डॉ. विवेकानंद शर्मा (फिजी), डॉ. राजेंद्र सिंह (कनाडा) आदि आते है।"[2] इन प्रवासी साहित्यकारों ने गांधीवाद का प्रचार-प्रसार विदेशों में किया हुआ परिलक्षित होता है।

भारतीय ग्रामोद्योग, ग्रामीण सभ्यता, तप और त्याग, भारतीय ग्राम और संपूर्ण भारतीयता की मुकम्मल तस्वीर प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के उपन्यासों-कहानियों और कविताओं में प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। साहित्यकार अभिमन्यु अनत (मारीशस) का उपन्यास 'गांधी जी बोले थे' इसका परिचय देता है। इस उपन्यास का नायक परकाश संघर्ष का प्रतीक बनकर गांधी विचारधारा को आत्मसात करता है। इन्होंने पच्चीस से ज्यादा उपन्यास लिखे हैं। उनके साहित्य में गिरिमिटिया मजदूर के अस्तित्व और अधिकार एवं त्रासदी और प्रताड़ना का यथार्थ-चित्रण मिलता है। 'आज से सत्तर अस्सी वर्ष पूर्व के मॉरिशसीय समाज में भारतीयों की जो स्थिति थी। मर्मांतक गरीबी के बीच अपनी ही बहुविध जड़ताओं और गौरांग सत्तधीशों से उनका जो दोहरा संघर्ष था। उसे उसकी समग्रता में हम यहाँ बखूबी महसूस करते हैं। मदन, प्रकाश, सीता, मीरा, सीमा आदि इस उपन्यास के पात्र हैं, जिनके विचार, संकल्प, श्रम, त्याग और प्रेम संबंध उच्च मानवीय आदर्शों की स्थापना करते हैं और जो किसी भी संक्रमणशील जाति के प्रेरणास्रोत हो सकते है।"[3] कहना आवश्यक नहीं कि अभिमन्यु अनत जैसे अनेक प्रवासी साहित्यकारों ने गांधी विचार को अपनी साहित्यकृतियों के माध्यम से पाठकों के सामने रखा है। गांधी विचार के मूल स्तंभ है सत्य और अहिंसा। सर्वोदय सत्याग्रह एवं रामराज्य गांधी जी के तीन आदर्श थे। इन आदर्शों की स्थापना अपनी साहित्य कृतियों के माध्यम से करने का प्रयास प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने किया है. ''गांधीवाद है निरंतर आत्मपरिक्षण और प्रयोग गांधी जी की विशिष्टता रही है इसलिए गांधीवाद में कुछ तत्व प्राणरूप और स्थायी है तो कुछ देह रूप है और परिवर्तनशील एवं विकासशील है।''[4] इन तत्वों को पाठकों तक पहुँचाने में प्रवासी भारतीय साहित्यकार सफल हुए नजर आते हैं। भारतीयता की अवधारणा को मजबूत करना, एकता, सत्य, अहिंसा, साहस, दृढता, निष्ठा आदि की स्थापना करने में प्रवासी भारतीय साहित्यकार सफल हुए दृष्टिगोचर होते हैं। प्रवासी भारतीय साहित्यकारो में उषा प्रियंवदा का नाम गांधी विचारधारा की लेखिका के रूप में आता है। इनके प्रमुख उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'अंतर्वशी' और 'भया कबीर उदास' आदि में गांधीतत्व प्रमुखता से दृष्टिगोचर होते हैं.

प्रवासी भारतीय साहित्यकार कृष्ण बिहारी ने कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक आदि विधाओं के माध्यम से गांधी विचारों को प्रस्तुति दी है. इन्होंने रेखा उर्फ नौलखिया, पथराई आँखों वाला यात्री और पारदर्शियों आदि उपन्यास लिखे। इनकी 'गांधी के देश में' शीर्षक से एकांकियों का संकलन मानवीय मूल्यों के प्रति की आस्था का उत्तम उदाहरण है। "गांधी जी ने उन सभी लोगों को सहारा दिया जो हिंसा के शिकार थे।"[5] कहना आवश्यक नहीं कि प्रवासी भारतीय साहित्यकार गांधीवादी विचारधारा की प्रतिष्ठा कर विदेशों में आर्थिक स्वावलंबन का विचार प्रवासी भारतीयों को दे रहें हैं। प्रवासी भारतीय साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इन रचनाओं में विशेषत: उपन्यासों में गांधीवाद की अभिव्यक्ति हुई है। इस बात को हमें मानना होगा। सभी प्रवासी भारतीय साहित्यकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी है, अत: सभी आयामों का विवेचन करना असंभव है. 'सिमट गई धरती' आत्मकथनात्मक उपन्यास के लेखक नरेश भारतीय ने हमकालीन जीवन की विषमताओं पर कटाक्ष किया है। लक्ष्मीधर मालवीय ने 'दायरा', 'किसी और सुबह', 'रेतघड़ी' और 'यह चेहरा क्या तुम्हारा है?' इन उपन्यासों द्वारा मेहनतकश

समाज को केंद्र में रखकर मार्मिकता से गांधीविचारों का आदान-प्रदान करने का प्रयास किया है. हम जानते हैं, महात्मा गांधी जी ने जाति, वर्ग भेदभाव का विरोध किया। विश्वशांति का मंत्र दिया। इस मंत्र को प्रवासी भारतीय साहित्यकारों की रचनाओं में पाया जाने के कारण ही हलकालीन प्रवासी भारतीय साहित्य गांधीवाद से ओतप्रोत दृष्टिगोचर होता है। "जातियों में बटे समाज का एक धीमी प्रक्रिया में क्रमिक विकास हुआ था"[6] इस बात की ओर प्रवासी भारतीय साहित्यकार सचेत है। फिर भी वे गांधी जी की तरह जात-पात नहीं मानते और अहिंसा और शांति में विश्वास रखते है। सुदर्शन प्रियदर्शिनी के उपन्यास 'सूरज नहीं उगेगा', 'रेत की दीवार' एवं 'काँच के टुकड़े' गांधी तत्वों को पाठकों के सामने रखते हैं। सुदर्शन जी गांधी विचारधरा के उपासक हैं उनके जीवन और साहित्य, दोनों पर गांधीवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है. 'सूरज नहीं उगेगा' उपन्यास इस विचारधारा को प्रस्तुति देता है. उपन्यासकारों ने समाज सुधार की भावना से ही अछूत समस्या को उठाया है और उसका समाधान किया है।"[7] प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने प्रवासी जीवन की पीड़ा, अकेलापन की समस्या पर समाधान खोजने का प्रयास किया है। प्रवासी भारतीय साहित्यकारों में सुषम बेदी का नाम अग्रणी है। इनके 'गाथा अमरबेल की', 'कतरा दर कतरा', 'इतर', 'मैंने नाता तोड़ा' 'हवन', 'लौटना', 'नव भूम की रसकथा', एवं 'मोर्चे' आदि उपन्यासों में गांधीवादी आदर्शों को प्रस्तुति दी है। शारीरिक श्रम को सर्वश्रेष्ठ माना है। अमरीकी पृष्ठभूमि पर लिखा गया। हवन उपन्यास वैश्विक साहित्य और गांधीवाद का उत्तम उदाहरण मानना होगा। "गांधीवाद के मूल तत्वों के अंतर्गत सत्य, अहिंसा और सेवाभाव प्रमुख हैं। इनमें से सत्य और अहिंसा तो गांधीवाद के प्राण हैं। गांधी जी का समस्त जीवन दर्शन इन्हीं दोनों तत्वों से अनुप्राणित है। सत्य और ईश्वर को गांधी जी एक दूसरे से भिन्न नहीं मानते हैं। उनके अनुसार सत्य, ईश्वर का ही दूसरा रूप है। इसी कारण ईश्वर को सच्चिदानंद अर्थात् सत् चित व आनंद कहा जाता है।"[8] कहना आवश्यक नहीं कि प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने सत् चित और आनंद के साथ अभिवंचित जनता के साथ अपने साहित्य को जोड़ने का प्रयास किया हुआ परिलक्षित होता है। "महात्मा गांधी अपनी प्रकृति में आदर्शवादी पर अपने चिंतन में व्यावहारिक थे। इसलिए उन्हें एक व्यावहारिक चिंतक और विचारक माना जा सकता है। उनके आदर्श थे स्वराज्य, समता मूलक समाज, सादा जीवन, घरेलू उद्योगों का विस्तार, जिसे स्वदेशी आंदोलन के दौरान बल मिला। सत्य निष्ठा, अहिंसा और स्वराज्य उनके चिंतन के मूलाधार थे, जिनके आधार पर गांधीवाद की मूर्ति गढ़ी गई।"9 हम जानते हैं, गांधी जी के निर्भयता से दिए एक भाषण से प्रभावित होकर विनोबा भावे ने गांधी जी से पत्राचार शुरू किया था।

अत: कहना आवश्यक नहीं कि वर्तमान में प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के साथ-साथ पाठक भी गांधीवाद से प्रभावित हुए हैं. गांधीयुग और गांधीवाद की प्रासंगिकता आज भी और भविष्य में भी बनी रहेंगी, इस में दो राय नहीं। "काल की गति पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि गति ही उसका जीवन है। न उसका आदि है न अंत। मानव समाज अपनी सुविधा के लिए कालगति पर कुछ चिह्न बना लेता है और उसी के आधार पर काल गरणा करने लगता है. ये संवत् ये सन् उसी के उदाहरण है जिसे वर्ष, मास, दिन में विभाजित कर अपना काम चलाता है। पिछले दिनों एक कालावधि को 'गांधीयुग ' कहा गया था।"[10] कहना उचित होगा कि इस युग में गांधी जी का प्रभाव सबसे अधिक था. प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के रचना संसार का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि गांधीयुग का प्रभाव आज भी विश्व पर बना रहा है, इस बात को हमें मानना होगा। गांधीवाद संपूर्ण वैश्विक साहित्य के केंद्र में रहा है। आज भी विश्व साहित्य और संपूर्ण मानव समाज को गांधीवाद की आवश्यकता है, इस बात को सारा विश्व अपना रहा हैं

उपरोक्त विवेचन एवं विश्लेषण से विदित होता है कि भारतीय उपन्यास साहित्य में शुरू से सामाजिक सुधार को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। भारतीय उपन्यासकारों के साथ-साथ प्रवासी भारतीय उपन्यासकारों की रचनाओं में गांधीवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भारतीय ग्रामोद्योग, ग्रामीण सभ्यता, तप और त्याग, भारतीय ग्राम और संपूर्ण भारतीयता की मुकम्मल तस्वीर प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। गांधी विचार के मूल स्तंभ हैं सत्य और अहिंसा। सर्वोदय सत्याग्रह एवं रामराज्य गांधी जी के तीन आदर्श थे। इन आदर्शों की स्थापना अपनी साहित्य कृतियों के माध्यम से करने का प्रयास प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने किया है. भारतीयता की अवधारणा को मजबूत करना, एकता, सत्य, अहिंसा, साहस, दृढता, निष्ठा आदि की स्थापना करने में प्रवासी

भारतीय साहित्यकार सफल हुए दृष्टिगोचर होते हैं। प्रवासी भारतीय साहित्यकार गांधीवादी विचारधारा की प्रतिष्ठा कर विदेशों में आर्थिक स्वावलंबन का विचार प्रवासी भारतीयों को दे रहें हैं। प्रवासी भारतीय साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इन रचनाओं में विशेषत: उपन्यासों में गांधीवाद की अभिव्यक्ति हुई है। इस बात को हमें मानना होगा। सभी प्रवासी भारतीय साहित्यकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी है, प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने सत् चित और आनंद के साथ अभिवंचित जनता के साथ अपने साहित्य को जोड़ने का प्रयास किया हुआ परिलक्षित होता है। वर्तमान में प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के साथ-साथ पाठक भी गांधीवाद से प्रभावित हुए हैं. गांधीयुग और गांधीवाद की प्रासंगिकता आज भी और भविष्य में भी बनी रहेंगी, इस में दो राय नहीं।

संदर्भ-

1. संपा. डॉ. एम. सलीम बेग. आधुनिक हिंदी साहित्य में गांधीवाद, पृष्ठ. 30

2.www-hindustanimedia.com Dtd (14/02/2017)

3. अभिमन्यु अनत-गांधी जी बोले थे, ब्लर्ब से उदधृत

4. संपा. रामनाथ सुमन. लेखक की बात गांधीवाद की रूपरेखा, पृष्ठ.06

5. नारायणभाई देसाई - सौना गांधी (गुजराती), पृष्ठ.213

6. राम पुनियानी - सामाजिक न्याय एक सचित्र परिचय, पृष्ठ. 57

7. डॉ. तेज सिंह - राष्ट्रीय आंदोलन और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ.145.

8. विश्वप्रकाश गुप्त, मोहिनी गुप्त। महात्मा गांधी: व्यक्ति और विचार, पृष्ठ. 45

9. www-gadyakosh-orgDtd12/2/2017

10. संपा. डॉ. आनंद स्वरूप पाठक - नागरी संगम (त्रैमासिक पत्रिका), जुलाई-सितंबर, 2011, पृष्ठ.-04

– 'पितृ छाया', 6/180/- पपिंग स्टेशन रोड, तोठे मला, भुतकरवाडी, सावेडी,
अहमदनगर - 414001 (महाराष्ट्र)

❑❑❑

पराई भाषा में पढ़ाई और गांधी जी

डॉ. अमरनाथ

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आजाद भारत का जो सपना देखा था और उस सपने को साकार करने के लिए जो मार्ग सुझाया था हम उस मार्ग से भटकते -भटकते विपरीत दिशा की ओर मुड़ गए और धीरे-धीरे चलते हुए इतनी दूर पहुँच चुके हैं कि अब तो उधर लौटना एक सपना देखना भर रह गया है। आज हम उस शैतानी सभ्यता की ओर बेतहाशा भाग रहे हैं जिससे दूर रहने के लिए उन्होंने हमें बार-बार आगाह किया था।

गांधी जी ने हिंदी के आंदोलन को आजादी के आंदोलन से जोड़ दिया था। उनका ख्याल था कि देश जब आजाद होगा तो उसकी एक राष्ट्रभाषा होगी और वह राष्ट्रभाषा हिंदी ही होगी क्योंकि वह इस देश की सबसे ज्यादा लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा है। वह अत्यंत सरल है और उसमें भारतीय विरासत को वहन करने की क्षमता है। उसके पास देवनागरी जैसी वैज्ञानिक लिपि भी है। जो फारसी लिपि जानते हैं वे इस भाषा को फारसी लिपि में लिखते हैं। इसे हिंदी कहें या हिंदुस्तानी।

आरंभ से ही गांधी जी के आंदोलन का यह एक मुख्य मुद्दा था। अपने पत्रों 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' में वे बराबर इस विषय पर लिखते रहे। हिंदी-हिंदुस्तानी का प्रचार करते रहे। जहाँ भी मौका मिला खुद हिंदी में भाषण दिया। गांधी जी के प्रयास से 1925 ई. के कानपुर अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा काम-काज हिंदुस्तानी में करने का प्रस्ताव पारित हुआ। इस प्रस्ताव के पास होने के बाद गांधी जी ने इसकी रिपोर्ट अपने पत्रों 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' दोनों में दी थी। उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा था, "हिंदुस्तानी के उपयोग के बारे में जो प्रस्ताव पास हुआ है, वह लोकमत को बहुत आगे ले जाने वाला है। हमें अब तक अपना काम-काज ज्यादातर अंग्रेजी में करना पड़ता है, यह निस्संदेह प्रतिनिधियों और कांग्रेस की महा समिति के ज्यादातर सदस्यों पर होने वाला एक अत्याचार ही है। इस बारे में किसी न किसी दिन हमें आखिरी फैसला करना ही होगा। जब ऐसा होगा तब कुछ वक्त के लिए थोड़ी दिक्कतें पैदा होंगी, थोड़ा असंतोष भी रहेगा। लेकिन राष्ट्र के विकास के लिए यह अच्छा ही होगा कि जितनी जल्दी हो सके। हम अपना काम हिंदुस्तानी में करने लगें।" (यंग इंडिया 7-1-1926) इसी तरह उन्होंने 'नवजीवन' में लिखा, "जहाँ तक हो सके, कांग्रेस में हिंदी-उर्दू ही इस्तेमाल की जाए, यह एक महत्व का प्रस्ताव माना जाएगा। अगर कांग्रेस के सभी सदस्य इस प्रस्ताव को मानकर चलें, उस पर अमल करें तो कांग्रेस के काम में गरीबों की दिलचस्पी बढ़ जाए।" (नवजीवन, 3-1-1928)

भाषा के बारे में अपनी साम्राज्यवाद विरोधी एवं सामासिक दृष्टि का परिचय देते हुए गांधी जी ने 'हिंद स्वराज' में लिखा, 'प्रत्येक पढ़े-लिखे भारतीय को अपनी भाषा का, हिंदी को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और हिंदी का ज्ञान सबको होना चाहिए। सारे भारत के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होगी। उसे उर्दू या देवनागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिंदू और मुसलमानों में सद्भाव रहे। इसलिए बहुत से भारतीयों

को ये दोनों लिपियाँ जान लेनी चाहिए। (संपूर्ण गांधी (वांग्मय, खंड 10 पृष्ठ 56) यहाँ उल्लेखनीय है कि गांधी जी ने हिंदी को किसी धर्म विशेष भाषा न मानकर सभी भारतीयों की भाषा के रूप में उसे पहचाना। यह प्रकारांतर से हिंदी के धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रीय चरित्र की स्वीकृति थी। गांधी जी का उक्त कथन ब्रिटिश साम्राज्यवाद के उस भाषाई षड्यंत्र का जवाब भी था जिसके तहत उन्नीसवीं सदी में फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा हिंदी को हिंदुओं और उर्दू को मुसलमानों की भाषा के रूप में प्रचारित करके हिंदू-मुस्लिम अलगाववाद की नींव तैयार की गई थी।

हिंदी भाषा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए गांधी जी ने कहा है, "हिंदी भाषा मैं उसे कहता हूँ, जिसे उत्तर में हिंदू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फारसी (उर्दू) लिपि में लिखते हैं। ऐसी दलील दी जाती है कि हिंदी और उर्दू दो अलग-अलग भाषाएँ हैं। यह दलील सही नहीं है। उत्तर भारत में मुसलमान और हिंदू एक ही भाषा बोलते हैं। भेद पढ़े-लिखे लोगों ने डाला है। इसका अर्थ यह है कि हिंदू शिक्षित वर्ग ने हिंदी को केवल संस्कृमय बना दिया हैं। इस कारण कितने ही मुसलमान उसे समझ नहीं सकते हैं। लखनऊ के मुसलमान भाइयों ने उस उर्दू में फारसी भर दी है और उसे हिंदुओं के समझने के अयोग्य बना दिया है। ये दोनों केवल पंडिताऊ भाषाएँ हैं और इनको जनसाधारण में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। मैं उत्तर में रहा हूँ, हिंदू-मुसलमानों के साथ खूब मिला-जुला हूँ और मेरा हिंदी भाषा का ज्ञान बहुत कम होने पर भी मुझे उन लोगों के साथ व्यवहार रखने में जरा भी कठिनाई नहीं हुई है। जिस भाषा को उत्तरी भारत में आम लोग बोलते हैं। उसे चाहे उर्दू कहें चाहे हिंदी, दोनों एक ही भाषा की सूचक हैं। यदि उसे फारसी लिपि में लिखे तो वह उर्दू भाषा के नाम से पहचानी जाएगी और नागरी में लिखें तो वह हिंदी कहलाएगी।" (संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड-10, पृष्ठ-29)

गांधी जी चाहते थे कि बुनियादी शिक्षा से लेकर उच्च तक सब कुछ मातृभाषा के माध्यम से हो। दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान ही उन्होंने समझ लिया था कि अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा हमारे भीतर औपनिवेशिक मानसिकता बढ़ाने की मुख्य जड़ है। 'हिंद स्वराज' में भी उन्होंने लिखा है कि, "करोड़ों लोगों को अंग्रेजी शिक्षण देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने जिस शिक्षण की नींव डाली, वह सचमुच गुलामी की नींव थी। उसने इसी इरादे से वह योजना बनाई, यह मैं नहीं करना चाहता, किंतु उसके कार्य का परिणाम यही हुआ है। हम स्वराज्य की बात भी पराई भाषा में करते हैं, यह कैसी बड़ी दरिद्रता है? यह भी जानने लायक है। कि जिस पद्धति को अंग्रेजों ने उतार फेंका है, वही हमारा शृंगार बनी हुई है। वहाँ शिक्षा की पद्धतियाँ बदलती हैं। जिसे उन्होंने भुला दिया है, उसे हम मूर्खतावश चिपटाए रहते हैं। वे अपनी मातृभाषा की उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। वेल्स, इंग्लैंड का एक छोटा सा परगना है। उसकी भाषा धूल के समान नगण्य है। अब उसका जीर्णोद्धार किया जा रहा है। अंग्रेजी शिक्षण स्वीकार करके हमने जनता को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षण से दंभ, द्वेष, अत्याचार आदि बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों ने जनता को ठगने और परेशान करने में कोई कसर नहीं रखी। भारत को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। जनता की हाय अंग्रेजों को नहीं हमको लगेगी।" (संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड-10 पृष्ठ-55) अपने अनुभवों से गांधी जी ने निष्कर्ष निकाला था कि, "अंग्रेजी शिक्षा के कारण शिक्षितों और अशिक्षितों के बीच कोई सहानुभूति, कोई संवाद नहीं है। शिक्षित समुदाय, अशिक्षित समुदाय के दिल की धड़कन को महसूस करने में असमर्थ है।" (शिक्षण और संस्कृति, सं. रामनाथ सुमन, पृष्ठ-164)

गांधी जी ने इंग्लैंड में रहकर कानून की पढ़ाई की थी और बैरिस्टरी की डिग्री प्राप्त की थी। अपने देश के संदर्भ में अंग्रेजी शिक्षा की अनिष्टकारी भूमिका को पहचानने में उनकी अनुभवी दृष्टि धोखा नहीं खा सकती थी। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही वे अच्छी तरह समझ चुके थे कि भारत का कल्याण उसकी अपनी भाषाओं में दी जाने वाली शिक्षा से ही संभव है। भारत आने के बाद काशी हिंदू विश्वविद्यालय में एक उद्घाटन समारोह में जब लगभग सभी गणमान्य महापुरुषों ने अपने-अपने भाषण अंग्रेजी में दिए, एक मात्र गांधी जी ने अपना भाषण हिंदी में देकर अपना इरादा स्पष्ट कर दिया। संभवत: किसी सार्वजनिक समारोह में यह उनका पहला हिंदी भाषण था। उन्होंने कहा, 'इस महान विद्यापीठ के प्रांगण में अपने ही देशवासियों से अंग्रेजी में बोलना पड़े, यह अत्यंत अप्रतिष्ठा और लज्जा की बात है। मुझे आशा है कि इस विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने का प्रबंध किया जाएगा। हमारी भाषा ही हमारा प्रतिबिंब है और इसलिए यदि आप मुझसे यह कहें कि

हमारी भाषाओं में उत्तम विचार अभिव्यक्त किए ही नहीं जा सकते तब तो हमारा संसार से उठ जाना ही अच्छा है। क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी सह सोच सकता है कि अंग्रेजी भविष्य में किसी भी दिन भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है? फिर राष्ट्र के पावों में यह बेड़ी किसलिए? यदि हमें पिछले पचास वर्षों में देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा दी गई होती, तो आज हम किस स्थिति में होते! हमारे पास एक आजाद भारत होता, हमारे पास अपने शिक्षित आदमी होते जो अपनी ही भूमि में विदेशी जैसे न रहे होते, बल्कि जिनका बोलना जनता के हृदय पर प्रभाव डालता।" (शिक्षण और संस्कृति, सं. रामनाथ सुमन, पृष्ठ-765)

संभव है यहाँ कुछ लोग मातृभाषा से तात्पर्य अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका आदि लें क्योंकि आजकल चंद स्वार्थी लोगों द्वारा अपनी-अपनी बोलियों को संवैधानिक मान्यता दिलाने के लिए उन्हें मातृभाषा के रूप में प्रचारित किया जा रहा है और इस तरह हिंदी को टुकड़े-टुकड़े मे बाँटने की कोशिश की जा रही है। ऐसे लोग न तो अपने हित को समझते हैं और न इतिहास की गति को। वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाते हैं खुद हिंदी की रोटी खाते हैं और भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी तथा राजस्थानी आदि को संवैधानिक दर्जा दिलाने की लड़ाई लड़ रहे हैं ताकि इन क्षेत्रों की आम जनता को जाहिल और गँवार बनाए रख सके और भविष्य में भी उनपर अपना आधिपत्य कायम रख सके। ऐसे लोगों को गांधी जी का निम्नलिखित कथन शायद सदबुद्धि दे। गांधी जी ने 1917 ई. में हिंदी क्षेत्र के एक शहर भागलपुर में भाषण देते हुए कहा था, आज मुझे अध्यक्ष का पद देकर और हिंदी में व्याख्यान देने और सम्मेलन का काम हिंदी में चलाने की अनुमति देकर आप विद्यार्थियों ने मेरे प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया है इस सम्मेलन का काम इस प्रांत की भाषा में है... और वही राष्ट्रभाषा भी है... करने का निश्चय करके आप ने दूरन्देशी से काम लिया है। इसके लिए मैं आप को बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि आप लोग यह प्रथा जारी रखेंगे।" (शिक्षण और संस्कृति, सं. रामनाथ सुमन, पृष्ठ-5)

स्पष्ट है कि सम्मेलन का काम इस प्रांत की भाषा में ही हो और वही राष्ट्र भाषा भी है- कहकर गांधी जी ने यह अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया था कि बिहार प्रांत की भाषा और मातृभाषा भी राष्ट्रभाषा हिंदी ही है, न कि कोई अन्य बोली या भाषा। गांधी जी का विचार कि माँ के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए वह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने में टूट जाता है। हम ऐसी शिक्षा के वशीभूत होकर मातृद्रोह करते हैं।

विदेशी भाषा में शिक्षा देने के जो नुकसार गांधी जी ने बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में बताए उनसे आज भी असहमत होना असंभव है।

हमें स्मरण रखना चाहिए कि पिछले दिनों एक लाख करोड़ की लागत वाली जापान की तकनीक और कर्ज के बल पर जिस बुलेट ट्रेन की नींव रखी गई है उस जापान की कुल आबादी सिर्फ 12 करोड़ है। वह छोटे-छोटे द्वीपों का समूह है। वहाँ का तीन चौथाई से अधिक भाग पहाड़ है और सिर्फ 13 प्रतिशत हिस्से में ही खेती हो सकती है। फिर भी वहाँ सिर्फ भौतिकी में 13 नोबेल पुरस्कार पाने वाले वैज्ञानिक हैं। ऐसा इसलिए है कि वहाँ 99 प्रतिशत जनता अपनी भाषा 'जापानी' में ही शिक्षा ग्रहण करती है। इसी तरह कुछ दिन पहले हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने जिस इजराइल की यात्रा की थी और उसके विकास पर गद्गद थे उस इजराइल की कुल आबादी मात्र 83 लाख है और वहाँ 11 नोबेल पुरस्पकार प्राप्त वैज्ञानिक हैं क्योंकि वहाँ भी उनकी अपनी भाषा 'हिब्रू' में शिक्षा दी जाती है। हमारा पड़ोसी चीन भी हमारी ही तरह का बहुभाषी विशाल देश है किंतु उसने भी अपनी एक भाषा चीनी (मंदारिन) को प्रतिष्ठित किया और उसे वहाँ पढ़ाई का माध्यम बनाया। चीनी बहुत कठिन भाषा है। चीनी लिपि दुनिया की संभवत: सबसे कठिन लिपियों में से एक है। वह चित्र-लिपि से विकसित हुई है। आज चीन जिस ऊंचाई पर पहुँचा है उसका सबसे प्रमुख कारण यही है कि उसने अपने देश में शिक्षा का माध्यम अपनी चीनी भाषा को बनाया। इसी तरह अमरीका, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, रूस आदि दुनिया के सभी विकसित देशों में वहाँ की अपनी भाषाओं क्रमश: अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रूसी आदि में ही शिक्षा दी जाती है। इसीलिए वहाँ मौलिक चिंतन संभव हो पाता है। मौलिक चिंतन सिर्फ अपनी भाषा में ही हो सकता है। व्यक्ति चाहे जितनी भी भाषाएँ सीख ले, किंतु सोचता अपनी भाषा में ही है। हमारे बच्चे दूसरे की भाषा में पढ़ते हैं फिर उसे अपनी भाषा में ट्रांसलेट करके सोचते हैं और लिखने के लिए फिर उन्हें दूसरे की भाषा में ट्रांसलेट करना पड़ता है। इस तरह

हमारे बच्चों के जीवन का एक बड़ा हिस्सा दूसरे की भाषा सीखने में चला जाता है। अंग्रेजी माध्यम अपनाने के बाद से हम सिर्फ नकलची पैदा कर रहे हैं। अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा सिर्फ नकलची ही पैदा कर सकती है।

हमें अपनी विरासत की ओर भी एक बार झाँकना चाहिए। जब अंग्रेज नहीं आए थे और हम अपनी भाषा में शिक्षा ग्रहण करते थे तब हमने दुनिया को बुद्ध और महावीर दिया, वेद और उपनिषद दिए, दुनिया का सबसे पहला गणतंत्र दिया, चरक जैसे शरीर विज्ञानी और सुश्रुत जैसे शल्य-चिकित्सक दिए, पाणिनि जैसा वैयाकरण और आर्य भट्ट जैसे खगोलविज्ञानी दिए, पतंजलि जैसा योगाचार्य और कौटिल्य जैसा अर्थशास्त्री दिए। हमारे देश में तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय थे जहाँ दुनिया भर के विद्यार्थी अध्ययन करने आते थे। इस देश को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था जिसके आकर्षण में ही दुनिया भर के लुटेरे यहाँ आते रहे। प्रख्यात आलोचक रामविलास शर्मा ने कहा है कि दुनिया के किसी भी देश की संस्कृति से मुकाबला करने के लिए अपने यहाँ के सिर्फ तीन नाम ले लेना ही काफी है- तानसेन, तुलसीदास और ताजमहल।

इस समय हमारे देश में 8 करोड़ ऐसे बच्चे हैं जो स्कूल नहीं जाते। सबसे पहले उन्हें स्कूल भेजने की व्यवस्था होनी चाहिए, सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अपेक्षित शिक्षकों की भर्ती होनी चाहिए। उनको जरूरी संसाधन उपलब्ध कराने चाहिए। शिक्षा का क्षेत्र आज भारी मुनाफे का क्षेत्र हो गया है। सबसे ज्यादा निवेश यहीं हो रहे हैं। प्राइवेट स्कूलों में शिक्षक बंधुआ मजदूर की तरह काम करता है। वह मालिकों की चापलूसी में लगा रहता है। इस पर अंकुश लगनी चाहिए और शिक्षा पूरी तरह न हो सके तो अधिक से अधिक सरकारी नियंत्रण में लेनी चाहिए। यहीं भावीं नागरिक तैयार होते हैं। इससे पल्ला झाड़ना देश के भविष्य के साथ खिलवाड़ है।

अंग्रेजी ही ज्ञान की भाषा है- यह बहुत बड़ा झूठ है। यह गलत अफवाह फैलाई जाती है कि उच्च शिक्षा (ज्ञान-विज्ञान-तकनीक) की पढ़ाई हिंदी में नहीं हो सकती। जब चीन की मंदारिन (चीनी) जैसी कठिन भाषा में ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक की पढ़ाई हो सकती है तो हिंदी में क्यों नहीं हो सकती? हिंदी विश्व की सबसे ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं में दूसरे स्थान पर है। इसके पास देवनागरी जैसी वैज्ञानिक लिपि है जिसमें जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। यह अत्यंत सहज और सरल भाषा है, किंतु इसको माध्यम के रूप में न अपनाने के कारण देश की प्रतिभाओं का गला घोंटा जाता है।

आज अभिभावक अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों की जगह अंग्रेजी माध्यम वाले प्राइवेट स्कूलों में प्रवेश दिलाना पसंद कर रहे हैं। इस तरह सरकारी में छात्र-संख्या घट रही है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों हो रहा है?

इसका कारण यह है कि जब चपरासी तक की नौकरियों में भी अंग्रेजी अनिवार्य होगी तो अंग्रेजी की मांग बढ़ेगी ही। भारत एक ऐसा मुल्क बन चुका है जहाँ का नागरिक चाहे देश की सभी भाषाओं में निष्णात हो किंतु एक विदेशी भाषा अंग्रेजी न जानता हो तो उसे इस देश में कोई नौकरी नहीं मिल सकती और चाहे वह दस देश की कोई भी भाषा न जानता हो और सिर्फ एक विदेशी भाषा अंग्रेजी जानता हो तो उसे इस देश की छोटी से लेकर बड़ी तक सभी नौकरियाँ मिल जाएँगी। छोटे से छोटे पदों से लेकर यू.पी.एस.सी. तक की सभी भर्ती परीक्षाओं में अंग्रेजी का दबदबा है। उच्चतम न्यायालय से लेकर सभी उच्च न्यायलयों में सारी बहसें और फैसलें सिर्फ अंग्रेजी में होने का प्रावधाान है। यह ऐसा तथाकथित आजाद मुल्क है जहाँ के नागरिक को अपने बारे में मिले फैसले को समझने के लिए भी वकील के पास जाना पड़ता है और उसके लिए भी वकील को पैसे देने पड़ते हैं। मुकदमों के दौरान उसे पता ही नहीं होता कि वकील और जज उसके बारे में क्या सवाल-जवाब कर रहे हैं। ऐसे माहौल में कोई अपने बच्चे को अंग्रेजी न पढ़ाने की मूर्खता कैसे कर सकता है?

जिस अमरीका और इंग्लैंड की अंग्रेजी को हमारे बच्चों पर लादा जा रहा है उसी अमरीका और इंग्लैंड में पढ़ाई के लिए जाने वाले हर सख्स को आइइएलटीएस (इंटरनेशनल इंग्लिश लैंग्वेज टेस्टिंग सिस्टम) अथवा टॉफेल (टेस्ट ऑफ इंग्लिश एवं फॉरेन लैंग्वेज) जैसी परीक्षाएं पास करनी अनिवार्य हैं। दूसरी ओर, हमारे देश के अधिकांश अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में बच्चों को अपने देश की राजभाषा हिंदी या मातृभाषा बोलने पर दंडित किया जाता है और हमारी सरकारें कुछ नहीं

बोलतीं। यह गुलामी नहीं तो क्या है? बेशक गोरों की नहीं, काले अंग्रेजों की गुलामी, गुलाम व्यक्ति ही सोचता है कि मालिक भाषा बोलेंगे तो फायदे में रहेंगे।

सबसे पहले सरकारी नौकरियाों से अंग्रेजी की अनिवार्यता हटनी चाहिए, न्यायपालिका और कार्यपालिका में भी भारतीय भाषाओं का प्रयोग अनिवार्य होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो रातो-रात अंग्रेजी की जगह मातृभाषाओं के माध्यम से पढ़ने वालों की मांग बढ़ जाएगी। फिर सरकार को प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक समूची शिक्षा व्यवस्था मातृभाषाओं के माध्यम से लागू करनी पड़ेगी और तब इस देश की प्रतिभाएं फिर से दुनिया में अपनी कीर्ति-पताका फहराएगी।

फिलहाल, हम गांधी जी के दिखाए गए रास्ते की उल्टी दिशा में चलते-चलते बहुत दूर जा चुके हैं। गांधी जी ने जिस आजादी का सपना देखा था वह आज भी अधूरा ही है। मुंशी प्रेमचंद के शब्दों में कुर्सी पर 'जॉन' की जगह 'गोविंद' बैठ गए हैं, हमें सच्ची आजादी के लिए फिर से एक दूसरी लड़ाई लड़नी होगी। आज हमारी अपनी भाषाओं को जिस सीमा तक सम्मान और अधिकार मिला हुआ है उसी सीमा तक हम आजाद हैं।

– ईई- 164/402, सेक्टर-2, साल्टलेक, कोलकाता-700091

❑❑❑

महात्मा गांधी तथा पर्यावरण-संरक्षण

डॉ. किशोरी लाल व्यास

महात्मा गांधी एक ऐसे मनीषी थे जिन्होंने मानव-जीवन के हर पहलू को स्पर्श और प्रभावित किया। गांधी जी राजनीति में नैतिकता के आग्रही थे। उन्होंने अपने शत्रु से भी कोई कार्य छिपाकर नहीं किया। अंग्रेजों से भारत भूमि को आजाद कराने के लिए किसी भी प्रकार की गुप्त चाल नहीं चली, न ही षड्यंत्र किया। जो भी किया वह सत्य के आग्रह और अहिंसा के माध्यम से किया।

सत्य और अहिंसा गांधी जी को सुदीर्घ परंपरा से प्राप्त हुए थे। उनका परिवार 'वैष्णव' था तथा भक्त नरसिंह के भजन अनुरूप ही, 'वैष्णवजन' के सारे गुण गांधी जी ने सिर्फ अपनाए ही नहीं, उन्हें जीवन में क्रियान्वित भी किए।

गांधी जी ने जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार किया। उनका अर्थशास्त्र सीधे देश की मिट्टी और सादगी से जुड़ा था। उनकी राजनीति निष्कपट और नैतिकता से आबद्ध थी जिसे उन्होंने रामराज्य कहा।

पाश्चात्य भोगवाद का उन्होंने विरोध किया। यदि मनुष्य को जीने के लिए जितना अन्न चाहिए, में ही वह संतोष कर ले तो विश्व में कोई भी भूखा न मरे। पश्चिम में अन्न और जल का जो दुरूपयोग होता है, आधे से ज्यादा खाद्य सामग्री फेंक दी जाती है, जल-प्रदूषण बढ़ता जाता है। यदि उसकी रोकथाम हो सके तो एशिया और अफ्रीका में देश के करोड़ों लोग भूखे न मरे। अन्नम् रक्षति रक्षितः। जलम् रक्षति रक्षितः।। यह गांधी जी का सूत्र था।

'इस पृथ्वी में सभी प्राणियों की आवश्यकता पूर्ति करने के लिए पर्याप्त साधन है, किंतु 'लालसाएँ पूरी करने के लिए नहीं'

गांधी जी ने कहा था। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य की लालसाएँ बढ़ती ही जा रही हैं। इन लालसाओं की आपूर्ति के लिए मनुष्य सारी धरती का दोहन किए जा रहा है। लकड़ी के लिए अंधाधुंध जंगल काट रहा है। अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के वर्षावन भंयकर गति से कट रहे हैं। भारत जैसे देश में पर्यावरण, संतुलन हेतु कम से कम 33 प्रतिशत वन होने चाहिए, उसकी जगह मात्र 11 प्रतिशत वन रह गए हैं। परिणाम- बाढ़, सूखा और प्रतिवर्ष गर्मी का बढ़ना है। नदियाँ बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के अपशिष्ट से भयंकर रूप से प्रदूषित हो रही हैं। मानव का जीवन संकट में पड़ गया है। गांधी जी ने सादगी और अपरिग्रह पर बल दिया। एक छोटा-सा उदाहरण लिजिए। छोटे-छोटे कागज के टुकड़ों पर गांधी जी लिखा करते थे, जो सामान्यतः हम फेंक देते हैं। इस प्रकार गांधी जी ने कागज बचाओ की मुहिम चलाई। जिसना कागज का दुरुपयोग करोगे उतने ही पेड़ कटेंगे। संसाधनों का दुरुपयोग होगा, जल प्रदूषण फैलेगा। कागज बनाने के लिए ऊर्जा की खपत होती है, रसायन का उपयोग होता है और बहुत सारा पानी चाहिए।

'कागज बचाओ, पेड़ बचाओ' गांधी जी ने नारा दिया।

गांधी जी स्वच्छता के बड़े आग्रही थे। स्वच्छता से कई बीमारियों से बचा जा सकता है। स्वयं गांधी जी ने

झाड़ू उठाकर सफाई की थी। उन्होंने अपने घर, परिसर तथा वातावरण को स्वच्छ रखने को प्राथमिकता प्रदान की। स्वच्छता ईश्वरीय गुण है। जगत् में मनुष्य जितना कचरा फैलाता है, उतना कचरा कोई अन्य प्राणी नहीं फैलाता।

गांधी जी ने कुछ, तालाब, जलासय, नदियों आदि को भी स्वच्छ रखने की बात कही। इन्हीं जलाशयों का पानी हम पीते हैं। अतः इनको स्वच्छ रखना अनिवार्य है। गांधी जी ने व्यक्तिगत स्वच्छता और सार्वजनिक स्वच्छता को पर्यावरण संरक्षण के लिए अनिवार्य माना।

जैविक कचरे (organic waste) से खाद बनाई जा सकती है। गांधी जी स्वदेशी के बड़े हिमायती थे। हम विदेशों से ऊर्वरक और कीटनाशक दवाईयाँ मंगवाकर हमारा धन व्यर्थ कर रहे हैं। साथ ही अधिक से अधिक फसल उगाने के लिए, इन उर्वरकों का अधिक प्रयोग कर रहे है। इससे वायु और जल प्रदूषण बढ़ता है।

गांधी जी स्वदेश में उपलब्ध वस्तुओं के उपयोग के हिमायती थे। देश में उपलब्ध पशुओं के गोबर तथा सूखे-पत्तों और कचरे से, केचुओं के माध्यम से (wormiculture) उत्तम कोटि की खाद तैयार की जा सकती है। यह पदार्थ जैविक होता है, अतः इनसे प्रदूषण नहीं फैलता।

गांधी जी ने पर्यावरण संरक्षण पर वैश्विक दृष्टि से विचार दिया। इसका एक मात्र उपाय है- भारतीय जीवन दृष्टि।

तेन त्यक्सेन भुजीथाः अर्थात् त्याग से भोग करो।

आज पर्यावरण असंतुलन का मुख्य कारण मनुष्य की जीवन दृष्टि में आया बदलाव है। वह सबकुछ पा जाना चाहता है। दूसरे न की सोंचकर, अपनी ही सोंचने में लगा है। कवि प्रसाद ने कहा था-

सब कुछ अपने में भर, मनुष्य कैसे विकास करेगा,

यत तो स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा।

जब तक मनुष्य की दृष्टि नहीं बदलेगी, तब तक वह विकास के डगर की ओर नहीं बढ़ेगा गांधी जीवन दृष्टि या कहें भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि ही आज के जीवन में- सुख, शांति और समृद्धि ला सकती है। इस दृष्टि से, गांधी दृष्टि आज अधिक प्रांसगिक है।

– फ्लैट न. - 6, ब्लॉक न. 3, केंद्रीय विहार, मियाँपुर, हैदराबाद-500049

❑❑❑

महात्मा गांधी, हिंदी और पत्रकारिता

डॉ. नरेश कुमार

महात्मा गांधी हिंदुस्तानी के समर्थक थे। हिंदुस्तानी का प्रबल आग्रह लेकर गांधी जी ने सत्याग्रह का शंखनाद किया साप्ताहिक 'यंग इंडिया' जिसका प्रकाशन 1919 में प्रारंभ हुआ था, इस पत्र के माध्यम से अंग्रेजी शासन के अत्याचारों, अन्यायों के बारे जानकारी देना और स्वशासन के लिए तैयार करने वाले, इस समाचार पत्र के संपादक मोहनदास करमचंद गांधी थे। उन्होंने 1922 में जेल की सजा होने तक अपने विचारों के प्रचार के लिए इसमें अनेक लेख लिखे। उनका पत्रकारिता के क्षेत्र में यह प्रयास प्रेस को विदेशी शासन के विरुद्ध एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करने का था। 'हरिजन' पत्र के संपादन के माध्यम से गांधी जी द्वारा स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने हेतु भारतीयों को प्रोत्साहित करना था, अहिंसात्मक सत्याग्रह आंदोलन को तीव्रता प्रदान करने का उनका प्रबल आग्रह था, जिसके कारण युवकों ने शिक्षा-प्राप्ति के उद्देश्य को छोड़कर आजादी के आंदोलन में अपना सर्वस्व बलिदान करने का दृढ़ निश्चय किया। इस प्रकार 'हरिजन' पत्र का संपादन करके उन्होंने स्वतंत्रता-आंदोलन को आगे बढ़ाया।

दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लक्ष्य को ध्यान में रखकर गांधी जी ने 'हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद' की स्थापना में योगदान किया, इस कार्य हेतु उन्होंने अपने पुत्र देवदास को इसका उत्तरादायित्व सौंपा। हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद के द्वारा किए गए हिंदी प्रचार-प्रसार के कार्य की जितनी सराहना, प्रशंसा की जाए, उतनी कम है। इस संस्था ने गाँव-गाँव और घर-घर में हिंदी को पहुँचाया है। इस संस्था की स्थापना सन् 1935 में की गई। हिंदी प्रचार सभा विभिन्न प्रकार से अपना योगदान कर रही है। मासिक 'विवरण' पत्रिका के प्रकाशन के अतिरिक्त यह सभा अनेक परीक्षाओं यथा- हिंदी नागरी बोध, हिंदी प्रवेश, हिंदी प्रथमा, हिंदी मध्यमा, हिंदी उत्तमा, हिंदी विशारद, हिंदी भूषण, हिंदी विद्वान आदि परीक्षाओं का आयोजन करती है। 'हिंदी भूषण' परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों को भारतीय सेना में धार्मिक शिक्षक' और 'हिंदी विद्वान' परीक्षा छात्र हिंदी पंडित ट्रेनिंग, एम. ए. (हिंदी) एवं अन्य कोर्स जैसे अनुवाद डिप्लोमा कोर्स के लिए योग्य माने जाते हैं।

गांधी जी यह मानते थे कि अगर हिंदुस्तान को हमें एक राष्ट्रभाषा बनाना है तो वह राष्ट्रभाषा हिंदी ही हो सकती है। भारत की सभी भाषाएँ राष्ट्रीय भाषाएँ तो हो सकती हैं किंतु राष्ट्रभाषा तो केवल हिंदी ही है, जिसे बोलने और समझने वाले की संख्या सर्वाधिक है। गांधी जी का मत है कि 'राष्ट्रभाषा बिना राष्ट्र गूँगा है'। वास्तव में हिंदी को केंद्र सरकार की राजभाषा घोषित किया गया।, 26 जनवरी, 1950 को हिंदी को राजभाषा दर्जा प्रदान किया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि 25 जनवरी, 1965 तक दो राजभाषाएँ हिंदी और अंग्रेजी बनी रही। सन् 1963 में राजभाषा अधिनियम बना, जिसके अनुसार सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा का भी प्रयोग किया जा सकता है। सन् 1967 में राजभाषा अधिनियम में संशोधन किया गया, इस अधिनियम की धारा 3 (3) में 14 मदें रखी गईं, जिनका अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी में अनुवाद का प्रावधान भी रखा गया है। इस प्रकार हम देखते हें कि भारतीय संविधान ने हिंदी को राजभाषा के रूप में संरक्षण दिया है किंतु उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए

और अधिक प्रयासों की आवश्यकता है जिससे 'हिंदी सबकी' और 'सबके लिए' भाषा सिद्ध हो सके।

वास्तव में गांधी जी उस दिन को देखने के लिए उत्सुक थे जब कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सब भारतीय हिंदी को समझने, बोलने में गर्व का अनुभव कर सकें। उनके शब्दों में 'यदि हम भारत को राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना है तो प्रचार कार्य सर्वव्यापी और सुसंगठित होना चाहिए। राष्ट्रभाषा बिना राष्ट्र गूँगा है' स्पष्ट है कि उन्हें राष्ट्रभाषा के रूप में कोई दूसरी भाषा स्वीकार्य नहीं है। उनका मत है कि हिंदी की प्रगति से ही देश की सभी भाषाओं की उन्नति होगी। उनके ये बातें कहने का भाव यह है कि भारतीय शाखाएँ परस्पर पूरक हैं, किसी भी भारतीय भाषा से हिंदी का कोई टकराव नहीं है। वास्तव में दक्षिणी भारतीय भाषाओं के प्रति उपेक्षा भाव किसी उत्तर भारत के निवासी के मन में नहीं है, किंतु द्राविड़ भाषाओं को सीखने की सुविधाओं की कमी इसके लिए उत्तरदाई कही जा सकती है, यद्यपि दक्षिण हिंदी प्रचार सभा इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान कर रही है।

– जे 235, पटेल नगर, गाज़ियाबाद– 201001

❑❑❑

गांधी जी की निर्भीकता

प्रो. एम. ज्ञानम

गांधी जी को अनेक दृष्टियों से देखा जा सकता है। उनके सेवाभाव, अनासक्ति, दूरदर्शिता, सादगी, सरलता आदि अनेक गुणों में से किसी को भी लेकर उनके जीवन का अध्ययन किया जा सकता है। उनमें से एक है उनकी निर्भीकता। गांधी जी सत्य-व्रती थे। सत्यभाषण और सत्याचरण के लिए अपार दृढ़ता और निडरता की ज़रूरत होती है। गांधी जी ने खुद कहा है कि कायर कभी सत्याग्रही नहीं हो सकता। गांधी जी की निर्भीकता ने ही लोगों को खासकर युवकों को उनकी ओर आकर्षित किया। नेहरू जी ने भी गांधी जी के बारे में अपने संस्मरण में उनके इस विशिष्ट गुण का विशेष उल्लेख किया है।

उनकी निर्भीकता और दृढ़ता की कुछ झाँकियाँ देखिए-

गांधी जी एक रात की रेल-यात्रा में एक छोटी सी पुस्तक पढ़ते हैं- जॉन रस्किन की -'अन टु द लास्ट'। अगली सुबह जब वे रेल से उतरते हैं तो एकदम नए व्यक्ति के रूप में खूब चल रही अपनी वकालत को लात मारते हैं। पैतृक संपत्ति को तिलांजली देते हैं। असंग्रह व्रत लेकर श्रम या समाज आधारित जीवन को आजीवन अपनाते हैं। कितना बड़ा साहस है!

गौतम बुद्ध एवं महावीर जी के जीवन में ऐसी बातें हमने पढ़ी हैं। आधुनिक काल में हमारे सामने यह घटना घटी। याद रखिए उस समय वे न तो महात्मा बने थे न बड़े नेता। भारतीय जनता उन्हें जानती ही नहीं थी। वे सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेनेवाले एक बैरिस्टर मात्र थे। पत्नी और चार छोटे बच्चों का परिवार भी उनका था। फिर भी बड़ी निर्भीकता के साथ उन्होंने असंग्रह व्रत को अपनाया।

दक्षिण अफ्रीका की ही दूसरी घटना। सत्याग्रह पूरी तेज़ी से चल रहा है। पहली बार महिलाएँ, अनुबंधित मज़दूर (गिरमिटिया मज़दूर) समेत दक्षिण अफ्रीका के सभी भारतीय सत्याग्रह में भाग ले रहे हैं। सत्याग्रह का जोश भारतीय समाज में अपनी पराकाष्ठा पर है। उस समय किसी कारण से रेलवे यूनियन की हड़ताल शुरू होती है। रेलवे यूनियन वाले गांधी जी के साथ गठबंधन के लिए तैयार भी हैं। सामान्यत: किसी नेता को यह अवसर सुनहरा प्रतीत हो सकता है, भगवान की कृपा लग सकती है और उस अवसर का पूरा लाभ उठाने का वह प्रयास कर सकता है। उन दिनों बस या कार कम थीं। यातायात का मुख्य साधन रेल ही था। रेल हड़ताल से सरकार पंगु होनेवाली थी, सिपाहियों को ले जाने और बंदी सत्याग्रहियों को विभिन्न जेलों में भेजने के लिए एकमात्र साधन रेल ही था। लेकिन गांधी जी का विचार था कि अवसर देखकर हमला करना भीरुता है। गांधी जी ज़ोरों पर चल रहे अपने सत्याग्रह आंदोलन को बिना शर्त स्थगित कर देते हैं। कह देते हैं कि अभी सरकार संकट में है। संकटग्रस्त सरकार के विरूद्ध आंदोलन चलाना अहिंसा नहीं है। रेलवे यूनियन की हड़ताल के बाद सत्याग्रह फिर शुरू किया जाएगा। उनकी वीरता से सरकार भी दंग रह जाती है। कितनी बड़ी वीरता!

गांधी जी भारत आते हैं। दक्षिण अफ्रीका में दिए गए उपहारों को वहीं एक ट्रस्ट बनाकर, सिर्फ एक दिन के खर्च के लिए पर्याप्त धन के साथ मातृभूमि की मिट्टी पर पैर रखते हैं। कैसी दृढ़ता!

अहमदाबाद में आश्रम स्थापित करते हैं। आश्रम का खर्च लोगों के दान से चलता है। आश्रम का नियम

यह है कि किसी भी, जाति, धर्म, भाषा, लिंग के लोग आश्रम के सदस्य हो सकते हैं। एक हरिजन परिवार आता है। गांधी जी सहर्ष उसे अपना लेते हैं। दान देनेवाले सवर्ण हिंदू लोग इससे नाराज हो जाते हैं और दान देना बंद कर देते हैं। गांधी जी समझौते के लिए तैयार नहीं होते। स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि अगले दिन खर्च के लिए आश्रम में पैसा नहीं। गांधी जी दृढ़ता और शांति के साथ कह देते हैं कि ठीक है हम आश्रम छोड़ देंगे और हरिजन बस्ती में जाकर रहेंगे। कैसी वीरता!

किसी के अनुरोध पर गांधी जी बिहार के चंपारण जाते हैं। वहाँ नील खेती के किसानों की दयनीय स्थिति को देखकर दुखी होते हैं। वहाँ सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय करते हैं। वह भारत में उनका पहला सत्याग्रह है। गांधी जी अभी इतने प्रसिद्ध नहीं हुए हैं कि लोग उन्हें देखते ही पहचान लें। चंपारण की गरीब जनता गांधी जी को क्या, कांग्रेस को भी नहीं जानती थी। उनकी ग्रामीण हिंदी समझने में भी गांधी जी को कठिनाई हो रही थी। गांधी जी वहाँ के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता से पूछते हैं कि उनमें से कितने लोग जेल जाने के लिए तैयार हैं, वे सब चौंक जाते हैं और पक्षोपेश में पड़ जाते हैं। निर्भीक गांधी जी अकेले ही उन अपरिचित गरीब जनता के हित में जेल जाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

गांधी जी गिरफ्तार कर लिए जाते हैं। सुदूर गुजरात का एक अपरिचित व्यक्ति हमारे लिए जेल जाने के लिए तैयार हैं- यह आश्चर्यजनक खबर रातों-रात चंपारण के गाँवों में फैल जाती है। लोग उस विचित्र व्यक्ति की एक झलक पाने के लिए समुद्र की लहरों की तरह उमड़ पड़ते हैं।

अदालत में गांधी जी पेश किए जाते हैं। गांधी जी अपना बचाव नहीं करते। वे सरकार की हुकुम को भंग करने की स्वीकारोक्ति देते हैं और सज़ा के लिए अपने आपको तैयार बताते हैं। अदालत दिग्भ्रमित हो जाती है। हम भी। क्या निर्भीकता!

गांधी जी अदालत में कभी अपना बचाव नहीं करते थे। उलटे कहते थे जो अभियोग उनपर है, इससे ज्यादा उन्होंने किया है। न्यायाधीश श्रीमान ब्रूम फील्ड से सन् 1920 में उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि या तो मुझे कड़ी से कड़ी सज़ा दी जाए या आप अपने पद से इस्तीफा दे दीजिए।

सच्चा वीर दूसरों में भी वीरता फूँकता है। कोई सत्याग्रही अपना बचाव अदालत में कभी नहीं करता था बल्कि सहर्ष सज़ा स्वीकार कर लेता था। जो भारतीय, पुलिस के दर्शन से भी काँपते थे, वे अब कानून भंग कर जेल जाने को अपना गौरव समझने लगे।

सन् 1930 में कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित करता है और गांधी जी को सेनापतित्व का भार सौंपती है। गांधी जी कभी अपने कार्य को रहस्यात्मक नहीं रखते थे। वे जो भी करना चाहते थे, उसकी पूर्व सूचना वे सरकार को दे देते थे। अपनी बैठकों में वे खुफ़िया पुलिस को पास में बिठा लेते थे। पूर्ण स्वराज्य के लिए गांधी जी नमक सत्याग्रह छोड़ते हैं। उसकी पूर्व सूचना देते हुए गांधी जी वाइसराय को पत्र लिखते हैं। पत्र में संबोधन कैसा करते हैं? माननीय युवर एक्सलेन्सी आदि कुछ नहीं। सिर्फ लिखते हैं- 'प्रिय मित्र-'डियर फ्रेंड'। जब पूर्ण स्वराज्य हमारा लक्ष्य है, तो 'युवी एक्सलेन्सी' आदि औपचारिक संबोधन कैसे? इसलिए निर्भीक गांधी जी वाइसराय को 'डियर फ्रेंड' संबोधित कर अपने सत्याग्रह की सूचना देते हैं। इस तरह संबोधन वाइसराय ने पद में रहते हुए किसी से शायद ही कभी सुना हो।

अब गांधी जी के अंतिम युद्ध को लेते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ा हुआ है। इंग्लैंड की हालत पस्त होती जा रही है। वह कांग्रेस से जो भारत के अनेक प्रांतों में सरकार बना चुकी थी- युद्ध में सहयोग मांगने और समझौता करने के लिए तैयार हो जाती है। कांग्रेस समझौते के लिए तैयार हो जाती है, क्योंकि वह समझती है कि हिटलर अंग्रेजों से अधिक खतरनाक है, इसलिए किसी समझौते के आधार पर अंग्रेज सरकार का सहयोग करने में ही दुहरा लाभ है एक हिटलर से बचना दूसरा समझौतो के फायदे। गांधी जी न अंग्रेज से डरते थे, न हिटलर से। उन्हें पूरा विश्वास था कि वे हिटलर का भी सामना कर सकते हैं। वे किसी भी शर्त पर युद्ध में अंग्रेज सरकार के साथ सहयोग करने से साफ मना कर देते हैं। नेहरू जी दुख के साथ कहते हैं कि यह पहली बार है कि गांधी जी और कांग्रेस अलग-अलग दिशाओं में जा रहे हैं। गांधी जी विचलित नहीं होते। वे कांग्रेस से हटकर अपना अलग रास्ता अपनाने का निर्णय लेते है। कितनी निर्भीकता! एक ओर सरकार से दुश्मनी, दूसरी ओर भारत के अत्यंत लोकप्रिय दल कांग्रेस से अलग।

लेकिन बर्तानिया सरकार बुद्धिमान थी। वह समझ लेती है कि गांधी जी रहित कांग्रेस से समझौता करना घाटे का सौदा सिद्ध होगा। वह बिना कोई समझौता किए ही, कांग्रेस से पूछे बिना ही, भारत को युद्ध में शामिल कर लेती है। इसके विरोध में कांग्रेस की प्रांतीय सरकारें इस्तीफ़ा देती हैं और विवश होकर गांधी जी का द्वार खटखटाती हैं। गांधी जी कांग्रेस से बाहर रहकर आज़ाद के युद्ध में नेतृत्व संभालने के लिए तैयार हो जाते हैं। कैसा विलक्षण इतिहास है। क्या संसार में कहीं ऐसा हुआ है?

विश्वयुद्ध ज़ोरों पर है। अंग्रेज हार रहे हैं। दूसरी ओर हिटलर का साथी देश जापान भारत की ओर बढ़ रहा है। चेन्नै और काकिनाडा में बम आ गिरते हैं। अब अंग्रेजों से छुटकारा पाने के अलावा जापान का सामना करने की दुहरी जिम्मेदारी देश पर आती है। गांधी जी विचलित नहीं होते। वे सोचते हैं कि अंग्रेजों से आज़ादी पाएँगे और हिटलर से, जापान से खुद निपट लेंगे- उस हिटलर और उस जापान से जिनका नाम सुनकर संसार के बड़े-बड़े देश काँप रहे थे।

साढ़े पाँच फुट का, पचास किलो वज़न का दुबला-पतला अधनंगा फकीर किसी धर्म या जाति का सहारा लिए बिना सिर्फ निहत्ते भारतीय जनता के बल पर सूर्यास्तविहीन बरतानिया सरकार को दृढ़ आदेश देता है- 'भारत छोड़ो'। अंग्रेजों को भारत को छोड़ना पड़ता है।

विश्व के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट ही जाती है। इस पूरे वृतांत में ध्यान देने की बात यह है कि गांधी जी बचपन में बहुत ही डरपोक थे। युवावस्था तक उनकी झिझक और हिचक कुछ-कुछ चलती ही रही। बचपन से ही वे अपने डर, झिझक पर काबू पाने की कोशिश करते रहे। मांसाहार करना, अंग्रेज जेंटिलमेन बनने का प्रयत्न करना आदि बेकार कोशिशें की। फिर उन सबको छोड़ा। सत्याचरण का निरंतर प्रयास उन्हें निडर बनाता गया। पहले सत्य बोलने में भी उन्हें डर लगता था। पिताजी के सामने अपनी गलतियाँ मुँह से स्वीकार करने की हिम्मत नहीं हुई। लेकिन वे पीछे नहीं हटे। अपनी गलतियों को लिखकर उनको देकर ही रहे। द. अफ्रीका संबंधी प्रस्ताव को कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्तुत करते समय भी वे काँपते रहे। लेकिन वे किसी तरह सत्याचरण पर अडिग रहे। सत्याचरण का यह आग्रह उन्हें निर्भीक बनाता गया, इसमें हम सब के लिए बहुत बड़ी सीख है। किसी न किसी तरह ज़िद करके हम सत्य का आचरण करते रहेंगे तो हमारे मन से भी डर और झिझक दूर होती जाएगी और हम भी एक दिन गांधी जी जैसे निर्भीक बनेंगे।

आधार ग्रंथ

1. महात्मा गांधी ग्रंथमाला भाग- 1 एवं 3, (तमिल) गांधी स्मारक निधि, मदुरै-20

2. निर्भीक गांधी (तमिल), जवाहरलाल नेहरू, गांधी स्मारक निधि, मदुरै-20

3. दक्षिण अफ्रीका- महात्मा गांधी की जन्म भूमि, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

– अध्यक्ष, गांधी मंडम, चिदंबरम्, तमिलनाडु

❑❑❑

गांधी और स्त्री विमर्श

डॉ. किरण झा

युग पुरुष और युग द्रष्टा महात्मा गांधी का जीवन विविधमुखी था। वे जहाँ स्वाधीनता संग्राम में प्रभावी रूप से सक्रिय रहे वहीं सामाजिक चेतना और उनके सरोकार से भी गहरे जुड़े थे। गांधी एक व्यक्ति नहीं पूरी संस्था है इसमें विचार, दर्शन, चिंतन और आंदोलन का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। उन्नीसवीं सदी का दौर ऐसा था जिसमें स्वाधीनता संग्राम अपना विद्रोही और प्रखर स्वरूप ग्रहण कर रहा था वहीं विभिन्न समाज सुधारक समाज की कुरीतियों के उन्मूलन में दत्तचित्त थे। महात्मा गांधी की स्त्री चेतना को बीजवपन काल से उसके प्रौढस्वरूप प्राप्त करने तक की यात्रा को इस आलेख में समझने का प्रयत्न करेंगे। दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान उनके घर पर अक्सर अनेक मेहमान सम्मिलित होते थे और उनका सारा काम भोजन के जूठे बर्तन से लेकर मलमूत्र की सफाई तक स्वयं गांधी जी और उनकी धर्मपत्नी किया करती थीं। यह घटना सन् 1898 की है। कस्तूरबा को यह कार्य करना बिल्कुल पसंद नहीं था। इस प्रकरण से महात्मा गांधी बा से नाराज हो जाते थे। उनमें पुरुष अहं उस समय तक गहरे व्याप्त था और बा की यह प्रतिक्रिया उन्हें बिल्कुल भी सह्य नहीं थी और उनकी इस अहंभावना ने पति पत्नी के मध्य झड़प का रूप ले लिया, प्रतिक्रियास्वरूप गांधी जी ने बा के स्वाभिमान को चोट पहुँचाते हुए घर से बाहर चले जाने को कहा । प्रत्युत्तर में कस्तूरबा ने असीम धैर्य का परिचय देते हुए छलनी हुए हृदय से आहत होकर कहा – मैं औरत जात ठहरी, इसलिए मुझे तुम्हारी धौंस सहनी ही होगी। शरमाओ और दरवाजा बंद करो। कोई देखेगा तो दोनों के मुँह पर कालिख लगेगी। 'पत्नी के प्रति और विशेषकर संपूर्ण स्त्री जाति के प्रति महात्मा गांधी का हृदय परिवर्तन यहाँ से हुआ। जिस प्रकार वे रंगभेद के आधार पर ट्रेन के फर्स्ट क्लास के डिब्बे से अंग्रेज अधिकारी द्‌वारा जबरदस्ती उतार दिए जाने के उपंरात रंगभेद के खिलाफ आवाज उठाने को कटिबद्‌ध हुए वैसे ही उपर्युक्त घटना से गांधी जी के स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन हुआ। 19वीं शती के उत्तराद्‌र्ध का यह समय आगे चलकर स्त्रियों की आर्थिक, पारिवारिक, राजनैतिक एवं सामाजिक स्तर पर प्रबल रूप से स्थिति बदलने का बीजवपन था।

गांधी जी की स्त्रीवादी सोच को ब्रिटेन की स्त्रियों द्‌वारा स्त्रियों को व्यस्क मताधिकार दिए जाने हेतु किए गए आंदोलनों ने काफी प्रभावित किया। गांधी जी ने सन् 1906 में दक्षिण अफ्रीका की अंग्रेजी हुकूमत की नालवाडी नीति के खिलाफ सत्याग्रह का आंदोलन प्रारंभ कर दिया था और वही दौर था जब ब्रिटेन की महिलाओं ने राजनैतिक अधिकार प्राप्ति हेतु आंदोलन छेड़ रखा था। गांधी जी ब्रिटेन की महिलाओं द्‌वारा चलाए जा रहे इस आंदोलन के प्रबल समर्थन में थे और दक्षिण अफ्रीका से निकलने वाले 'इंडियन ओपीनियन' नामक अपने पत्र में लगातार उनके पक्ष में प्रतिक्रियाएँ लिखते रहें। यह और दक्षिण अफ्रीका में रह रही भारतीय मूल की महिलाओं के जीवन स्तर और उनकी स्थिति को सुधारने की पृष्ठभूमि तैयार करने में काफी मददगार साबित हुआ। और इस सूक्ष्म दृष्टि से जो वैचारिक धरातल तैयार हुआ स्त्रियों के प्रति गांधी जी के मानस

पटल पर उसने भविष्य में स्त्रियों की स्थिति सुधारने में काफी योगदान दिया। फलस्वरूप जहाँ ब्रिटेन की महिलाओं की स्थिति हर मायनों में भारत में रह रही महिलाओं से बेहतर थी फिर भी उन्हें अपनी राजनैतिक बराबरी प्राप्त करने हेतु लड़ाई लड़नी पड़ी। उनसे भिन्न भारत में यहाँ की महिलाओं की स्थिति सुधारने हेतु महात्मा गांधी और उन जैसे और कई समाज सुधारकों ने काफी गुरुतर प्रयास किया। परिणामस्वरूप स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय महिलाओं को लिंग भेद के आधार पर समान नागरिकता स्वत: प्राप्त हुई और उनको लगभग वो सब अधिकार प्राप्त हुए जो पुरुषों को प्राप्त थे। परंतु इस सुखद स्थिति तक पहुँचने की प्रक्रिया बहुत ही कारुणिक, असहिष्णु, अमानवीय, दयनीय स्थितियों को झेलते हुए पूरी हुई। गांधी जी ने देखा भारत में स्त्रियाँ पर्दा - प्रथा बाल - विवाह, अशिक्षा, बाल विधवा, आर्थिक पराधीनता परवशता, बहुविवाह, जिस्मफरोशी और पाशविकता आदि के पाश से भीषण रूप से जकड़ी हुई हैं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के साथ नारी को इन बेड़ियों से मुक्त कराना भी गांधी जी के अथक और स्तुत्य प्रयासों मे से एक है। स्वदेशी, स्वराज और स्वाधीनता में नारी को बराबरी के साथ मुख्यधारा में लाकर भारतीय जनमानस के सर्वांगीण विकास की ओर गांधी जी ने पहल किया। गांधी जी का यह मानना था कि जब तक नारी शिक्षित नहीं होगी तब तक परिवार, समाज और देश शिक्षित नहीं होगा। गांधी जी इस सोच के कायल थे कि स्त्री पुरुष की अद्‌र्धांगिनी मानी जाती है। यदि हमारा आधा शरीर मुर्दा हो जाए, तो हम मानते हैं कि हमें लकवा मार गया है, और हम बहुत से कामों के लिए अयोग्य हो जाते हैं। '' दक्षिण अफ्रीका में रहने के दौरान ही गांधी जी स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को भांप चुके थे। इस दिशा में उन्होंने संपूर्ण देश भ्रमण कर विभिन्न समुदायों और वर्गों की स्त्रियों के पास जाकर और उनसे सीधे-सीधे प्रश्न कर उनकी विविध समस्याओं की जानकारी प्राप्त की और इसके समाधान की ओर प्रवृत्त हुए। इस दिशा में उन्होंने स्त्रियों के लिए शिक्षा को आवश्यक बनाने, लोकमत को जाग्रत करने, आर्थिक स्वावलंबन का उपाय ढूँढने, पुरुषों के बराबर स्त्रियों को समानता दिलाने जैसे कार्यो में दृढ़ संकल्प से जुट गए।

गांधी जी के मस्तिष्क में स्त्री शिक्षा को लेकर बहुत स्पष्ट सोच थी। दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान ही उन्होने इस बात की महत्ता जान ली थी कि भारत में रह रही महिलाओं को जब तक शिक्षित नहीं किया जाएगा तब तक संपूर्ण देश और समाज का विकास नहीं हो सकता। उनका यह मानना था कि पुरुषों को शिक्षित करो तो एक परिवार शिक्षित होता है और स्त्रियाँ शिक्षित हों तो दो परिवार शिक्षित होते हैं। कन्याओं को शिक्षित करने हेतु उनकी माताओं को जागरूक होना होगा और उनकी शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान तक सीमित ना हो बल्कि सामाजिक जागरूकतापरक, नैतिक और जनजागृति परक हो। इस दिशा में सर्वप्रथम उनकी पहल हुई बाल विवाह रूपी सामाजिक कुसंस्कार को जड़ से खत्म करने से। बाल विवाह एक ऐसा अभिशाप था जिसके कई दुष्परिणाम थे। उन्होने देखा अत्यल्प वयस में कन्याएँ अधेड़ उम्र के पुरुषों से ब्याही जाती थीं जिन्हें विवाह का मतलब भी पता नहीं होता था। परिणामस्वरूप जब उनके पति का निधन हो जाता था तो वो बालिकाएँ (3 वर्ष से 15 वर्ष के मध्य की कन्याएँ) वैधव्य के अभिशाप में जीवन जीने को मजबूर हो जाती थीं जिससे उनका अनेक प्रकार से हनन होता था। वे अशिक्षित रह जाती थीं, आर्थिक पराधीनता में जकड़ी होती थीं, और कई बार जाने-अनजाने नैतिक अनाचार और पापाचार में लिप्त हो जाती थीं। कुल मिलाकर गांधी जी ने महसूस किया कि स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए उन्हें शिक्षित करने के लिए पर्दा प्रथा एवं बाल विवाह जैसे भस्मासुर को समाप्त करना होगा। इसके लिए वे देश भर में भ्रमण कर सभी उम्र, वर्ग और जाति की स्त्रियों से मिलकर उनकी समस्याएँ और परिस्थितियों से अवगत हुए। समाधान के रूप में उन्होंने लेखन और भाषण का सहारा लिया। उनका कथन था सहस्त्रों लड़कियाँ बारह साल की उम्र में ही बाल विवाह की बलि चढ़ जाती हैं और हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती हैं। वे गृहिणी बन जाती हैं। यह पापपूर्ण प्रथा जब तक हमारे समाज से नहीं मिटेगी तब तक पुरुषों को स्त्रियों का शिक्षक बनना सीखना पड़ेगा। जब तक हमारी स्त्रियाँ हमारे विषयभोग की सामग्री और रसोई करने वाली हमारी जीवन सहचरी न रहकर अर्धांगिनी और सुख-दुख की साझीदार नहीं बनतीं, तब तक हमारे सारे प्रयत्न मिथ्या जान पड़ते हैं। ''गांधी जी इस तथ्य के प्रबल समर्थक थे कि स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष समानता मिलनी चाहिए और धीरे-धीरे राजनीति और समाज सुधार की भी शिक्षा मिलनी चाहिए उन्होने महसूस किया स्त्रियाँ पर्दे में रहकर अपनाा स्वतंत्र और पूर्ण रूप से विकास भी नहीं कर पातीं यहाँ तक

कि स्वच्छ हवा और रोशनी तक के लिए तरस जाती हैं। पर्दा प्रथा खत्म करने हेतु गांधी जी ने पुरुषों से अपनी सोच विस्तृत करने की अपील की और महिलाओं को सभाओं आदि में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करने का आग्रह किया। गांधी जी जब भी किसी सभा आदि में जाते वहाँ पर्दे के पीछे बैठी महिलाओं से अवश्य जाकर मिलते थे और उनसे उनकी समास्याएँ और विचार जानने का प्रयत्न करते थे। हिंदू - मुस्लिम सभी महिलाएँ उन जैसे महात्मा पुरुष से मिलने को आतुर होती थी और अपने आपको गौरवान्वित महसूस करती थीं। गांधी जी में महिलाओं को अपना मसीहा नजर आता था। वे स्पष्ट और बेबाक होकर बातचीत में हिस्सा लेती थी। स्त्रियों की स्थिति और अधिक मजबूत बनाने हेतु गांधी जी ने दहेज रूपी विभीषिका को समूल नष्ट करने की भी आवश्यकता समझी। उनका यह मानना था कि दहेज एक ऐसा राक्षस है जो कन्या और कन्या के पिता और परिवार को कई बार बिल्कुल दयनीय और कातर स्थिति में जीवन जीने को मजबूर कर देता है। दहेज के अभाव में कई बार कन्या को योग्य वर नहीं मिल पाते और कई बार कन्याएँ प्रताड़ित और उत्पीड़ित की जाती थीं और अंत में त्रस्त होकर कई बार आत्महत्या तक कर लेती थीं या मार दी जाती थीं। गांधी जी इस दुर्भाग्यपूर्ण प्रथा को समाप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि वर एवं कन्या दोनों को इस दिशा में सचेत होने की आवश्यकता है कि यदि वर पक्ष की तरफ से दहेज की माँग होती है तो कन्या खुलकर उसका विरोध करे और विवाह से मना करे। वहीं वे नवयुवकों से भी आह्वान कर रहे थे कि वे दहेज लेने से अपने माता पिता को इनकार करें। पराधीन भारत में अधिकांश महिलाएँ आर्थिक पराधीनता की बेड़ी में जकड़ी हुई थीं। इनसे निजात दिलाने के लिए उन्होंने महिलाओं से चरखा कातने जैसे स्वदेशी माध्यम को बढ़ावा देने हेतु आह्वान और आग्रह किया। उनके इस मुहिम में तमाम महिलाएँ जुड़ीं और स्वराज और स्वदेशी रूपी बुनियादी सरोकार से जुड़कर आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में अग्रसर हुईं। गांधी जी ने स्त्रियों की स्थिति सुधारने की दिशा में अनेक कदम उठाए। गांधी जी ने समाज में पतित कहलाने वाली स्त्रियों की ओर भी ध्यान दिया और उन्हें उस पापाचार से मुक्ति दिलाने हेतु भी कार्य किया। सन् 1921 में 'नवजीवन' में अपने अनुभव बताए। उनके साथ गांधी जी ने साक्षात संवाद किया था और उनकी उस धंधे से मुक्ति की पुकार को महसूस किया था - "ज्यों ही मैं रात की सभा से आया, मैंने कोई सौ बहनों को एक कोने में खड़े देखा। मुझे ध्यान आ गया और मैं आदर के साथ उन्हें छत पर ले गया। एक दुभाषिए को साथ रखकर शेष पुरुषों को विदा कर दिया। मैंने उनसे कहा कि तुम दिल खोलकर अपनी बात मुझसे कहो। उनमें चार पाँच व दस वर्ष की लड़कियाँ भी थीं। कुछ प्रौढ़ा और बाकी बीस से तीस वर्ष के अंदर की होंगी। और उनमें से कई उसी समय अपना पेशा छोड़कर सूत कातते हुए सादगी और स्वाभिमान से जीने को कृत संकल्प हुईं।" उनका मानना था कि स्वराज्य का अर्थ है पतितों का उद्धार।

बाल विधवाओं के पुनर्विवाह की भी गांधी जी ने पुरजोर वकालत की। उनका मानना था कि कम उम्र की बालिकाओं को वैधव्य भरा जीवन जीने को मजबूर होना बहुत ही त्रासद स्थिति है। यदि कोई कन्या स्वेच्छा से विवाह करना चाहे तो उसे उसके परिवार, माता-पिता और समाज से समर्थन प्राप्त हो ताकि वो अपना जीवन सम्मान से जी सके। उनका मानना था कि बालिकाओं का यह पुनर्विवाह नहीं है क्योंकि उनका विवाह तो असल मायनों में हुआ ही नहीं था। इससे पता लगता है कि गांधी जी स्त्रियों की स्थिति को सुधारना चाहते थे परंतु उनके स्वाभिमान को बरकरार रखते हुए न कि उन पर दयादृष्टि रखते हुए। स्त्रियों के प्रति गांधी जी का रवैया बेहद स्पष्ट था। हालाँकि स्त्रियों के अधिकार की लड़ाई में कई बार उन्हें महिलाओं का भी विरोध झेलना पड़ा। परंतु उन्होंने कभी भी संख्या बल को महत्व नहीं दिया। महत्व दिया लक्ष्य को और मूल्यों को, सिद्धांत को। अनेक अवरोधों और संघर्षो को झेलते हुए गांधी जी ने अपनी स्वराज और स्वदेशी की लौ को पूरी भारतीय वांङ्मय के सुदृढ़ विरासत के रूप में जलाए रखा और भारतीय संस्कृति के आदिदेव महादेव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप में नारी की महत् कल्पना की संजीवनी को चेतन करते हुए भारतीय स्त्रियों की संपूर्ण रूप से उत्थान के लिए स्तुत्य कार्य किया। उनके स्वदेशी और महिला उत्थानपरक नीतियों और विचारों का प्रतिफलन

हमें तत्कालीन साहित्यकारों और ओजस्वी नारियों के स्वरूप में परिलक्षित होता है। प्रेमचंद के सेवासदन में समाज की उन महिलाओं का बेहद मार्मिक व साथ ही उदात्त चरित्रांकन है। वहीं गोदान में मालती के रूप में फैशनपरस्त आधुनिक डाक्टर का हृदय परिवर्तन होकर सेवा भाव में डूब जाना वास्तव में गांधीवादी सोच का ही स्वरूप है। सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा के साहित्य में भी नारी के ओजमयी स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। चरखे के रूप में गांधी जी ने स्त्रियों के आर्थिक स्वाभिमानपरक जीवन बसर करने का जो स्वदेशी अभियान चलाया वह जयशंकर प्रसाद के कामायनी की स्त्री पात्र श्रद्धा के जीवन में भी परिलक्षित होता है। स्वाधीनता संग्राम में सत्याग्रह आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाली सरोजिनी नायडू और उनकी बेटी पद्मजा नायडू, सुचेता कृपलानी, राजकुमारी अमृता कौर जैसी कई सशक्त नारियों ने भारतीय जनमानस के लिए अभूतपूर्ण योगदान दिया। वास्तव में नारी मुक्ति और उत्थान के लिए महात्मा गांधी ने जितना कार्य किया वह सदैव स्मरण किया जाएगा और भारतीय पीढ़ी सदैव ऋणी रहेगी।

आर जेड, एच-10 गुरुद्वारा रोड, महावीर एन्कलेव, नई दिल्ली 110045

❑❑❑

पत्रकारिता, प्रतिबद्धता और महात्मा गांधी

डॉ. सुनील कुमार तिवारी

महात्मा गांधी विस्मृति में डूबे भारतीय लोकायतन में शांतिपूर्ण क्रांति के अवश्यंभावी अरूण प्रकाश थे। उनकी वैचारिकता जितनी प्रामाणिक है, उनकी वाणी और विचार सूत्रों का विस्तार भी उतना ही विस्मित करता है। सहस्राधिक पृष्ठों में उल्लिखित गांधी के विचार - रत्नों में आध्यात्मिक और भौतिक जीवन का एक भी पक्ष ऐसा नहीं है, जो उनके चिंतन - अनुशीलन का विषय न बना हो। साहित्य, राजनीति, धर्म, किसान, मजदूर, भंगी, आहार, स्वच्छता, चिकित्सा, नींद, वेश्यावृत्ति, तलाक, दहेज, युद्ध, शांति, रामराज्य, पत्रकारिता जैसे सभी विषयों पर उन्होंने समान रूप से और पूरे विश्वास के साथ लेखनी चलाई है। गांधी ने आजीवन निर्भीकता, तेजस्विता और प्रतिबद्धता की जमीर पर पत्रकारिता की और निश्चित मूल्यों पर प्रतिमानों के आग्रह से बँधे रहे।

1888 ई. में गांधी बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए लंदन गए और वहाँ की 'वेजीटेरियन सोसायटी के 'द वेजीटेरियन' पत्र के लिए भारत से संदर्भित बारह लेखों की महत्वपूर्ण कड़ी उन्होंने लिखी। 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'हिंदू', 'स्टेट्समैन' में भारतीयों के साथ विदेशियों के व्यवहार के संबंध में उन्होंने स्वतंत्र लेखन किया। गांधी ने अक्टूबर 1899 में स्वतंत्र पत्रकार के रूप में बोअर युद्ध के समय 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लिए ग्राउंड रिपोर्टिंग की। 'प्रिटोरिया न्यूज' के संपादक मि. विअर स्टेट ने गांधी द्वारा युद्ध से भेजी गई रपटों और चित्रों का प्रकाशन किया था।

1893 ई. में गांधी एक वकील के रूप में एक वर्ष के लिए दक्षिण अफ्रीका गए और इक्कीस वर्ष बाद मोहनदास से महात्मा गांधी बनकर भारत लौटे। वहाँ रंगभेद, दुर्व्यवस्था को साधन बनाया। इस तरह, राजनीति और पत्रकारिता दोनों को साधकर समाज सुधार का संकल्प प्रथमतः गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में धारण किया। उन्होंने एक ग्रीन पैम्फलेट प्रकाशित कर वहाँ के प्रवासियों की दुर्दशा की ओर विश्व समुदाय का ध्यान खींचा। 'मद्रास स्टैंडर्ड', 'हिंदू', 'अमृत बाजार पत्रिका' आदि अनेक पत्र तक गांधी के लेखों को बढ़ - चढ़कर जगह दे रहे थे।

गांधी ने अपने अध्ययन के दौरान इंग्लैंड में ही पत्रकारिता की ताकत को पहचान लिया था। वस्तुतः दलपतराय शुक्ल के सुझाव पर उन्होंने इंग्लैंड में अंग्रेजी समाचार - पत्र पहली बार पढ़ना शुरू किया। 18 - 19 वर्ष की उम्र में इस दिशा में वे प्रवृत्त हुए। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''अभी पढ़ाई शुरू नहीं हुई थी। मुश्किल से समाचार - पत्र पढ़ने लगा था। यह भाई शुक्ल का प्रताप था। हिंदुस्तान में मैंने समाचार - पत्र कभी पढ़े नहीं थे, पर बराबर पढ़ते रहने के अभ्यास से उन्हें पढ़ने का शौक मैं पैदा कर सका था। 'डेली न्यूज', 'डेली टेलीग्राफ' और 'पेलमेल गजेट' इन पत्रों को सरसरी निगाह से देख जाता था, पर शुरू - शुरू में तो इसमें मुश्किल से एक घंटा खर्च होता होगा।"

वस्तुतः अखबर के लिए कुछ लिखने की शुरूआत गांधी ने 'संपादक के नाम पत्र' द्वारा की। दक्षिण अफ्रीका के आरंभिक दौर में उन्होंने 'नेटाल एडवर्टाजर',

'नेटाल विटनेस', 'नेटाल मर्क्युरी', जैसे अंग्रेजी अखबारों में वहाँ की समस्याओं को संबोधित कर संपादक के नाम प्रभूत पत्र लिखे। जून 1896 में गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए रवाना हुए और दिसंबर 1896 में वापस लौटे। इस यात्रा के दौरान जहाँ - जहाँ उनका स्टीमर रूका, उन शहरों के अखबारों के संपादकों से मिलकर उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के हालात साझा किए और अपने उद्देश्य हेतु पत्रों के समुचित उपयोग की व्यावहारिक दृष्टि विकसित की। भारत पहुँचकर बंबई, राजकोट, पूना, मद्रास, कलकत्ता -- गांधी जिन - जिन शहरों में गए, वहाँ के प्रतिष्ठित संपादकों से मुलाकात कर निजी रूप से उन्हें अपने विचार और लक्ष्यों से अवगत कराना नहीं भूले। जनता की जागृति और अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु पत्रकारिता के साधनों के उपयोग को अब गांधी ने ठीक - ठाक पहचान लिया था।

पत्रकारिता के संदर्भ में वर्ष 1903 गांधी के जीवन का महत् वर्ष सिद्ध हुआ। इसी वर्ष दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू हुआ और उससे जुड़कर गांधी ने सक्रिय पत्रकारिता में कदम बढ़ाए। 'इंडियन ओपिनियन' का पहला अंक 4 जून, 1903 (यद्यपि गांधी ने अपनी आत्मकथा में 1904 दर्ज किया है) को प्रकाशित हुआ, जिसके पहले संपादक मुंबई के सुप्रसिद्ध लोककल्याणकारी पत्रकार मनसुखलाल हीरालाल नाज़र बनाए गए, पर सच्चाई यह है कि इस पत्र के 'संपादन का सच्चा बोझ' गांधी ही उठाते रहे। इस पत्र के प्रवेशांक के प्रथम पृष्ठ पर छपी सूचना में दर्ज है कि यह साप्ताहिक पत्र अंग्रेजी, गुजराती, तमिल तथा हिंदी चार भाषाओं में प्रकाशित है, जो दक्षिण अफ्रीका के ब्रिटिश भारतीयों के हितों की रक्षा हेतु निकाला गया है। गांधी ने इस पत्र के माध्यम से पत्रकारिता के तीन उद्देश्य को स्पष्ट किया -

(क) पत्रकारिता का पहला काम जन - भावनाओं को समझना और उन्हें अभिव्यक्ति देना है।

(ख) पत्रकारिता का दूसरा उद्देश्य लोगों में जरूरी भावनाओं को जाग्रत करना है।

(ग) पत्रकारिता का तीसरा उद्देश्य निर्भीक तरीके से गड़बड़ियों को उजागर करना है। 'इंडियन ओपिनियन' के अंग्रेजी और गुजराती संस्करण लगातार प्रकाशित होते रहे, पर संपादकों व कंपोजिटरों की अस्थायी उपलब्धता और कुछ आर्थिक दबावों की वजह से गांधी ने इसके तमिल और हिंदी खंड को बंद कर दिया। गांधी ने दरअसल पत्रकारिता को ध्येय नहीं, उद्देश्यपूर्ति में सहायक उपकरण के रूप में ग्रहण किया और लाभ तथा लोभ से परे होकर अपनी गाँठ से रूपए लगाए। गांधी के समक्ष मानवाधिकारों से वंचित दुर्दशाग्रस्त भारतीय समाज था, जिसके उत्थान की प्रतिबद्धता के फलतः विपरीत स्थितियों में भी वे 'इंडियन ओपिनियन' के प्रकाशन में नैरंतर्य के प्रबल आकांक्षी थे। 15 सिंतबर, 1912 को एक टिप्पणी में गांधी लिखते हैं --

इस समाचार - पत्र के दो ही उद्देश्य हैं -- दक्षिण अफ्रीका के ब्रिटिश भारतीयों की शिकायत को लोगों के सामने लाना और उन्हें दूर करने के उपाय करना तथा साथ ही जीवन को ऊँचा उठाने वाली पाठ्य - सामग्री प्रकाशित करके जन - शिक्षण का कार्य करना।''

'इंडियन ओपिनियन' के प्रकाशनकाल में एक समय ऐसा भी था, जब अपनी बचत में से हर महीने गांधी को 85 पौंड भेजने पड़ते थे, पर उन्हें संतोष यह था कि इस अखबार ने हिंदुस्तानी समाज की अच्छी सेवा की है। यह पत्र गांधी के लिए 'संयम की तालीम' सिद्ध हुआ -- ''एक भी शब्द बिना विचारे, बिना तौले लिखा हो या किसी को केवल खुश करने के लिए लिखा हो अथवा जान - बूझकर अतिशयोक्ति की हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। ... इस अखबार के बिना सत्याग्रह की लड़ाई चल नहीं सकती थी। ... मैं संपादक के दायित्व को भली - भाँति समझने लगा और मुझे समाज के लोगों पर जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ, उसके कारण भविष्य में होने वाली लड़ाई संभव हो सकी, वह सुशोभित हुई और उसे शक्ति प्राप्त हुई।''

डॉ. शंकर दयाल शर्मा के अनुसार, ''बापू के इस कथन में पत्रकार का दायित्व, प्रेस की शक्ति तथा लोगों से उसके सीधे जुड़ाव की बड़ी उपयोगी बातें कही गई हैं। इसमें 'संयम की तालीम' की बात तो बहुत ही महत्वपूर्ण है।

गांधी के भारत आने (18 जुलाई, 1914) तक 'ओपिनियन' के 581 अंक छपे, जिनकी कुल पृष्ठ संख्या 15,544 के लगभग थी। निश्चित तौर पर यह पत्र एक संवादधर्मी व्यक्ति के रचनात्मक संकल्प का श्रेष्ठ सुफल था, जिसने गांधी के जीवन, विचार, स्वप्नों और संघर्षो का भाष्य प्रस्तुत किया।

भारत लौटकर गांधी ने अभिव्यक्ति की शक्ति और राष्ट्र सेवा के व्रत के लिए पत्रकारिता को अनिवार्य मानकर 7 अप्रैल, 1919 को मुंबई से 'सत्याग्रही' नामक साप्ताहिक शुरू किया। पत्र में प्रति सोमवार को प्रकाशन की घोषणा थी, परंतु बिना डिक्लेरेशन दिए प्रकाशित इस पत्र का कोई चंदा नहीं रखा गया था, फिर भी प्रति कॉपी एक पैसा मूल्य अंकित था। गांधी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यह गारंटी नहीं दी जा सकती कि यह पत्र बिना किसी व्यवधान के प्रकाशित होता रहेगा, क्योंकि संपादक के किसी भी क्षण गिरफ्तार होने की संभावना है। किंतु इस बात की कोशिश जरूर करेंगे कि एक संपादक की गिरफ्तारी के बाद दूसरा संपादक इसकी जिम्मेदारी लेता जाए। पत्र के प्रथम अंक की नोटिस की शब्दावली द्रष्टव्य है -- ''जब तक रोलेट एक्ट वापिस नहीं लिया जाएगा, तब तक इसका प्रकाशन चालू रहेगा।'' गौरतलब है कि हिंदी और अंग्रेजी में छपने वाले इस एक पन्ने के बुलेटिन ने जनमानस को जाग्रत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यद्यपि इस पत्र के दो ही अंक छपे, सत्याग्रह स्थगन के साथ प्रकाशन भी स्थगित कर दिया गया।

7 मई, 1919 से 31 दिंसबर 1931 तक गांधी ने अपने संपादकत्व में 'यंग इंडिया' का प्रकाशन कर भारत के राजनैतिक और सामाजिक पटल पर अपूर्व प्रभाव छोड़ा। 21 अगस्त, 1919 को मुंबई के लोक-शिक्षा निदेशक को लिखे पत्र में गांधी ने स्वीकार किया है कि 'यंग इंडिया' अब उनकी देख - रेख में प्रकाशित हो रहा है। वस्तुतः गांधी की पत्रकारिता उनके राजनैतिक और वैचारिक लक्ष्यों की पूर्ति का महत्वपूर्ण साधन थी, जिसे 'यंग इंडिया' के 2 जुलाई, 1925 के अंक में गांधी ने स्पष्ट किया है -- ''मैंने पत्रकारिता को पत्रकारिता की खातिर नहीं अपनाया है, बल्कि जिसे मैंने अपने जीवन का ध्येय समझा है, उसके सहायक के रूप में अपनाया है।''

लोक सेवा और देश सेवा गांधी की पत्रकारिता का मूल संकल्प था, जिसकी परिधि के तहत उन्होंने 'यंग इंडिया' के प्रकाशन का लक्ष्य रखा था -- सत्य और अहिंसा से स्वराज्य की प्राप्ति और अंग्रेजी जानने वाले जन - समुदाय को इन आदर्शो से परिचित कराना। गांधी 'यंग इंडिया' को मुंबई से अहमदाबाद ले आए थे और 'नवजीवन ट्रस्ट' इसका संचालक बन गया था। 'यंग इंडिया' के 11 जून, 1919 के अनुसार गांधी ने 'यंग इंडिया सिंडिकेट' से इसके संपादन की देख - रेख की अनुमति माँगी थी, क्योंकि वे चाहते थे कि सत्याग्रह के सामान्य सिद्धांतों तथा सत्य - नीति के अनुकूल समाचार ही उसमें प्रकाशित हों। गांधी 1922 से 1924 तथा 1930 से 1931 तक जेल में रहे और इस दौरान शुएब कुरैशी, राजगोपालाचार्य, जॉर्ज जोसेफ, जे. सी. कुमारप्पा आदि सहयोगियों ने 'यंग इंडिया' की नीति - रीति की रक्षा की। जेल से लौटकर गांधी ने 'यंग इंडिया' के पाठकों को संबोधित करते हुए संपादकीय टिप्पणियों में साफ किया कि ''यद्यपि जहाँ तक मेरी दृष्टि पहुँचती है, कोई नई रीति या नीति 'यंग इंडिया' के पृष्ठों में नहीं मिलेगी, फिर भी उसके पृष्ठों में बासी सामग्री नहीं रहेगी। 'यंग इंडिया' में बासीपन तभी आ सकता है, जब सत्य बासी हो जाए। ...मैं भारत में आजादी के लिए जी रहा हूँ और उसी के लिए मरूँगा। अतः सार्वजनिक प्रश्नों की चर्चा करते हुए 'यंग इंडिया' के पृष्ठों का उपयोग और उसकी आवश्कता को भी समझाया जाएगा।''

'यंग इंडिया' के संपादकीय टिप्पणियों में गांधी ने कई बार अपनी पत्रकारिता दृष्टि पर प्रकाश डाला और सेंसरशिप, प्रेस की स्वतंत्रता, विज्ञापन, आत्म - संयम, झूठी रिपोर्ट, अर्थतंत्र, गुप्त समाचारों का उद्घाटन जैसे विषयों पर विशद टिप्पणी की।

'यंग इंडिया' अपने हाथों में लेने के साथ ही गांधी को यह चिंता सता रही थी कि भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के विकास के बिना जनता को स्वराज्य के संघर्ष के लिए तैयार करना असंभव है। उनका मानना था कि सत्याग्रह की तालीम केवल अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पूरे देश को नहीं दी जा सकती। 'यंग इंडिया' के 24 सितंबर, 1919 में छपी गांधी जी की टिप्पणी भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता का अपूर्व महत्व दर्शाती है। ''...अंग्रेजी तो कोई बड़ा माध्यम है नहीं, उससे तो मुट्ठी भर लोगों के पास ही पहुँचा जा सकता है। मैं तो अधिक - से - अधिक लोगों के पास पहुँचना चाहता हूँ और यह केवल भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही किया जा सकता है।'' वस्तुतः 'नवजीवन' नामक संस्था के गठन तथा उक्त पत्र को साप्ताहिक बनाने का श्रेय गांधी को जाता है। गांधी ने 1 सितंबर, 1919 से नवजीवन (गुजराती) का संपादन शुरू किया। दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' के प्रकाशन का अनुभव उनके साथ था। प्रेस का दायित्व और आजादी की प्रतिबद्धता को महत्वपूर्ण मानते हुए गांधी ने इसे एकान्वित रूप नवजीवन के स्वरूप में दिया। 'नवजीवन' की नौ

हजार प्रतियाँ छपती, पर घाटा होता रहा। गांधी के सामने दो संकल्प थे -- विज्ञापन से पैसा न कमाना तथा घाटे में समाचार - पत्र का प्रकाशन बंद कर देना। गांधी को घाटे के कारण 'नवजीवन' का अस्तित्व केवल उसी के लिए है।'' अत: 'नवजीवन' खरीदने का अर्थ है स्वराज्य के मार्ग में प्रवृत्त होना, 'नवजीवन' खरीदने का अर्थ है चरखे का स्तवन करना तथा 'नवजीवन' के ग्राहक होने का अर्थ है सत्य और अहिंसा का सौदा करना। ... यह तभी संभव होगा जब पत्रकारिता 'धन - लोभ' एवं 'कीर्ति - लोभ' से न करके उसे सेवा - भाव से किया जाएगा और गांधी के समान समाचार - पत्र में प्रति सप्ताह आत्मा उड़ेली जाती हो।''

गांधी ने 'नवजीवन' के प्रकाशन के लगभग दो महीने के बाद 'विज्ञापन क्यों नहीं लेते?' शीर्षक लेख लिखा और बताया कि ''विज्ञापनों से वस्तुओं की कीमत बढ़ती है, वस्तु की झूठी प्रशंसा होती है और हानिकारक दवाइयों का प्रचार होता है।'' गांधी लिखते हैं, ''मुझे 'नवजीवन' को ग्राहकों द्वारा भेजे गए वार्षिक चेक के बल पर ही चलाना है, विज्ञापनों का सहारा लेकर नहीं, इसलिए ग्राहक यदि चाहें तो उसका प्रकाशन बंद हो सकता है।'' गांधी का दृढ़ मत था कि विज्ञापन पत्रकारिता को एक व्यवसाय बनाता है और ऐसे कार्यों से पत्रकारिता दूषित होती है।

गांधी की पत्रकारिता में पाठक केंद्र में था। 'नवजीवन क्लब' के रूप में 'पाठक क्लब' बनाया और पाठकों को यह अधिकार सौंपा कि वे इसका ध्यान रखें कि समाचार -पत्र में कोई अनुचित और झूठी खबर न छपे तथा अविवेकपूर्ण भाषा का प्रयोग न हो। 'नवजीवन' के पाठक चाहते थे कि यह पत्र केवल विचारों का वाहक न बनकर समाचारों का प्रकाशन भी करे, पर इसमें गांधी अपने उद्देश्यों की बाधा देखते थे। गांधी ने लिखा कि 'नवजीवन' (गुजराती) को समाचार - पत्र बनाने से स्वराज्य प्राप्ति के मुख्य उद्देश्य की हानि होगी, उससे कीमत बढ़ेगी और समाचार चुनने में भी कठिनाई होगी। अत: 'नवजीवन' में समाचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। 'यंग इंडिया' में 23 फरवरी, 1922 को प्रकाशित 'गर्जन तर्जन' लेख को कारण बताकर 10 मार्च, 1922 को गांधी गिरफ्तार किए गए और 5 फरवरी, 1924 को रिहा हुए। इन दो वर्षों में वे 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लिए कुछ नहीं लिख पाए, फलत: ग्राहकों की संख्या 21,500 से घटकर 3000 ही रह गई। 6 अप्रैल, 1924 को 'नवजीवन' के अपने पाठकों से गांधी फिर मुखातिब हुए ... ''जब आपके स्नेह की याद आती थी तो मैं हर्ष से फूल जाता था। मैं बराबर सोचा करता था कि जेल में किए गए चिंतन का परिणाम मैं आपके सामने कब प्रस्तुत कर सकूँगा।''

सेठ जमनालाल बजाज के आग्रह पर 19 फरवरी, 1921 को 'हिंदी नवजीवन' का प्रथम अंक प्रकाश में आया। इस पत्र को 'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) और 'नवजीवन' (गुजराती) से ली गई सामग्री के आधार पर अनूदित रूप में प्रकाशित किया गया। गांधी की हमेशा यह चेष्टा रही कि अनुवाद अधिकृत और भाषा सरल हो। हिंदी 'नवजीवन' का लक्ष्य गांधी के अनुसार, ''हिंदुस्तानी भाषा के प्रचार न होकर 'शांतिमय असहयोग का प्रचार था' और गांधी जानते थे कि शांतिमय असहयोग का प्रचार हिंदी भाषी जनता के बिना नहीं हो सकता। गांधी ने स्पष्ट किया कि ''इसकी भाषा हिंदी -उर्दू के सरल शब्दों से मिलीजुली 'हिंदुस्तानी' होगी, जिससे हिंदू - मुसलमान दोनों समझ सकें।''

वस्तुत: 'यंग इंडिया', गुजराती 'नवजीवन' तथा हिंदी 'नवजीवन' इन तीनों साप्ताहिकों ने गांधी के निर्देशन में भारत की आजादी के आह्वान में अपूर्व दिशाबोध उपस्थित किया। सत्याग्रह रिपोर्टिंग तथा विश्लेषण इन पत्रों ध्येय था। गांधी ने इन पत्रों के माध्यम से न केवल राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों को संबोधित किया, बल्कि भाषा, साहित्य व संस्कृति के सवालों को बड़ी संवेदनशीलता से बड़े विचारणीय मुद्दे के रूप में जनता के बीच रखा।

जब 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' अपने अग्रलेखों व रपटों के कारण अंग्रेजों की आँखों में चुभने लगा, 'फूट डालो शासन करो' की ब्रिटिश नीति तीव्रतम रूप ग्रहण करने लगी और हिंदू समाज से दलित जनों को पृथक् करने का खेल कुचक्र की शक्ल में ढल गया तो समकाल के संकट के समाधान तथा शुद्धतम साधनों से हिंदू धर्म की शुद्धि के आंदोलन का संकल्प गांधी ने 'हरिजन' के प्रकाशन के रूप में ग्रहण किया। 'हरिजन' अंग्रेजी पत्र 11 फरवरी, 1933 को छपा और इसके ग्यारह दिन बाद 23 फरवरी, 1933 को हिंदी 'हरिजन सेवक' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। गांधी ने हरिजन (अंग्रेजी) के पहले अंक में 'हरिजन क्यों' तथा हिंदी के प्रथमांक में इस शीर्षक से संपादकीय लिखकर पत्र के रीति -नीति व उद्देश्य पर प्रकाश डाला। 'हरिजन' (अंग्रेजी) में 'पाठकों से' शीर्षक से एक लंबी टिप्पणी मिलती है। अत: सारी मानव जाति की सहानुभूति प्राप्त

करने के लिए इसे प्रकाशित किया गया है। यह पत्र एक महसूस की जाने वाली कमी को पूरा करेगा, आत्मनिर्भर बनेगा तथा विज्ञापन के स्थान पर चंदे पर निर्भर करेगा।''

गांधी यह चाहते थे कि स्वतंत्रता का संदेश हर हरिजन तक पहुँचे और राष्ट्रीय जागरण के बड़े लक्ष्य को क्षेत्रीय जागरण के सबल मंत्र के साथ पूरा किया जाए। यही कारण है कि हिंदी, गुजराती की तरह 'उर्दू हरिजन' का भी प्रकाशन किया। 'उर्दू हरिजन' यूँ बहुत दिन तक नहीं चल सका, पर अहिंसा और हरिनोत्थान के मार्ग के धीर पथिक हर वर्ग और प्रत्येक इलाके के लोग बनें, गांधी का यह प्रयास स्तुत्य है। 'हरिजन' कई बार सरकार का कोपभाजन बना, पर गांधी कभी अपने मिशन से भटके नहीं। गांधी ने हमेशा यह ध्यान रखा कि 'हरिजन' केवल अस्पृश्यता – निवारण और हरिजन सेवा के लिए समर्पित रहे और इससे राजनैतिक सत्ता परिवर्तन से ज्यादा समाज परिवर्तन का लक्ष्य सधे। गांधी के लिए महत्वपूर्ण यह था कि पाठक यह याद रखें कि 'हरिजन' का मूल उद्देश्य 'हरिजन सेवा' है और जब तक छुआछूत का भूत हिंदू समाज पर छाया रहेगा, तब तक 'स्वराज' आकाशपुष्प – सा रहेगा।

'हरिजन' धीरे – धीरे ग्रामोद्योग और सामाजिक चेतना का संवाहक बनता गया और आगे चलकर 'भारत छोड़ो आंदोलन' के मुखपत्र के रूप में भी पहचाना गया। अंग्रेजों ने समाचार – पत्र नियंत्रण कानून के तहत 1933 से अब तक 'हरिजन' की सारी फाइलें जलाने का आदेश निर्गत किया, जिससे गांधी काफी मर्माहत हुए। 6 मई, 1944 को रिहा होने के बाद गांधी ने पुनः 10 फरवरी, 1946 को 'हरिजन' का प्रकाशन शुरू कराया और अपने सतत् उद्यम से इस पत्र ने लगभग सवा वर्ष के भीतर स्वाधीनता के महत् लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। अपने उद्देश्यों की सफलता के बाद प्रस्तावित सरकार की रूपरेखा देखते हुए जुलाई 1947 में गांधी ने सरदार पटेल को पत्र लिखकर 'हरिजन' आदि पत्रों का प्रकाशन बंद करने का सुझाव देते हुए कहा कि अब हम अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो रहे हैं, इसलिए हमारे साप्ताहिकों की जरूरत नहीं है। बापू की मृत्यु के बाद 'हरिजन' का अंतिम अंक 15 फरवरी, 1948 में सी. राजगोपालाचारी के संदेश के साथ आया, 'हरिजन' बापू की आत्मा की आवाज थी। अब वे नहीं रहे, अतः 'हरिजन' का प्रकाशन अब दिशाहीन हो जाएगा।'' माखनलाल चतुर्वेदी की उक्ति भी 'हरिजन' के अंतिम अंक के इस संदेश से मेल खाती है –– ''गांधी से महान संपादक कदाचित इस देश में पैदा नहीं हुआ। जिस दिन हमने गांधी को खोया, उसी दिन सारी पत्रकारिता देशभक्ति के धर्म से हटकर राजनीति का जकड़ – व्याल हो गई।''

चार दशकों तक गांधी सक्रिय पत्रकारिता से जुड़े रहे। उनका लेखा – बोला गया साहित्य लगभग 50,000 पृष्ठों का है और उनका एक भी शब्द ऐसा नहीं है, जो नैतिकता और सत्यनिष्ठा की अप्रतिम आभा से दीपित न हो। जैनेंद्र कुमार लिखते हैं, ''गांधी से बड़ा नैतिक पुरूष अर्वाचीन इतिहास में शायद ही कोई दूसरा मिले।''

गांधी ने कई बार कहा कि मुझे परिस्थितिवश पत्रकार होना पड़ा, पर सच यह है कि गांधी की पत्रकारिता संपूर्णता, सार्थकता और निर्भीकता की त्रिवेणी रचती है। गांधी की पत्रकारिता सच्चे मायने में मिशनरी पत्रकारिता थी। गांधी पत्रकार संघ को मजबूत करना चाहते थे और पत्रकारों द्वारा स्वयं ही अपनी आचारसंहिता बनाने के पक्षधर थे। 27 सितंबर, 1925 के 'यंग इंडिया' में गांधी अपना मंतव्य प्रकट करते हैं कि ''मुझे क्रोध में आकर या विद्वेष की भावना से नहीं लिखना है। मुझे निष्प्रयोजन नहीं लिखना है। मुझे केवल उत्तेजना फैलाने के लिए नहीं लिखना है।''

आज पेड न्यूज और सनसनीमूलक मीडिया के जिस दौर में हम खड़े हैं, वहाँ गांधी की पत्रकारीय प्रतिबद्धता एक सिरे से अनुपस्थित दिखती है। गांधी की पत्रकारिता पत्रकारों को आत्मशोधन, आत्मालोचन एवं आत्मविश्लेषण के लिए पर्याप्त आधारभूमि प्रदान करती है, पर इस दाय को स्वीकार करने के आत्मविश्वास से आज का मीडिया वंचित है। गांधी में संवाद और संप्रेषण की जो अप्रतिम क्षमता थी, उसे आज सोशल मीडिया के जमाने में भी अर्जित करना असंभव प्रतीत होता है। वस्तुतः गांधी यह सिद्ध करते हैं कि कला, तकनीक या भाषायी चातुर्य से साधी गई पत्रकारिता सीधे दिलों में नहीं उतरती, उसके लिए नैतिकता, निर्भयता और न्यायप्रियता की दरकार होती है। चेलापति राव उचित ही लिखते हैं, ''गांधी जी शायद सबसे महान पत्रकार हुए हैं और उन्होंने जिन साप्ताहिकों को चलाया और संपादित किया, वे संभवतः संसार के सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक हैं।''

यह सच है कि गांधी ने कभी भी दोषारोपण या व्यक्तिगत आलोचना के लिए पत्रकारिता नहीं की, पर उन्हें समकालीन अखबारों ने निशाने पर रखकर उनकी गरिमा को ठेस पहुँचाने का कुत्सित खेल खेला। सांप्रदायिकता तथा झूठ का कारोबार भी किया गया। मजबूर होकर नई

दिल्ली की प्रार्थना सभा में गांधी ने यहाँ तक कहा कि ''यदि वायसराय की जगह मुझे एक दिन के लिए तानाशाह बना दिया जाए तो मैं अखबारों को बंद कर दूँगा, 'हरिजन' को छोड़कर।''

आज गांधी क्रूर वैचारिक आक्रमणों से चौतरफा घिरे हैं, दूसरी वैचारिक पत्रकारिता अंतिम साँस लेने को मजबूर है और वैकल्पिक मीडिया का स्वर बहुत क्षीण है, ऐसे में पता नहीं कब तक गांधी की यह चाहत पूरी होगी -- ''मैं यह चाहूँगा कि हिंदुस्तान में एक अखबार तो ऐसा हो कि जिसमें शुरू से आखिर तक सच ही हो गंदगी न हो और लोग जिसकी इज्जत करें।''

संदर्भ

1. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ. 39
2. इंडियन ओपिनियन, प्रथमांक, 4 जून, 1903
3. इंडियन ओपिनियन, 14 सिंतबर, 1912
4. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, चौथा भाग अध्याय - 13, पृ. 258 - 259
5. लेख : प्रेस का दायित्व, चेतना के स्रोत, डॉ. शंकर दयाल शर्मा. पृ. 48
6. सत्याग्रही, 7 अप्रैल, 1919
7. यंग इंडिया, 2 जुलाई, 1925
8. संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड - 23, पृ. 363
9. यंग इंडिया, 24 सिंतबर, 1919
10. संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड - 24, पृ. 24
11. संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड - 27, पृ. 379 - 80
12. नवजीवन, 14 सिंतबर, 1919
13. नवजीवन (गुजराती), 15 मार्च, 1925
14. संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड - 41, पृ. 77 - 78 , 200 , 220
15. नवजीवन, 6 अप्रैल, 1924
16. संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड - 20, पृ. 539
17. संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड - 53, पृ. 289 - 90
18. हरिजन, 15 फरवरी, 1948
19. लेख : तब मैं गांधी की ओर देखता हूँ, जैनेंद्र कुमार, नवनीत, अक्टूबर, 2018
20. यंग इंडिया, 27 सिंतबर, 1925
21. प्रार्थना सभा, नई दिल्ली, जून 1946
22. सैयद अब्दुल्ला ब्रेल्बी को लिए गए पत्र से, 10 नवंबर, 1945

— सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

महात्मा गांधी की विचारधारा की प्रासंगिकता

डॉ. संतोष खन्ना

महात्मा गांधी ने अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा पाने के लिए जिस नूतन पथ का प्रवर्तन किया था उसे सत्याग्रह आंदोलन की संज्ञा दी जाती है जिसमें अहिंसा के माध्यम से भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी। वैसे सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, चंद्र शेखर आजाद प्रभृति वीर सपूतों का स्वतंत्रता प्राप्ति को 72 वर्ष हो गए हैं और वर्तमान भारत के समाज में हिंसा का पसारा बढ़ रहा है या इस समय होने वाले आंदोलनों का अंत हिंसा में ही होता है और उस हिंसा में राष्ट्रीय संपत्ति को अथाह हानि पहुँचाई जाती है बल्कि प्रायः कई बार लोगों को अपनी जान से भी हाथ धोने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्र के समक्ष यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि आज हिंसक समाज बनाने से बचने के लिए हमें क्या करना चाहिए ऐसे में महात्मा गांधी की विचारधारा का महत्व और कही अधिक बढ़ जाता है। जहाँ जनता ने महात्मा गांधी के दिखाए रास्ते पर चल कर अहिंसात्मक आंदोलन किये और देश को उस क्रूर सत्ता से स्वतंत्रता दिलाई, जिसके काल में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था, वहीं आज की पीढ़ी को शायद इस बात पर विश्वास न हो कि महात्मा गांधी ने अहिंसा के बल पर देश को आजाद कराया थाः क्योंकि आंदोलनो के दौरान लाठीचार्ज हो या गोलियों की बौछार, सत्याग्रही आगे से प्रतिक्रिया स्वरूप उन पर वार नहीं करते थे। तत्कालीन प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईंस्टीन ने महात्मा गांधी के बारे में कहा था कि आने वाली पीढ़ियां इस बात पर विश्वास नहीं करेगीं कि हाड मांस का इस तरह का कोई विराट व्यक्तित्व वाला व्यक्ति कभी इस धरा पर पैदा हुआ था।

भारत और विश्व में कुछ व्यक्ति अभी हो भी सकते हैं जिन्होने महात्मा गांधी को अपनी आंखों से देखा होगा। वह अपनी जीवन संध्या में होने पर भी इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि वह उस युग में पैदा हुए जब गांधी जी भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के अपने चरम लक्ष्य के लिये क्रियाशील थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के छः माह के पश्चात् ही एक सिरफिरे इनसान की गोलियों के शिकार हो उन्होंने अपनी अंतिम सांस ली। महात्मा गांधी उस समय लगभग 80 वर्ष के होने वाले थेः मृत्यु तो शाश्वत सत्य हैः गांधी भी अगले तीन, चार या पाँच वर्ष में प्राकृतिक मृत्यु का ग्रास बन सकते थे किंतु विडंबना यह रही कि अहिंसा के उस अवतार को हिंसा के हथियार से मौत की नींद सुला कर उन्हें और अधिक अमर बना दिया गया। हिंसा के उस कुकृत्य से महात्मा गांधी की सत्य, अहिंसा, समन्वय और सद्कर्मों की ख्याति समूचे विश्व में और अधिक शिद्दत से फैली कि विश्व में अनेक नायकों ने उनके दिखाये रास्ते पर चल कर अपने लोगों को पराधीनता के चंगुल से मुक्ति दिलाई और आगे भी ऐसे अनेक नायक होते रहेंगे।

वर्तमान समय में युद्ध और आतंक पीड़ित तथा तीसरे विश्व युद्ध की आशंका से त्रस्त मानवता को अगर कोई त्राण दिला सकता है तो उसका रास्ता महात्मा गांधी के दिखाये रास्ते से ही हो कर जाता है। देश आज विकास की बुलंदियों को छूने का प्रयास कर रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि देश विश्व में एक महाशक्ति बनने के कगार पर है परंतु यहाँ अभी भी गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, बेरोजगारी और अन्य समस्याएँ

मुहबाए खड़ी हैं। हम केवल पश्चिमी चकाचौंध की रोशनी में इनसे स्वाभाविक रूप से निजात नहीं पा सकेंगे। उपभोक्तावाद, बाजारवाद और उदारवाद की आंधी, जमीन से हमारे पैर उखाड़ने के लिए उद्यमशील हैं। इसके लिए हमें संयम, समन्वय, समरसता और सर्वधर्म समभाव को पुनः अपनाना होगा जो गांधी जी का स्वप्न था।

भारत की जनता गांधी जी के उपकार से कभी ऊऋण नहीं हो सकती। महात्मा गांधी का भारत के बारे में क्या स्वप्न था? उनके विचार समुद्र में गोता लगा कर जो हीरे हमारे हाथ में आते हैं, उनका अनुशीलन करके देखिए। उन्होंने 10 सितंबर, 1931 के यंग इंडिया में लिखा थाः

"मैं स्वतंत्र भारत के लिए एक ऐसा संविधान बनाने का प्रयास करूँगा जिसमें भारत के लोगों को अधिकाधिक स्वतंत्रता मिले, वह एक ऐसा संविधान चाहेंगे जिसमें देश के सबसे गरीब व्यक्ति को भी यह महसूस हो कि भारत उसका अपना देश है जिसमें उसकी आवाज सुनी जाएगी। तब यहाँ न कोई ऊँचा होगा न कोई नीचा होगा। यहाँ सभी जातियाँ मिल-जुल कर रहेंगी। देश में छुआछूत का नामोनिशान नहीं होगा और न ही मद्य और न ही नशीली दवाओं का सेवन होगा। महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होंगे। हम सभी देशों से शांतिपूर्ण संबंध बना कर रखेंगे। न किसी का शोषण करेंगे और न अपना शोषण होने देंगे। अतः हमें विशाल सेना रखने की आवश्यकता नहीं होगी। सभी विदेशी और स्वदेशी हितों का आदर सम्मान किया जाएगा, ऐसा होगा मेरे सपनों का भारत।"

महात्मा गांधी जी की भारत के संविधान निर्माण में कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं थी परंतु भारत के संविधान के हर पृष्ठ पर उनके चिंतन की छाप देखी जा सकती है। संविधान निर्माण के समय वह सुदूर देश में स्वाधीनता मिलने से पहले देश के विभाजन की आशंका से भड़के सांप्रदायिक दंगों को शांत करने के लिए सतत क्रियाशील थे। इस संबंध में श्री नेहरू ने जब 'एक अन्य व्यक्ति आज यहाँ अनुपस्थित हैं परंतु वह महान नेता आज हमारे मन मस्तिष्क में विद्यमान है हमारे राष्ट्र पिता महात्मा गांधी, जो इस संविधान सभा के कर्णधार हैं आज वह यहाँ उपस्थित नहीं हैं क्योंकि वह देश के एक सुदूर कोने में अपने विचारों को क्रियान्वित करने के लिए सतत क्रियाशील हैं। मुझे इस बात में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि उनकी आत्मा और चिंतन हमारे साथ है और वे भारत के संविधन के निर्माण के लिए हमें आशीर्वाद दे रहे हैं।

भारत के संविधान निर्माण के बारे में यहाँ कई बातें कही जा सकती हैं किंतु यहाँ केवल यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि संविधान के तीसरे अध्याय में जिन मूलभूत अधिकारों को सम्मिलित किया गया है उनमें अनुच्छेद 14 और 15 में देश के सभी नागरिकों को समता का अधिकार दिया गया है चाहे वह किसी जाति और धर्म का क्यों न हो। अनुच्छेद 17 में सदियों से चली आ रही छूआछूत का उन्मूलन कर दिया गया है। ऐसा करना जरूरी भी था क्योंकि महात्मा गांधी जीवन पर्यंत अछूतोद्वार के लिए संघर्ष करते रहे और संविधान में उसके संबंध में अनेक प्रकार के प्रावधान कर यह सुनिश्चित किया गया कि उनके विरुद्ध अब कोई भेदभाव न बरता जाए। छुआछूत संबंधी संवैधानिक प्रावधान को कानूनी जामा पहनाने के लिए वर्ष 1955 में ही भारत की संसद ने नागरिक अधिकार संरक्षण कानून बनाया जिसमें बाद में संशोधन कर उसे और अधिक कठोर बनाया गया है और यह आशा की जानी चाहिए कि अब तक हमारे समाज से छुआछूत का कलंक समाप्त हो गया होगा और अगर कोई व्यक्ति इस कानून का उल्लंघन करता है तो उसे कड़े से कड़ा दंड दिया जाएगा।

यद्यपि हाल के सर्वेक्षण से पता चला है कि अभी भी लगभग 35 प्रतिशत लोग छुआछूत करते हैं, यह न केवल संविधान और कानून के विरुद्ध है बल्कि यह महात्मा गांधी के प्रति कृतघ्नता है, मानवता के प्रति अपराध है, ईश्वर के प्रति अपराध है, ईश्वर और पाप है। भारत में हर व्यक्ति तथा कण-कण में ईश्वर की सत्ता का अस्तित्व माना जाता है फिर उसके बनाए मनुष्यों के प्रति छुआछूत की प्रथा को बनाए रखना वस्तुतः घोर आपत्तिजनक है, कानून को कठोरता से लागू करना बहुत जरूरी है। संसद ने इस संबंध में अभी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कानून में संशोधन को पारित किया है। आशा है इससे अवश्य स्थिति सुधरेगी और देश से छुआछूत जैसी बुराई हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगी।

संविधान में सम्मिलित किए गए राज्य के नीति निदेशक तत्वों के प्रत्येक प्रावधान में गांधी विचारधारा को ही साकार किया गया है। इसमें मुख्तया यह कहा

गया है कि सभी को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय मिले, देश में अर्थव्यवस्था ऐसी बनाई जाए कि देश के संसाधन कुछ हाथों में केंद्रित न हो पाए और सभी के लिए आजीविका, शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं की समुचित व्यवस्था की जाए। ग्राम स्वराज के लिए पंचायती राज संस्थानों को सुदृढ़ किया जाए, कृषि और पशुपालन को बढ़ावा दिया जाए तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका की पृथकता सुनिश्चित की जाए साथ ही मद्यनिषेध भी लागू किया जाए। इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि भारत में उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सक्रियता से कदम उठाए जाते रहे हैं किंतु अभी भी गांधी के स्वप्न के अनुसार भारत निर्माण के लिए आगे भी पथ प्रशस्थ करने की आवश्यकता है।

महात्मा गांधी ने 1908-1909 ई. में 'हिंद स्वराज' में शहरी जीवन, संसदीय लोकतंत्र, भारत द्वारा अनुकरणीय जीवन शैली और शासन पद्धति पर प्रकाश डालते हुए लिखा था कि पश्चिमी सभ्यता मानव को गलत रास्ते पर ले जा सकती है और भारतीय संस्कृति मानव के उत्थान का लक्ष्य दिला सकती है किंतु आज भारत पश्चिमी सभ्यता का ही अनुकरण कर अपने लिए नई-नई समस्याएँ पैदा कर रहा है। भारत में सरकारी स्तर पर देश का विकास गांधी के द्वारा दिखाए गए आदर्शों के आधार पर उतना नहीं किया गया जितने पश्चिमी ढांचे से प्रभावित होकर नीतियाँ और योजनाएँ चलाई गई।

विश्व में कई नायक गांधी जी के दिखाए अहिंसा के रास्तें पर चलकर अपने देश और जनता के लिए अनेक उपलब्धियां अपने नाम अर्जित कर गए। उदाहरणार्थ, अमरीका में अश्वेतों के अधिकारों के लिए संघर्षशील रहे मार्टिन लूथर किंग का उल्लेख किया जा सकता है और सत्य, अहिंसा का पथ अपनाने के लिए ही शायद उनकी हत्या कर दी गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा की भांति सत्य पथ का अन्वेषी होने की कीमत अपने प्राणों से चुकानी पड़ती है। दक्षिण अफ्रीका के गांधी कहे जाने वाले नेल्सन मंडेला को अपने देश की स्वतंत्रता के लिए लगातार 28 वर्ष जेल में रहना पड़ा था और अन्ततः वह भी अपने देश को उपनिवेशवादी शक्तियों के चंगुल से मुक्त करा पाए।

भारत में भी ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने गांधी के आदर्शों से प्रेरणा ली और देश को आगे बढ़ाने में अपने अपने क्षेत्र में सफलता की कई बुलंदियों को छुआ है। इस आलेख की सीमाओं में उन सभी महान व्यक्तियों के बारे में नहीं बताया जा सकता, यहाँ मैं केवल दो व्यक्तियों का ही उल्लेख करूंगी जो अपने जीवन में गांधीवादी कहलाए क्योंकि वह महात्मा गांधी के आदर्शो पर ही चल कर अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके।

भारत में आचार्य या संत विनोबा भावे को कौन नहीं जानता। उन्हें महात्मा गांधी का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कहा जाता है। वह कई क्षेत्रों में सक्रिय रहे परंतु वह भूदान सत्याग्रह के लिए विख्यात हैं। स्वातंत्रोत्तर काल में गांधीवादी माने जाने वाले अनेक महानुभाव सत्ता की चकाचौंधी प्रभाव में आते ही गांधीवादी स्वराज्य की परिकल्पना को भूल गए। तभी विनोबा भावे ने भूदान सत्याग्रह का आह्वान किया।

भूदान आंदोलन अहिंसा के माध्यम से परिवर्तन लाने के उद्देश्य से चलाया गया। यह एक ऐसा आंदोलन था जिसके माध्यम से गरीब भूमिहर किसानो को खेती योग्य भूमि उपलब्ध कराना था। विनोबा भावे के नेतृत्व में चलाए गए इस भूदान आंदोलन के अंतर्गत थोड़े से समय में ही बिहार में 2,86,420 भूदान दानियों ने 22,32,475 एकड़ भूमि विनोबा जी को दान में दे दी ताकि उन्हें भूमिहरों को दिया जा सके। भूमि समस्या के समाधान के लिए यह एक करिश्माई उपलब्धि थी। इस बारे में जय प्रकाश नारायण ने लिखा था;

''विनोबा भावे ने बिहार को भूदान आंदोलन के लिए अपनी कर्मभूमि और उदाहरण बनाने का निर्णय लिया। अन्य राज्यों से कार्यकर्ताओं को इस आंदोलन में लगाया गया। इसके लिए बिहार में कई शाखाएँ बन गई। संपत्ति दान की एक शाखा का पटना में उद्घाटन किया गया, जीवन दान की शाखा बोधगया में खोली गई। बिहार में अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन की दो बैठकें की गई। बिहार के बोधगया में महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था, इसी स्थान को व्यापक आधार पर उसे इस आंदोलन की कर्मभूमि बनाया गया इसमें कांग्रेस और प्रजा सामाजवादी दल और राज्य के कई मंत्रालयों के लोग विनोबा के नेतृत्व में सक्रिय हो गए। वहाँ कई राजा महाराजाओं ने अपनी भूमि दान कर दी। जब विनोबा भावे ने अपना मिशन पूरा होने के बाद 1954 में बिहार छोड़ा तो तब तक 24 लाख के लगभग भूमि दान में आ चुकी थी। यह कार्य हिंसक साधनों से नही, अपितु आत्मबल, प्रेम और विवेक से पूरा किया

गया था।'' बेशक इस आंदोलन का एक दूसरा पक्ष यह है कि शायद यह सुनिश्चित नहीं किया जा सका कि यह भूमि क्या लक्षित वर्गों तक पहुँच सकी या नहीं।

महात्मा गांधी का जोर शासन में विकेंद्रीकरण का था किंतु भारत में एक सशक्त केंद्र सरकार, कारखाने-उद्योगों और केंद्रीय योजनाओं का ही बोलबाला रहा है जिसका परिणाम यह हैं कि भारत में बेरोजगारी, गरीबी जैसी समस्याओं का समाधान नहीं हो सका है। एक कारण भारत की बढ़ती जनसंख्या है। गांधी जी जीवन में संयम और अनुशासन को बहुत महत्व देते हैं किंतु वैश्विक उदारीकरण, बाजारीकरण और उपभोक्तावाद के कारण समाज में आजादी के नाम पर संयम और अनुशासन को तो मानों देश निकाला दे दिया गया है जिसके कारण विकास के बावजूद अव्यवस्था, अशांति और भीड़तंत्र का बोलबाला हो रहा है।

वर्ष 2014 में जब श्री मोदी प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने देश में स्वच्छता अभियान प्रारंभ किया जिसके अंतर्गत देश को खुले में शौच से मुक्त बनाने के लिए देश में शौचालय निर्माण का बीड़ा भी उठाया गया। वास्तव में यह काम अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस दिशा में देश में एक और गांधीवादी व्यक्ति डॉ. बिंदेश्वरी पाठक सुलभ शौचालय मिशन के माध्यम से देश में सुलभ शौचालयों की संस्कृति फैलाते रहें हैं। गैर-सरकारी स्तर पर चलाया गया यह एक अनोखा और अद्वितीय आंदोलन है। यद्यपि जीवन यात्रा के आरंभ में डॉ. बिंदेश्वरी पाठक का सपना समाजशास्त्री बनने का था परंतु संयोग की बात देखिए कि बिहार में गांधी जयंती मनाने के लिए बनी एक समिति ने उन्हें अछूतोद्धार का कार्य सौंपा। इसमें अपने हाथों से मनुष्य का मैला साफ करने वाले अछूतों का उद्धार कर उन्हें जीवन की मुख्यधारा में लाना था। महात्मा गांधी के स्वप्न को पूरा करने के लिए उन्हें उस अवधि के दौरान एक घटना ने उनकी जीवनधारा को ही बदल दिया। उन्हें बिहार के चंपारण में बेट्टिया में एक हरिजन बस्ती में कार्य करना था। एक दिन वही पर लाल कमीज पहने एक लड़के पर एक बैल ने हमला कर दिया। लोग उसे बचाने के लिए दौड़ पड़े, तभी कोई चिल्लाया, ''अरे, वह लड़का अछूत है।'' बचाने वालों के हाथ वही रुक गए और बैल ने उसे मार डाला। इस घटना ने उसकी आत्मा को अंदर तक हिला कर रख दिया तब उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह महात्मा गांधी के स्वप्न को पूरा करने के लिए अछूतों के अधिकारों के लिए संघर्ष करेंगे।

उन्होंने अछूतों के अधिकारों पर कार्य करते हुए सर्वप्रथम सुलभ शौचालय की खोज की जो घरों में बनाए जा सकते थें ताकि लोगों को, विशेष रूप से महिलाओं को खुले में शौच न जाना पड़े तथा साथ ही अछूतों को अपने हाथ से मैला साफ न करना पड़े और न ही उन्हें अपने सिरों पर मैला ढोना पड़े जो वह पिछले 5000 वर्षों करते आ रहे थे और उन्हें समाज के निम्नतम पायदान पर धकेल दिया गया था और तब से ही वह छुआछूत और अन्य अनेक प्रकार के शोषण के शिकार होते आ रहे थे। डॉ. पाठक के आंदोलन के परिणामस्वरूप समाज में कई तरह के बदलाव आए। जो लड़कियाँ शौचालय न होने के कारण स्कूलों में पढ़ने के लिए नहीं जा पाती थीं, स्कूलों में सुलभ शौचालय बनने के कारण वह स्कूल जाने लगी। साथ ही हाथ से मैला साफ करने की प्रथा पर भी अंकुश लग गया। डॉ. बिंदेश्वरी पाठक ने 1974 में ऐसे सार्वजनिक सुलभ शौचालय बनाने का कार्य आरंभ किया जिसमें भुगतान कर लोग इस सुविधा का प्रयोग कर सकते थे। सुलभ शौचालय परिसर देश भर में बने हैं और बनाए जा रहे हैं। 1977 में डॉ. पाठक ने मानव अपशिष्ट से बायोगैस बनाना आरंभ किया जिससे न केवल लैंप जलाये जा सकते थे बल्कि खाना आदि भी पकाया जा सकता है। शौचालयों में प्रयुक्त पानी को भी साफ कर उसे खाद के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। सुलभ शौचालय क्रांति से करोड़ों लोगों के जीवन में परिवर्तन आया है और अछूत अब गरिमा का जीवन जीने लगे हैं। इस क्रांति का सबसे बड़ा लाभ यह भी हुआ है कि प्रधान मंत्री मोदी द्वारा आरंभ किए गए स्वच्छता अभियान के अंतर्गत शौचालय बनाने मे इसी सुलभ टेक्नोलॉजी का प्रयोग किया जा रहा है।

डॉ. पाठक के नेतृत्व में बनाई गई तकनीकों से बने शौचालयों से खुले में शौच की प्रथा का उन्मूलन किया जा रहा है, जिससे न केवल महात्मा गांधी के अछूतोद्धार और स्वच्छता संबंधी स्वप्न पूरा हो रहा है हरिजनों द्वारा हाथों से मैला साफ करने और सिर पर मैला ढोने की प्रथा समाप्त हो गई है और इन अछूतों को वैकल्पिक रोजगार देने के लिए तरह तरह के हुनरों में प्रशिक्षण देने के लिए भी केंद्र बनाए गए हैं। महिलाओं को भी खाद्य प्रसंस्करण, सिलाई-कढ़ाई, पार्लर आदि के कार्य में प्रशिक्षण दिया जाता है। यही नहीं, देश के उच्चतम न्यायालय के निर्देश पर डॉ. पाठक के नेतृत्व

में वृंदावन में रहने वाली विधवा महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कई कार्य आरंभ किए गए ताकि वह एक गरिमापूर्ण जीवन जी सके और उनका शोषण न हो। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि डॉ. पाठक द्वारा आविष्कृत सुलभ टेक्नोलॉजी को चीन, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान अफगानिस्तान, वियतनाम, दक्षिण अफ्रीका और यहाँ तक कि अमरीकी गांवों में भी अपनाया जा रहा है। सबसे बड़ी उल्लेखनीय बात यह कि डॉ. बिंदेश्वरी पाठक ने यह सब कार्य गांधीवादी विचारधारा और आदर्शों को अपना कर किया हैं।

भारत में अनेक लोग गांधी जी के चिंतन से प्रेरणा ले समाज में जनकल्याण के लिए अनेक प्रकार की गतिविधियों का संचालन कर रहे है। वस्तुत: गांधी जी की विचारधारा कभी भी पुरानी पड़ती, बल्कि कोई न कोई गतिशील और स्वप्न द्रष्टा गांधीवादी उस विचारधारा में नवोन्मेष की चाशनी डाल उससे आज की संतप्त और संत्रस्त मानवता की मुक्ति और त्राण के लिए सक्रिय हो जाता है तो जिस समस्या को भी वह हाथ में लेता है, उसमें करिश्माई उपलब्धियाँ होने लगती हैं। यदि आज के युवा भारत के युवाओं में महात्मा गांधी के आदर्शों और विचारधारा के प्रति चेतना का संचार किया जाए तो वह अपनी अथाह ऊर्जा को अपनी कल्पनाशीलता, कर्त्तव्यशीलता और परिश्रम के दायरे में लाकर देश को बहुत आगे बढ़ा सकते हैं और महात्मा गांधी के स्वप्नों को साकार और मूर्तिमान कर सकते हैं।

महात्मा गांधी के देश और विश्व में शांति स्थापना के संबंध में अपनी एक विशिष्ट विचारधारा है जिसका वर्तमान युग में अनुसरण करने की महती आवश्यकता है। यद्यपि विश्व में विकास और प्रगति के नये प्रतिमान स्थापित किये जा चुके हैं किंतु इस सत्य से भी विमुख नहीं हुआ जा सकता कि विश्व आज भी एक अभूतपूर्व संकट से गुजर रहा है चाहे वह विश्व में स्थान-स्थान पर गरीबी के टापू हों या जाति-पाति और रंगभेद नीति के दवाब-तनाव हों या फिर युद्ध के उन्माद से उत्पन भयावह स्थितियाँ, जिसमें प्राय: रासायनिक हथियारों के प्रयोग से न केवल मानवीय विनाश की इबारत लिखी जा रही है बल्कि पृथ्वी पर पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया जा रहा है। अनेक देश समय पर परमाणु हथियारों का धरती के नीचे अथवा समुद्र के सीने पर परीक्षण करते रहते हैं। महात्मा गांधी विश्व की समस्याओं के समाधान के लिए हमेशा अहिंसात्मक तरीके अपनाने की वकालत करते थे। वह युद्ध के स्थान पर सत्याग्रह का आदर्श अपनाने की बात करते थे जो सत्य और अहिंसा से हो कर जाता है। विश्व शांति के लिए डॉ. एस. राधाकृष्णन का भी कहना था कि "मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन रोग, दुर्भिक्ष, जनसंख्या विस्फोट नहीं है अपितु परमाणु हथियार हैं जो युद्ध में इस्तेमाल होने पर समूची सभ्यता और मानव जाति का विनाश कर देंगे" आर्नल्ड टोयनबी ने भी लिखा था कि इस परमाणु युग में मानव जाति के विनाश से बचने का उपाय अहिंसा के दर्शन में ही निहित है।

कुछ वर्षों से नॉर्थ कोरिया अंधाधुंध नाभिकीय मिसाइल आदि का परीक्षण करता जा रहा था और अमरीका को धमका रहा था। बाद में नॉर्थ कोरिया तानाशाह और अमरीका के राष्ट्रपति ट्रंप के बीच खौफनाक ढंग की नोकझोंक से तीसरे विश्व युद्ध का वास्तविक खतरा पैदा हो गया था। उस समय हर रोज समूचा विश्व सांस रोके इस आशंका में जी रहा था कि जाने कब युद्ध का वास्तविक खतरा पैदा हो जाएँ। वैसे भी विश्व अभी उस त्रासद इतिहास को नहीं भूला है जब अमरीका ने 1946 में जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर बम बरसाए थे जिसमें लाखों लोग मृत्यु के गाल में समा गए थे और अभी भी कई पीढ़ियों से लोग उसके दुष्परिणामों को भोगने के लिए अभिशप्त हैं। इराक की लंबी लड़ाई के बाद सीरिया का युद्ध और नरसंहार अभी रुका नहीं है। लाखों सीरियाई शरणार्थी अभी भी दर-दर की ठोकरें खाने को अभिशप्त हैं।

विश्व भर में आतंकवाद की समस्या ने लोगों के जीवन को अनिश्चितता की आग में झोंक रखा है, कब किसका जीवन कहाँ पर किसी आतंकवादी धमाके की भेंट चढ़ जाए, कोई नहीं जानता। आज की आतंकवाद की समस्या को लेकर एक नया डर यह पैदा हो गया है कि आतंकवादी अपने प्रहारों में नए से नए मारक संसाधनों को शामिल कर रहे हैं और वह परमाणु बम हासिल करने की फिराक में है। इसलिए आज का मानव एक अभूतपूर्व दौर से गुजर रहा है। ऐसी स्थिति में उसे एटम और अहिंसा में से एक को चुनना होगा। अगर मनुष्य को स्वस्थ और सार्थक जीवन जीना है तो उसे अनिवार्यतया महात्मा गांधी के अहिंसा के रास्ते को चुनना होगा। महात्मा गांधी का यह महत्वपूर्ण संदेश रहा है कि घृणा के स्थान पर प्यार, युद्ध के स्थान पर शांति,

संघर्ष के स्थान पर सहयोग तथा बल के स्थान पर सद्भावना को अपना कर ही विश्व शांति सुनिश्चित की जा सकती है। बहुत पहले भारत में पूर्व शिक्षा मंत्री श्री एम. सी. छागला ने महात्मा गांधी के बारे में प्रकाशित अपने एक आलेख में लिखा था: मुझे इस बारे में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि महात्मा गांधी न केवल अपने जानने वालों और अपने साथ काम करने वालों के दिलों पर अमिट छाप छोड़ेंगे, अपितु भावी पीढ़ियाँ उन के नाम को इतिहास के पन्नों पर अमर होता हुआ देखेंगी। उनके महान आदर्शों से प्रेरित हो कर लोग ऐसे सद्कार्यों को करेंगें जिनसे मानव का जीवन सुधरेगा और विश्व शांति तथा भाईचारे की भावना को बल मिलेगा।

महात्मा गांधी की विचारधारा और आदर्श वस्तुत: भारतीय प्राचीन संस्कृति का ही पुनर्जीवित रुप है और भारत ही नहीं बल्कि समूचे विश्व को इन आदर्शों को अपनाना होगा। देश का हर तरह से भौतिक विकास हो वह बहुत जरूरी है किंतु देश को आगे बढाने के लिए उतना ही पर्याप्त नहीं हैं। हमें अपना मानसिक और आध्यात्मिक विकास भी करना होगा। इसके लिए महात्मा गांधी के विचारों विशेष रूप से संयम और अनुशासन को जीवन में उतारना होगा।

- बी. एच - 48, पूर्वी शालीमार बाग, दिल्ली - 110088

❑❑❑

गांधी जी के स्वराज्य चिंतन की वैश्विक परिकल्पना

डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति

प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन जीने का अधिकार है। उसे बिना किसी के अधिकारों का हनन किए उसकी अपनी सोच के अनुरूप जीवन जीना चाहिए। जीवन जीने का यह अधिकार उसे प्राप्त प्रकृति प्रदत्त अधिकारों में से एक है। मनुष्य को प्रकृति, परिस्थिति के अनुरूप अपने आप को कैसे जीना है, कैसे विकास करना है, और कैसे लोक कल्याण की भावना के अनुरूप कर्म करना है इसके लिए उसे चिंतन की भी स्वतंत्रता है। यह सच है कि मनुष्य को जीवन जीने के अधिकार से स्वाभाविक चिंतन करने की स्वतंत्रता अधिक है। यद्यपि जीवन जीने के अधिकार में चिंतन का अधिकार भी समाहित है। फिर भी कोई व्यक्ति क्या चिंतन कर रहा है यह कोई दूसरा भला कैसे जान सकता! लेकिन, जब कोई व्यक्ति अपने चिंतन के अनुरूप जीने लगता है, कर्म करने लगता है तब उसके चिंतन करने का तरीका धीरे-धीरे उद्घाटित होने लगता है।

महात्मा गांधी (2 अक्तूबर 1869- 30 जनवरी, 1948 ई.) का स्वराज्य चिंतन मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति पर आधारित है। उनके अनुसार मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ, तर्कवान एवं बुद्धिजीवी प्राणी है। मनुष्य की तर्क क्षमता उसे प्रकृति प्रदत्त ऐसे उपलब्ध विकल्पों में से बेहतर विकल्प का चुनाव करने के लिए प्रेरित करती है जो उसके और तत्कालीन समाज तथा राज्य के लिए बेहतर हों। वे इसे एक ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जो मनुष्य में स्व-शासन की क्षमता (Ability of self-goverment) विकसित कर सके और उसका जीवन इसी स्व-शासन की क्षमता पर आधारित हो। किसी व्यक्ति का यह स्व-शासन (self-goverment) उसे अनुशासित रहने को कहता।

गांधी जी का स्वराज्य संबंधी चिंतन विस्तृत व वैश्विक है। गांधी जी के स्वराज्य से अभिप्राय ब्रिटिश शासन अथवा ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत से खदेड़ना मात्र स्वराज्य का उद्देश्य नहीं था। अपितु वे हर उस विदेशी अथवा वाह्य शासन से मानव समाज की स्वतंत्रता चाहते थे जो किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र पर बल अथवा छलपूर्वक शासन करना चाह रहा हो या शासन करता हो। इसलिए गांधी जी का स्वराज्य संबंधी चिंतन केवल भू-सीमा, जाति, संप्रदाय अथवा वर्ग विशेष तक सीमित नहीं था बल्कि उनके स्वराज्य का विस्तार स्व = स्वयं (मन), और राज्य= सुचारू राजव्यवस्था तक विस्तारित है। अर्थात् स्वयं से लेकर राज्य व्यवस्था के अनुरूप संयम, सिद्धांतों का अनुपालन, संचालन भी शामिल है।

विश्व कल्याण का भाव ऐसा नहीं कि अनायास ही गांधी जी के स्वराज्य चिंतन में उद्भूत हो गया हो, बल्कि इसके बीज भारत में अनादिकाल से चली आ रही परंपरा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।' अर्थात् सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ और निरोगी हों, सभी का सदैव कल्याण हो, तथा किसी के भाग्य में कोई दुख न हो, पर आधारित है। वैश्विक दृष्टि से उनका यह चिंतन प्रकृति प्रदत्त अधिकारों में से है यह प्रकृति किसी एक व्यक्ति की केवल उनकी अपनी नहीं, सबकी है, सबके लिए है, की भावना का संचार करती है। उनके अनुसार व्यक्ति के स्तर पर स्वराज्य का अर्थ यह था कि व्यक्ति

का अपने ऊपर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। इस तरह ये आत्मसंयम का पर्याय था जो व्यक्ति को सच्चरित्र और महान बनाता है और उसे समाज की उन्नति एवं कल्याण में महत्वपूर्ण योग देने का सामर्थ्य प्रदान करता है।"[1]

गांधी जी ने जो स्वराज्य संबंधी चिंतन किया उसमें एक ऐसे वैश्विक समाज की कल्पना है जिसमें ग़रीब, वंचित एवं शोषित वर्ग का स्वराज हो, जिसके मूल में वर्गविहीन, शोषण एवं भेद-भावमुक्त समाज बीज रूप में विद्यमान है। वे एक ऐसा समाज चाहते हैं जहाँ सभी वर्गों में समानता, सहिष्णुता एवं सद्भावना के भाव अखंडित रूप से प्रज्ज्वलित होते रहें जो आपसी टकराव एवं वैमनस्य रहित ऐसे मनुष्यों का सुदृढ़ समाज हो जिनके मन, वाणी एवं कर्म में तारतम्यता हो और जो निरंतर सत्य और अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करते हुए शांति, सौहार्द्र, आपसी भाईचारे के आधार पर स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता हो।

इसलिए वे अपने स्वराज्य चिंतन में एक ऐसे स्वाधीन भारत की कल्पना करते हैं जिसमें आग्रहपूर्वक स्वराज्य प्राप्ति है; दुराग्रह का कोई स्थान नहीं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में भी स्वराज्य इस तरह स्पष्ट किया है-

(1) अपने मन का राज्य स्व-राज्य है।

(2) उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल या करुणा बल है।

(3) उस बल को आजमाने के लिए स्वदेशी को पूरी तरह अपनाने की ज़रूरत है।

(4) हम जो करना चाहते हैं वह अंग्रेज़ों के लिए (हमारे मन में) द्वेष है इसलिए या उन्हें सजा देने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए करें कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। मतलब यह कि अंग्रेज़ अगर नमक-महसूल रद्द कर दें, लिया हुआ धन वापस कर दें, सब हिंदुस्तानियों को बड़े-बड़े ओहदे दे दें और अंग्रेज़ी लश्कर हटा लें, तो हम उनकी मीलों का कपड़ा पहनेंगे, या अंग्रेज़ी भाषा काम में लाएँगे, या उनकी हुनर-कला का उपयोग करेंगे, वो बात नहीं है। हमें यह समझना चाहिये कि वह सब दरअसल नहीं करने जैसा है, इसलिए हम उसे नहीं करेंगे।

मैंने जो कुछ कहा है वह अंग्रेज़ो के लिए द्वेष होने के कारण नहीं बल्कि उनकी सभ्यता के लिए द्वेष होने के कारण कहे हैं"[2] इसलिए यह कि गांधी जी का स्वराज्य चिंतन केवल शासन व राज्य व्यवस्था को हासिल करने का उद्देश्य लेकर नहीं चलता बल्कि उनका स्वराज्य चिंतन मनुष्य के मन में परिवर्तन लाकर भाई-चारा स्थापित करने को कहता है। और इसी के आधार पर अंग्रेज़ों के मन को शुद्ध किया जा सकता है।

स्वभावत: मनुष्य का आत्मबल उसके सत्मार्ग और सत्कर्म से बढ़ता है। यही नहीं उसके आत्मविश्वास की वृद्धि के लिए भी सत्मार्ग और सत्कर्म के अनुसंगिक मार्ग पर अहिंसात्मक संघर्ष का योगदान महत्वपूर्ण है। इसलिए गांधी जी के स्वराज्य चिंतन का उद्गम बिंदु 'स्व' की परिशुद्धि और समाजोमुखी चिंतन स्वराज्य के मूल में प्रदिप्त है। प्रत्येक मनुष्य में यह सोच विकसित करना कि 'स्व' का मतलब आत्मकेंद्रित चिंतन न होकर समाज और प्रत्येक प्राणी के कल्याण के लिए चिंतन है। मनुष्य का समाज के प्रति सकेंद्रण, सद्भावना और सदाचार एवं समाजोत्थान के लिए निश्छल चरित्र सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक है। यह तभी संभव है जब मनुष्य स्व को पहचाने व परिशुद्ध मन से समष्टि हित चिंतन के सर्वे भवंतु सुखिन: भाव से कार्य करे। मनुष्य के अंदर का यह भाव स्वराज्य के मार्ग का पहला मील का पत्थर है।

उनका यह चिंतन मनुष्य व संस्कृति एवं समाज व विकास के साथ-साथ मनुष्य और विकास का प्रकृति के साथ शक्ति संतुलन है। जो सभ्यता के विकास को अधोगामी न ले जाकर उर्द्धगामी ले जा सकेगा। आज के तीव्रतम तकनीकी विकास के आधारस्थल पर खड़े होकर हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस सभ्यता का जितनी गुणात्मक गति से विकास हुआ है उनका पतन भी उसी गति से संभव है, स्वाभाविक गति से विकसित सभ्यता आज भी जीवित है; भारत और मिश्र इसके उदाहरण हैं।

इसलिए गांधी जी भारतीय स्वाधीनता के लिए उन बिंदुओं और विकल्पों की बात करते हैं जो प्राचीन भारतीय समाज को सदियों तक व्यवस्थित रखे हुए हैं, और उन बिंदुओं को भी जिन्होंने भरत के इस सुदृढ़ देश को आंशिक रूप से खंडित किया। उनके अनुसार खादी का दैनिक जीवन में उपयोग, हिंदू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता, सत्य और अंहिसा तथा आपसी सद्भाव स्वराज्य प्राप्ति के आधार स्तंभ हैं और ये सभी अल्पकालीन नहीं। अपितु किसी भी देश के स्वराज्य के लिए आधार स्तंभ रहे हैं। हिंसक प्रवृत्ति व हिंसक साधनों का उपयोग करते हुए विस्फोट, विध्वंसक तोड़-फोड़, अवज्ञा अथवा विरोधपूर्वक कार्यों से प्राप्त

स्वराज्य स्थायी नहीं होगा, उसकी बुनियाद इतनी दृढ़ नहीं होगी कि वो किसी राष्ट्र की स्वाधीनता स्थायी रखे और भविष्य निर्धारित कर सके। जब तक कि शासन वर्ग के जेहन में यह परिवर्तन न आ जाए कि हमारा अधिकार व कर्तव्य क्या है और इसकी सीमा क्या है।

गांधी द्वारा कल्पित स्वराज्य मूलत: गरीब-अमीर, छोटा-बडा, ऊँच-नीच का भेदभाव रहित समाज जिसे जीवन-यापन हेतु सभी को आवश्यक मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध हों। गांधी की इस कल्पना को उनकी निम्न पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं- "स्वराज्य में राजा से लेकर प्रजा तक एक भी अंग अविकसित रहे, ऐसा नहीं होना चाहिए। उनमें कोई किसी का शत्रु ना हो सब अपना-अपना योगदान करें, कोई निरक्षर न रहे, उत्तरोत्तर सबके ज्ञान की वृद्धि होती जाए, सारी प्रजा में कम से कम बीमारियाँ हों, कोई भी दरिद्र न हो, परिश्रम करने वालों को बराबर काम मिलता रहे, उसमें जुआखोरी, मद्यपान और व्याभिचार न हो, वर्ग-विग्रह न हो, धनिक अपने धन का विवेकपूर्वक उपयोग करें, भोग विलास की वृद्धि करने अथवा अतिशय संचय करने में नहीं। ऐसा नहीं होना चाहिए कि मुट्टी भर धनिक पच्चीकारी के महलों में रहें और हजारों अथवा लाखों लोग हवा और प्रकाशविहीन कोठरियों में रहें।"[3]

इसलिए उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति के क्या कारगर उपाय हो सकते हैं जिससे कि समाज सुदृढ़ हो जाए और आत्मनिर्भर बन सके। इसके लिए उन्होंने निम्न बिंदु निर्धारित किए-

1."हम सभी को देश के लिए कम से कम एक घंटा रोज सूत कातना चाहिए।

2. हम सभी को हाथकता और हाथबुना खद्दर पहनना चाहिए।

3. हर एक को विदेशी वस्त्रों का त्याग करना और खद्दर पहनना चाहिए।

4. हिंदुओं को चाहिए कि वे अस्पृश्यता को अपराध और पाप समझें।

5. हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियों सभी को मिलजुलकर शांतिपूर्वक और भाई-भाई की तरह रहना चाहिए।

6. हमको जुआ खेलना और शराब पीना छोड़ देना चाहिए।

7. अपनी-अपनी पद्धति के अनुसार विनम्र भाव से ईश्वर की पूजा करनी चाहिए।

8. हम सभी को सुबह तड़के मुँह धोकर, दाँत साफ करके और अपने आपको पूरी तरह स्थिर चित्त बनाकर ईश्वर का नाम लेना चाहिए।

9. हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें नेक बननें और नेक रहने में सहायता दे ।

10. हमें उससे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें अपने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने में सहायता दे।

11. हमें किसी का अहित करने या किसी को आघात पहुँचाने का विचार मन में नहीं लाना चाहिए। यदि हम ये सब काम कर सकें तो बहुत कम समय में हम स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। अगर हमें ये सब काम करने हैं तो हमें अनुशासन पालन सीखना होगा।"[4]

उपर्युक्त बिंदु वैश्विक मानव समाज को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक हैं। यद्यपि शासन व आधिपत्य का दूसरा मार्ग बलपूर्वक, हिंसात्मक भी हो सकता है जैसा कि वर्तमान परिवेश में वैश्विक घटनाक्रम लगातार इस ओर संकेत कर रहा है, लेकिन यह सच नहीं जैसा कि पीछे गांधी जी उल्लेख कर आए हैं।

गांधी जी राष्ट्रीय आंदोलन को सदैव ही अनुशासित एवं लक्ष्योन्मुख बनाने के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने सदैव ही अंहिसा द्वारा स्वराज प्रति को सर्वश्रेष्ठ माना है। स्वराज्य प्राप्ति में खादी किस प्रकार मदद कर सकती है? यह प्रश्न बार-बार गांधी से पूछे जाते रहें। इसके लिए उनका जवाब था -

1. भारत की तीन-चौथाई आबादी ऐसे किसानों की है जिनके पास न पूरा काम है और न जिन्हें पूरा भोजन ही मिलता है और खादी उन्हें काम और भोजन प्रदान कर सकती है।

2. इंग्लैंड के लिये भारत को गुलाम बनाये रखने का एक प्रमुख कारण यह है कि उसके सूती कपड़े के लिये भारत एक बहुत अच्छा बाजार है और खादी उसके इस बाजार को खत्म कर सकती है।

3. खादी करोड़ों ऐसे दीन-दुखी किसानों को अतिरिक्त रोजगार प्रदान कर सकती है जो अपनी जमीन नहीं छोड़ सकते और इसलिए मिलों में काम करने के लिए नहीं जा सकते।

4. सूती कपड़ा मिले इतना पर्याप्त रोजगार मुहय्या नहीं कर सकती जिससे बेरोजगारों के बहुत बड़े समुदाय को कोई राहत पहुँच सके।

5. खादी के उत्पादन को बहुत थोड़ी लागत पर शीघ्र ही एक अत्यंत व्यापक स्तर पर संगठित किया जा

सकता है जबकि मिलों की संख्या में कोई ठोस वृद्धि करने के लिए जबर्दस्त खर्च पड़ेगा और इसमें कई वर्ष की देर लगेगी।"[5]

राज्य की प्रांसगिकता के संदर्भ में गांधी जी के विचार प्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक थॉरो (Henry David Thoreau 12 July 1817- 6 May 1862 A.C.) से प्रभावित थे। थॉरो पर प्राचीन भारतीय दर्शन का प्रभाव पड़ा। उन्होंने होमर, हीगल, वड्र्सवर्थ, कॉलरिज, मिल्टन का अध्ययन किया था। थॉरो प्रकृति प्रेमी थे उन्होंने आत्मनिर्भरता आधारित जीवन-यापन करने का प्रयास किया। कांकॉर्ड नामक सरोवर के निकट स्वनिर्मित झोपड़ी में निवास किया बाद में अपने स्वतंत्र चिंतन के आधार पर उन्होंने Life in the Woods पुस्तक लिखी जो 1854 ई. में बोस्टन से प्रकाशित हुई। थॉरो अपने निबंध सविनय अवज्ञा के लिए जाने जाते हैं। इसका प्रकाशन फरवरी 1849 ई. में हुआ। इस निबंध के प्रथम प्रकाशन का शीर्षक Resistance to Civil Government था जिसमें उन्होंने राज्य संबंधी विचार लिखे हैं। थॉरो राज्य को विवेकहीन संस्था मानते हैं क्योंकि राज्य बहुमत के पक्ष में राज्य चलाती है और यह जरूरी नहीं की राज्य सत्य के पक्ष में हो इसलिए वे राज्य व्यवस्था को कृत्रिम मानते हैं और व्यक्ति को सार्वभौमिक प्राणी। वे मानते हैं हम पहले व्यक्ति हैं प्रजा बाद में। लेकिन राज्य के दृष्टिकोण से हम पहले प्रजा हैं। उनके अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति सचेत है तो समूह स्वयं भी सचेत हो जाएगा क्योंकि समूह व्यक्तियों का ही योग है।"[6]

थॉरो की तरह गांधी भी राज्य को एक अनिवार्य बुराई मानते हैं तथा हिंसा पर आधारित मानते हैं। गांधी जी के अनुसार स्वशासन से अभिप्राय एक ऐसी शासन प्रक्रिया से है जहाँ पर जनता को अपना संविधान बनाने, अपनी इच्छा के अनुरूप उपयुक्त शासन व्यवस्था का चयन करने एवं अपने अधिकारों को सहजतापूर्वक प्राप्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। इसके अलावा जनता के अधिकार केवल प्रतिनिधि चुनने तक ही सीमित न हों, अपितु, यदि जनप्रतिनिधि जनता के हितों का संरक्षण करने में सक्षम नहीं है तो वे उन्हे चुनौती देने, आलोचना करने तथा वापस बुलाने का भी अधिकार रखते हों।

वस्तुतः गांधी जी का स्वराज्य संबंधी चिंतन ब्रिटिश कालीन भारत की तत्कालीन परिस्थितियों की उपज अवश्य कही जा सकती है लेकिन वास्तविकता यह है कि इसके बीज मानव के आत्मबल तथा किसी भी अन्याय, शोषण एवं पराधीनता के विरुद्ध मानव मुक्ति जैसे तत्व विद्यमान रहे हैं जिसमें अयं निजः परोवेत्ति गणनालघुचेतशाम्। उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्।। अर्थात् यह मेरा है, यह उसका है, ऐसी सोच संकुचित चित्त वाले व्यक्तियों की होती है; उदार चरित वाले लोगों के लिए तो यह संपूर्ण धरती ही एक परिवार है जैसी चिंतन परंपरा विद्यमान रही है। इसी प्राचीन भारतीय परंपरा का उद्घोष होता रहा है। अथर्ववेद में कहा भी गया है कि 'माता भूमिः पुत्रेऽहं पृथ्वियाः' अर्थात् धरती हमारी माँ है और हम उसकी संतान। गांधी जी के इस स्वराज्य चिंतन की परिकल्पना में यह बीज बिंदु कही-न-कही विद्यमान रहे हैं।

सहायक ग्रंथ

1. गाबा, ओम् प्रकाश (2007)भारतीय राजनीति विचारक नोएडा : मयूर पेपरबैक्स प्रकाशन

2. गांधी जी (1949) हिंद स्वराज, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर. पृ. 87

3. संपूर्ण गांधी वांड्मय, खंड 69, पृ. 59.

4. शर्मा, शैलबाला. (2016) गांधी चिंतन. जयपुरः शील सन्स प्रकाशन।

5. संपूर्ण गांधी वांड्मय, खंड 40, पृ. 456.

6. https://machetegroup.files.wordpress.com/2011/10/resistance.pdf.

– विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

❑❑❑

असली खुशी

डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'

पहला दृश्य

(मंच पर एक लड़की उछलती-कूदती हुई आती है।)

सूत्रधार लड़की- ला, ला-ला ला-ला ला.....ला..

(दूसरी ओर से एक लड़के का प्रवेश)

सूत्रधार (लड़का)- क्या बात है, आज तुम बड़ी खुश नजर आ रही हो!

सूत्रधार (लड़की)- मेरे मामाजी जापान से मेरे लिए एक गुड़िया लाए हैं। बहुत सुंदर है।

सूत्रधार (लड़का) अच्छा!!

सूत्रधार (लड़की)- वह तो बोलती भी है! (नाचते हुए) मेरी तरह नाचती और गाती भी है!

सूत्रधार (लड़का)- तुम्हें खुश करना तो बहुत आसान है। एक गुड़िया दी, बस खुश!

सूत्रधार (लड़की)- क्यों, तुम्हें भी तो एक छोटी-सी कार मिली नहीं, कि खुश!

सूत्रधार (लड़का) (शरमाते हुए) हाँ, वह तो है।

सूत्रधार (लड़की)- मालूम है, कुछ लोगों को गंगा नहाने में या यात्रा करने में या गरीबों के दुख-दर्द दूर करने में खुशी मिलती है।

सूत्रधार (लड़का)- और देखें, गाँधी जी को किस बात से खुशी मिलती है?

(दोनों बच्चे मंच से प्रस्थान करते हैं। कुछ अन्य बच्चे (कार्यकर्ता) फूल माला, रेशमी साड़ी, रिबन आदि से मंच को सजा रहे हैं।)

कार्यकर्ता 1 - आज तो देवीपुर धन्य हो जाएगा।

कार्यकर्ता 2- हाँ भाई, आज गांधी जी यहाँ पधार रहे हैं।

कार्यकर्ता 3- उनके दर्शन करके हम भी धन्य हो जाएँगे।

कार्यकर्ता 4 - अरे जल्दी करो, गांधी जी आने वाले हैं। वे समय के बड़े पाबंद हैं। चाहे कुछ भी हो जाए, वे देर नहीं करते।

कार्यकर्ता 1 - बस हो ही गया।

(सब लोग जल्दी-जल्दी सजावट का काम पूरा करते हैं।)

कार्यकर्ता 5 - बापू जी आ गए! बापू जी आ गए!

(सब लोग काम छोड़कर एकत्रित होते हैं और उस ओर बढ़ते हैं, जिधर से गांधी जी का प्रवेश होता है।)

सभी कार्यकर्ता - बापू जी की जय! महात्मा गांधी की जय!

(गांधी जी का प्रवेश। गांधी जी के पीछे-पीछे मुखिया तथा कुछ ग्रामीण भी आते हैं। गांधी जी को मंच पर बिठाया जाता है। वे सब को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं और हाथ हिलाकर सबके प्रणाम का जवाब देते हैं। ग्रामीणों में शोर होता है।)

कार्यकर्ता 2 -(ग्रामीणों से) आप सब शांत हो जाइए! मुखिया जी से निवेदन है कि वे फूल माला एवं अंगवस्त्र पहनाकर बापू का स्वागत करें! (मुखिया जी गांधी जी को फूल माला पहनाते हैं, फिर अंग वस्त्र पहनाते हैं। कुछ ग्रामीण इकट्ठे मिलकर गांधी जी के पास आते हैं और बापू जी बापू जी! गांधी जी आदि एक साथ कहने लगते हैं। वे सब गांधी जी वाले मंच पर आने लगते हैं।)

कार्यकर्ता 3 – (ग्रामीणों को मना करते हुए) बापू जी आप सब से मिलेंगे। कृपया पंक्ति बनाकर एक-एक करके आइए।

(सब लोग पंक्ति बनाते हैं। एक-एक करके आते हैं और बापू को उपहार देते हैं।)

ग्रामीण 1 – बापू जी, आपके दर्शन करके हम धन्य हो गए। मेरी तरफ से आपके लिए छोटा-सा उपहार.....) उपहार देता है।)

(गांधी जी मुस्कुराकर उपहार रख लेते हैं।)

ग्रामीण 2 – बापू! आपसे मिलने की बड़ी इच्छा हो रही थी। आज इच्छा पूरी हुई। मेरी तरफ से यह उपहार.....) उपहार देता है।)

(गांधी जी मुस्कुराकर उपहार लेते हैं और वहीं पास में रख लेते हैं।)

ग्रामीण 3 – (चरण स्पर्श करता है) बापू प्रणाम! आपने उन अंग्रेजों को कैसे हिलाकर रख दिया। आप कोई जादूगर हैं क्या....? (उपहार देता है।)

(गांधी जी हँसते हैं। उसकी पीठ सहलाते हुए आशीर्वाद देते हैं।,

(कार्यकर्ता ग्रामीणों को बिठाते हैं।)

कार्यकर्ता 1– आप सब बैठ जाइए! अब हम सब बापू जी का प्रिय भजन गाएँगे। आप सभी मिलकर गाइए।

(प्रार्थना होती है। गांधी जी भी गाते हैं।)

वैष्णव जन तो.....

(प्रार्थना समाप्त होने पर गांधी जी भाषण देते हैं।)

गांधी जी – भाइयो और बहनो! मैं आप सबकी भावनाओं की कद्र करता हूँ। आपका प्रेम अनमोल है। यह प्रेम मेरे प्रति प्रकट करने के बदले यदि भारत के प्रति प्रकट करें, तो बेहतर होगा। यह उपहार जरूरतमंद लोगों को दे दें और यदि मुझे कोई उपहार देना है, तो देश के लिए त्याग और समर्पण का उपहार दें, एकता का उपहार दें।

सभी ग्रामीण – गांधी जी की जय! गांधी जी की जय!

(सभी ग्रामीण उठ कर जाने लगते हैं) वे सब आपस में बातें करते हैं।)

ग्रामीण 1 – बापू जी के विचार कितने महान हैं!

ग्रामीण 2 – बापू सचमुच महात्मा हैं!

(सभी ग्रामीण मंच से चले जाते हैं। कार्यकर्ता गांधी जी के पास बैठते हैं और लेखन पैड पर कुछ लिखने का अभिनय करते हैं।)

कार्यकर्ता 2 – बापू! आप की आगे की योजना क्या है? हमें आदेश और निर्देश दीजिए।

गांधी जी – (मुखिया की ओर मुख करके) मुखिया जी, सबसे पहले यह बताइए कि सजावट की ये सब चीजें कहाँ से लाई गईं?

मुखिया – बापू जी बड़े भाग्य से आपके चरण पड़े हैं! आप आने वाले थे, सो इन सब गाँव वालों ने चंदा लेकर कुछ रुपए इकट्ठे किए थे। उसी से यह सब सामान लिया है।

गांधी जी – (दुखी होते हुए) यह सब फूल और यह सजावट क्षण भर में नष्ट हो जाएँगे। यह तो रुपए-पैसे की बर्बादी है। मेरे लिए यह ठाट-बाट रच कर मुझे खुश करना चाहते थे? मेरी खुशी तो दुखी लोगों के दुख बाँटने में है। इसलिए मुझे खुश करना चाहते हो, तो दूसरों का दुख बाँटो, सांप्रदायिक सद्भावना बढ़ाओ। (मुखिया सिर झुका देता है।)

(दूसरे कार्यकर्ता से) फूल मालाओं के स्थान पर सूत के हार सजाए जाते, तो मुझे असली खुशी होती। वे हार शोभा बढ़ाते और उनसे कपड़ा भी बनता। मेरे प्रति प्रेम प्रकट करने के लिए यह सजावट बिलकुल अनुचित है। (सजावट की ओर संकेत करते हुए) विलायती कपड़ा,.....रिबन, झालर.... ये सब बेकार हैं। यदि मेरे प्रति प्रेम प्रकट करना है, तो सत्य, अहिंसा, संयम, सद्भाव का मार्ग अपनाओ, हरिजन से अच्छा व्यवहार करो, दुखियों के दुख दूर करो।

मुखिया एवं सभी कार्यकर्ता– क्षमा करें बापू! हम सब आप के दिखाए मार्ग पर चलेंगे।

(गांधी जी उठकर खड़े हो जाते हैं। उनके साथ-साथ मुखिया और सभी कार्यकर्ता भी खड़े हो जाते हैं।)

मुखिया – गांधी जी की

सभी कार्यकर्ता – जय!

मुखिया – बापू जी की

सभी कार्यकर्ता– जय!

(गांधी जी हाथ ऊपर करके सब को आशीर्वाद देते हुए मंच से प्रस्थान करते हैं। उनके पीछे मुखिया और मुखिया के पीछे सभी कार्यकर्ता भी चले जाते हैं।)

– 'सुर सदन', डब्ल्यू, 1987, रानी बाग, दिल्ली-110034

❑❑❑

ज़िंदा तस्वीर

अच्युत कुमार सिंह

बिटिया को गोद में
सुलाते वक्त कुछ
अजीब जिम्मेदारियों का
अहसास होता है
दूसरों के भीतर
पहुँचने का रास्ता दिख जाता
अब उस व्यक्ति के
बारे में सोचो
जो 'राष्ट्रपिता' है
गोलफ्रेम का चश्मा
और हाथों में एक लाठी
बस इतनी आकृति
बच्चों के सामने रख दें
वो चिल्ला उठेंगे
'बापू' हैं
कभी गौर से देखना
बापू की तस्वीर
दूसरों का पीर
जानने वाली आँखें
औ' चेहरे की लकीरे
कानों में कुछ कहेंगी
ज़रा ध्यान से सुनना
उन अल्फाजों की बुदबुदाहट
अपने हल्के हाथों से
छूना उस तस्वीर को
तुम्हें 'आत्मबल'
खुद-ब-खुद मिल जाएगा
कभी गोद में लेना
उस तस्वीर को
आत्मसंघर्षों की दुनिया
से परे
'पिता और राष्ट्रपिता'
के फ़ासलें
गायब होने लगेंगे
शायद तुम भी
उस ज़िंदा तस्वीर की तरह
जीवित हो उठोगे।

– एफ-58, चतुर्थ तल, पश्चिमी पटेल नगर, केंद्रीय दिल्ली-110008

❑❑❑

गांधी जी की तीन बात

सरिता गुप्ता

गांधी जी तो चले गए,
पर जिंदा है उनकी बात।
आज भी याद है सबको,
गांधी जी की तीन बात,
बुरा न देखो,
बुरा न सुनो,
बुरा न बोलो ,
तभी तो नहीं देखते
आज लोग,
संसद में होते घोटाले,
बढ़ती मंहगाई,
बेईमानी, भ्रष्टाचार,
जिस्मों का व्यापार,
सफेद पोश में रंगे सियार।
नहीं देखते लोग
नित संस्कृति का पतन,
धर्म का अपमान,
नहीं देखते,
टूटते घर,
दिलों में उमड़ता प्यार,
आंखों की नमी,
अपनों की कमी,
नहीं सुनते आज लोग
अजन्मी बच्ची की चीख,
नारी पर कसी जाती
फूहड़ फब्तियां,
दहेज की आग में जलाई जाती
बेटियों की पुकार।
नहीं सुनते
गरीबों की आह,
बुजुर्गों का दर्द,
अपने दिल की आवाज।
नहीं बोलते आज लोग
न्याय की कोई बात,
नहीं कहते लोग
आज सच्ची बात,
नहीं बोलते
प्यार के दो बोल,
नहीं कहते
दिल से सीधे बात,
क्योंकि, क्योंकि
उन्हें याद है
गांधी जी की तीन बात।
इसीलिए वे कहते हैं,
अगर जीवन
सुख से जीना है,
अंधे, गूंगे, बहरे, हो लो,
कुछ न देखो,
कुछ न सुनो,
कुछ न बोलो ।।

– सी-764, एल आई जी फ्लैट्स, ईस्ट ऑफ लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली

❑❑❑

प्राप्ति स्वीकार

1. उसे जीतना है (दीर्घ कविता)/ तेलुगु मूल अडपा रामकृष्णा, अनुवाद - पारनंदि निर्मला/ नीरव पब्लिकेशन, 4-2-771, रामकोट, हैदराबाद -1/ प्रकाशन वर्ष - 2017/पृष्ठ - 30/ मूल्य - ₹ 50/
2. कविता वाहिनी/ तेलुगु मूल ए. बी. आर मूर्ति, अनुवाद पारनंदि निर्मला/ गीता प्रकाशन, 4-2-771/ ए. प्रथम तल रामकोट, हैदराबाद -1/ प्रकाशन वर्ष - 2017/ पृष्ठ - 32/ मूल्य - ₹ 51/
3. विखंडित राग (कहानी संग्रह)/ उमाकांत खुबालकर/ भावना प्रकाशन, 109 - A, पटपड़गंज, दिल्ली - 110091/ प्रकाशन वर्ष - 2017/ पृष्ठ - 175 (पेपर बैक/ मूल्य - ₹ 250/
4. मॉरीशस हिंदी लेखक संघ का इतिहास (1961 - 2017)/ डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ, स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि./ 4/5 - बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली - 11002/ प्रकाशन वर्ष - 2017/ पृष्ठ - 226
5. गुळळकायज्जी (बाहुबलि की जय)/ डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'/ संपिगे प्रकाशन 'सिरिसपिगे', 44, I मेन रोड, बनशंकरी, III स्टेज, IV ब्लाक, बंगलूरू/ प्रकाशन वर्ष - 2018/ पृष्ठ - 80/ मूल्य - ₹ 150/
6. मेड़तियों के गौरव गीत/ डॉ. जयपाल सिंह राठौड़/ प्रकाशक: राजस्थानी ग्रंथागार/ प्रथम मंजिल, गणेश मंदिर के सामने, सोजती गेट, जोधपुर, राजस्थान/ प्रकाशन वर्ष 2018/ पृष्ठ - 412/ मूल्य - ₹ 600/

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. अनुराधा अग्रवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर, एम. ओ. पी. वैष्णव कॉलेज फार वूमेन, चेन्नै
2. डॉ. ए. फातिमा, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, स्टेला मॉरिस कॉलेज, चेन्नै - 86
3. डॉ. हरीश कुमार सेठी, असिस्टेंट प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, ब्लॉक 15 - सी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली - 110068
4. डॉ. श्यामसुंदर पांडेय, निदेशक, गांधी अध्ययन केंद्र, बिड़ला महाविद्यालय, कल्याण (थाने), मुंबई
5. डॉ. वैशाली कुशवाहा, एन - 9/87, लेन न. 2, प्लॉट नं डी- 142, जानकी नगर, काकरमाता वाराणसी - 221109
6. प्रो. निर्मला एस. मौर्य, 95/1, थर्ड क्रास रोड, गिल नगर, चेन्नई - 600094
7. डॉ. डॉली, 263/33 सीब्रॉस आर्चिड, ब्लॉक - 34, वलचरी मेन रोड, वलचरी चेन्नई - 600042
8. डॉ. अजय कुमार मिश्र, फ्लैट संख्या 2/802, ईस्ट एंड अपार्टमेंट, मयूर विहार, फेज - I एक्सटेंशन, नई दिल्ली - 110096
9. डॉ विनीता कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
10. श्री मृगांक मलासी, सहायक अध्यापक, राजकीय प्रतिभा विकास विद्यालय, सिविल लाईंस, दिल्ली
11. डॉ. ममता कुशवाहा सिंह, डी - 64/47, माँ राजेश्वरी नगर, पद्मिनी होटल के पीछे, सिगरा, वाराणसी - 221010
12. डॉ शलिनी राजवंशी, बी - 603, प्रिंस अपार्टमेंट, आई. पी. एक्सटेंशन, दिल्ली - 92
13. डॉ. उमाकांत खुबालकर, 33/11, नोवा अशोक रोड, क्षिप्रा सन सिटी, इंदिरापुरम, गाजियाबाद, (उ. प्र.) - 201014
14. डॉ. वी. जयलक्ष्मी, विभागाध्यक्ष, भाषा विज्ञान विभाग, मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज (शिफ्ट - 11) तांबरम, चेन्नै - 600059
15. डॉ श्रावणी भट्टाचार्य, अध्यक्ष हिंदी विभाग, स्टेला मैरिस कॉलेज, 17 कैथेड्रल रोड, चैन्नै-86
16. डॉ. साताप्पा लहू चव्हाण, 'पितृ छाया', 6/180, पंपिंग स्टेशन रोड, तोठे मला, भुतकरवाडी, सावेडी, अहमदनगर - 414001(महाराष्ट्र)
17. डॉ. अमरनाथ, ई ई - 164/402, सेक्टर - 2, साल्टलेक, कोलकाता - 700091
18. डॉ. किशोरी लाल व्यास, फ्लैट नं. - 6, ब्लॉक नं. - 3, केंद्रीय विहार, मियाँपुर, हैदराबाद - 500049.

19. डॉ. नरेश कुमार, जे, 235, पटेल नगर, गाज़ियाबाद- 201001
20. प्रो. एम. ज्ञानम, अध्यक्ष, गांधी मंडम, चिदंबरम, तमिलनाडु।
21. डॉ. किरण झा, आर जेड एच-10, गुरुद्वारा रोड, महावीर एंक्लेव, नई दिल्ली 110045
22. डॉ. सुनील कुमार तिवारी, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
23. डॉ. संतोष खन्ना, बी. एच. - 48, पूर्वी शालीमार बाग, दिल्ली - 110088.
24. डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय बिलासपुर, छत्तीसगढ़
25. डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प', सुर सदन, डब्ल्यू, 1987, रानी बाग, दिल्ली - 110034
26. श्री अच्युत कुमार सिंह, एफ - 58, चतुर्थ तल, पश्चिमी पटेल नगर, दिल्ली - 110008
27. सुश्री सरिता गुप्ता, सी - 764, एल आई जी फ्लैट्स, ईस्ट ऑफ लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली

❑❑❑

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-6-2018
1100

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्

हिंदी

केंद्रीय निदेशालय

Digital India
Power To Empower

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित